स्वर्णित स्वरूप विद्यासागर

(ब्र. संगोष्ठी श्रवणबेलगोल आलेख २०१८)

संकलन /संपादन

ब्र. जिनेश मलैया

(प्रधान संपादक : संस्कार सागर)

अभिनंदन सांधेलीय

(पाटन, जबलपुर)

प्रकाशक

श्री दिगंबर जैन युवक संघ

केंद्रीय कार्यालय : श्री दिगंबर जैन पंच बालयति मंदिर

सत्यम् गैस के सामने, ए.बी. रोड, इन्दौर (म.प्र.)

फोन :- 0731-400350, 2571851, मो.: 8989505108

कृति : विराट स्वरूप विद्यासागर

(ब्र. संगोष्ठी श्रवणबेलगोल आलेख २०१८)

आशीर्वाद : आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज

संकलन /संपादन : ब्र. जिनेश मलैया (प्रधान संपादक : संस्कार सागर)

अभिनंदन सांधेलीय (पाटन, जबलपुर)

उपलक्ष्य : संत शिरोमणि आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज के संयम स्वर्ण महोत्सव वर्ष २०१७-१८ के अवसर पर

आवृत्ति : ११००

न्यौछावर राशि : १५०/-

प्राप्ति स्थान

१) सत् साहित्य विक्रय केन्द

श्री दिगंबर जैन पंचबालयति मंदिर

सत्यम् गैस के सामने, ए.बी. रोड़, इन्दौर (म.प्र.)

फोन : ०७३१-४००३५०६, ८९८९५०५१०८

२) **श्री दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र श्रवणबेलगोल**

जिला हासन (कर्नाटक) मो.:

२) **ब्र. अनिलजी**

अमर ग्रंथालय, उदासीन आश्रम

महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर (म.प्र.) फोन : ०७३१-२५४५७४४

३) **श्री गुरुवर विद्यासागर जीवदया केन्द्र**

१२०२/२–बी, बहादुरगढ़ रोड़, दिल्ली –११०००६

फोन : ०११-२३४४२१२५. २७४७९५८४

४) **अरिहंत साहित्य सदन**

४, रेनवो विहार, मुजफ्फरनगर (उत्तरप्रदेश)फोन : ०१३१-२२०२००४७

५) **श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल**

पिसनहारी मढ़िया के सामने, जबलपुर (म.प्र.)

६) **श्री दिगम्बर जैन लाल मंदिर,** चांदनी चौक, सायकल मार्केट, दिल्ली-

अक्षर संयोजन - नीरज गुप्ता **ग्राफिक्स डिजाइन** - आशीष कुशवाह

मुद्रक : **मोदी प्रिन्टर्स,** 76-बी पोलोग्राउण्ड इण्डस्ट्रीयल इस्टेट, पत्रिका प्रेस के पीछे, इंदौर (मो. 98260-16543)

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय	५
बधाई संदेश	७
ब्रह्मचारी संदेश	८
मनोभावना	९
स्वभाषा में जिंदगी है	१०
संगोष्ठी रिपोर्ट	१५
सर्वाधिक दीक्षा प्रदाता	४४
वर्तमान भारत के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार आचार्य श्री विद्यासागर जी	५८
आचार्य विद्यासागर जी एवं मंदिर निर्माण	६३
आचार्यश्री के प्रवचनों में महात्मा गांधी	६७
पूज्य आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज का उत्तम आचार्यत्व	७०
आचार्य विद्यासागर और उनकी आहार चर्या	७९
दान राशियों में अन्य क्षेत्रों में हस्तांतरण आचार्य विद्यासागर महाराज की दृष्टि	८१
दर्पण झूठ कहता नहीं, जो होता है दिखता वही	८४
आचार्य श्री जी का वैराग्य पथ	९०
भाषा समिति साधक आचार्य श्री विद्यासागर जी	९७
आचार्य श्री विद्यासागर जी एवं उनका व्यापक दृष्टिकोण	१००
श्रेष्ठ संघ नायक आचार्य श्री विद्यासागर जी	१०४
आचार्य विद्यासागर और उनका वैरागी परिवार	१०६
चतुर्थकाल के मुनि आचार्य श्री विद्यासागर जी	१२४
एक नये नक्षत्र का उदय	१२६
साधना के सुमेरु आचार्य श्री विद्यासागर महाराज	१३०
आचार्य विद्यासागर की चर्या एवं एकांत में केशलोंच	१३२
आचार्य विद्यासागर जी के चिन्तन में मोक्षमार्ग में साधक शुभोपयोग	१३४
आचार्य विद्यासागर जी के चिंतन में ''पुण्य'' हेय ? कब और क्यों ?	१३७
आचार्य विद्यासागर जी के चिंतन में सम्यग्दर्शन विषयक चिन्तन	१४१
आचार्य विद्यासागर जी के चिंतन में दर्शन शब्द का अर्थ जिनलिङ्ग	१४४
स्वरूपाचारित्र और परम पूज्य आचार्य	१४७

श्रमण शतक में ध्यान	१५१
आचार्य के चिंतन में सम्यक्त्व के साथ चारित्र की भजनीयता	१५४
आचार्य विद्यासागर के चिंतन में सर्वज्ञता	१५७
आचार्य विद्यासागर ज़ी के चिंतन में नय	१६०
श्रमण शतक में आत्मानुभूति की पद्धति	१७१
आचार्य विद्यासागर जी के चिंतन में गृहस्थ के निश्चय सम्यग्दर्शन का अभाव	१७६
आचार्य विद्यासागर जी के चिंतन में द्रव्यलिङ्गी से तात्पर्य मिथ्यादृष्टि ही नहीं है	१७९
आचार्य विद्यासागर जी के चिंतन में शुभोपयोग औदायिक भाव नहीं	१८२
आचार्य विद्यासागर के चिंतन में द्रव्य से पर्याय सर्वथा पृथक नहीं है	१८५
आचार्य विद्यासागर जी के चिंतन में शुद्धोपयोग स्वामी कौन	१८७
आचार्य विद्यासागर जी के चिंतन में दिगम्बर जैन युवक संघ	१८९
आचार्य विद्यासागर जी क़े चिंतन में मोह की भूमिका	१९२
आचार्य विद्यासागर जी चिंतन में मूलाचार	१९९
आचार्य विद्यासागर जी के चिंतन में श्रमणाचार	२१४
प. पूज्य आचार्यश्री विद्यासागर जी मुनिराज के चिंतन में नारी का गौरव	२२०
आचार्य विद्यासागर .एवं उनके चिंतन में जैन धर्म	२२७
आचार्य विद्यासागर जी-तत्त्वार्थ सूत्र अनुचिंतन के अंतर्गत सज्ञिनः समनस्काः २/२४	२३१
क्या है चिंतन आचार्य विद्यासागर का लेश्या के संदर्भ में	२४८
आचार्य विद्यासागर के चिंतन में द्रव्य का लक्षण	२५५
आचार्य विद्यासागर के चिंतन में शिक्षा	२५८
मूकमाटी : आत्म कल्याण की अविरल यात्रा	२६१
मूकमाटी (तुलनात्मक) समीकरण	२६७
आचार्य विद्यासागर एवं मूकमाटी	२७५
आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती की जैन सिद्धांत को देन	२८०
चन्द्रगुप्त मौर्य और श्रमण संस्कृति	२८३
आत्मानुशासित आचार्य महासंत श्री विद्यासागर जी महाराज ८१ गुणों के स्रोत गंगा	२९१
बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी आचार्य श्री विद्यासागर जी	३०६
अतिशयों के महा अतिशय आचार्य विद्यासागर जी	३१३
मूकमाटी महाकाव्य : कुछ अनछूए पहलू	३१५

सम्पादकीय

साधना का पथ कठिन है की सूक्ति को उलटने वाले युगदृष्टा साहित्यकार शुद्धात्माय के अनुकरणकर्ता यर्थार्थवादी चर्या श्रेष्ठ प्रखर प्रवचन कार अध्यात्म के सरोवर के राजहंस देह के प्रति उदासीन भोगों में अरूचि रखने वाले आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने स्वर्णिम युग का दर्शन कराया है।

राष्ट्रीय सामाजिक धार्मिक आध्यात्मिक चिंतन में जिनकी निष्णांतता सदैव सराहनीय रही है जिन्होंने प्रवचन दिया है वचन नहीं उपदेश दिया है आदेश नहीं भीड़ को बुलाया नहीं है किन्तु भीड़ अपने आप आ जाती है। कार्यक्रम आयोजित प्रायोजित नहीं करते हैं। किन्तु सुव्यवस्थित कार्यक्रम हो जाते है अनियत बिहारी गुरुदेव की यह विशेषता रही है उनका बिहार और वर्षायोग कहां होगा इसका ज्ञान किसी को भी नहीं हो पाता है। मात्र सब लोग अनुमान लगाते हैं विरोध करना जिनकी प्रवृत्ति नहीं रही है। किन्तु स्पष्ट आगम सम्मत चर्या करने में सदैव रूचि लेते रहें है। प्रश्न करने वालों का सदैव गुरुदेव ने उत्साह बढ़ाया है। विरोधियों के भले की बात सोची है दूसरे की रेखा को मिटाकर छोटा नहीं किया है अपितु अपनी रेखा विश्वास दूसरे से तुलना करने में कभी नहीं रहा है। अपितु अपनी प्रस्तुति देने मेंही आनंद का अनुभव किया है। महिमा मण्डित करने वालों को सदैव फटकार मिली हैं लेकिन आगम के अनुसार चर्या करने वाले उपाधियों से दूर रहने वालों को खूब प्रोत्साहन दिया है।

श्री और स्त्री से स्वयं को और अपने शिष्यों को दूर रखने वाले एक मात्र आप ही आचार्य हैं। युग प्रभावक गंभीर चिंतनशील मर्यादाओं को सदैव ध्यान में रखने वाले असंयमी संपर्क से परहेज रखने वाले गुरुदेव का यश दिग्दिगन्त तक व्याप्त है ख्याति लाभ से दूर रहने वाले अंतमुखी साधक गुरुदेव ने कभी प्रसिद्धि पाने का प्रयास नहीं किया है। स्वांता सुखाय अद्वितीय साहित्यकार बन गये। यह उनकी निष्पृह तपस्या का फल है।

मूकमाटी महाकाव्य की लगभग एक हजार विद्वानों द्वारा समीक्षायें लिखी जाना तथा देश के अनेक विश्वविद्यालयों में हुए शोधकार्यों में पचपन शोध प्रबन्ध हो चुके हैं, यह अपने आप में कीर्तिमान है।

समाज को जिन्होंने सदैव सुई धागा की तरह जोड़ने का काम किया है।

कभी भी कैंची की तरह उन्होंने समाज को कांटा नहीं है। उन्होंने तो यही प्रेरणा दी है कि संगठित समाज ही श्रमण संस्कृति की रक्षा कर सकती है। जाति पंथ संघ के आधार पर समाज को तोड़ने वाले कभी भी कुन्दकुन्द आचार्य के अनुयायी नहीं हो सकते हैं। पूज्य गुरुदेव ने पतितों का उद्धार किया है। समाज से बिखरे हुए परिवारों को, जो समाज से दूर थे उनसे आहार लेकर, उनकी हीनभावना को समाप्त कर उन्हें श्रमण परम्परा में आगे बढ़ाया। क्योंकि धर्मात्मा के बिना धर्म नहीं हो सकता है।

आत्मानुभूति के रसिक कर्त्तापन के अहम् से बहुत दूर सहज सुलभ गुरुदेव को प्रज्ञा की आँखों वाले लोग ही पहचान सकते है। मोही लोभी लोग पंथ में विश्वास रखने वाले लोग ज्येष्ठ श्रेष्ठ आचार्य की उपासना निष्काम भक्ति कैसे कर सकते हैं। उनके आदर्शो का अनुकरण करने में ही संयम स्वर्ण महोत्सव की सार्थकता है।

आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज और उनका दार्शनिक चिंतन विषय पर एक संगोष्ठी ९ से ११ जुलाई २०१८ को श्री श्रेत्र श्रवणबेलगोल कर्नाटक में वात्सल्य वारिधि आचार्यश्री वर्धमानसागर जी महाराज, आचार्य सुविधिसागर जी, आचार्य वासुपूज्यसागर जी, आचार्य पंचकल्याणकसागर जी तथा मुनि श्री उत्तमसागर जी, मुनिश्री प्रज्ञासागर जी आदि १२६ साधकों की तथा जगत् गुरु कर्मयोगी श्री चारुकीर्ति भट्टारक जी के सान्निध्य में रखी गई थी, जिसमें लगभग २०० ब्रह्मचारी भाइयों ने उपस्थित होकर आचार्यश्री के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आलेख लिखकर उनके चिंतन को आगे बढ़ाया। इसमें लेख के माध्यम से उनके चिंतन को दिया जा रहा है, उसे पढ़कर उसे कोई शंका हो तो आप स्वयं गुरुवर के पास जाकर समाधान कर सकते हैं। समयाभाव के कारण अनेक वरिष्ठ ब्रह्मचारी भाईयों, आगत् विद्वानों के साथ पहली बार अपने आलेख लेकर उपस्थित हुए। ब्रह्मचारी भाईयों को आलेख वाचन का अवसर प्रदान न कर पाने में संगोष्ठी संयोजक विवश रहे। उन सबसे क्षमाभाव की कामना है। जिन ब्रह्मचारी भाईयों की सम्मान की फोटों उपलब्ध हो सकी वह दी जा रही है। परन्तु जिनकी फोटो नहीं दे पाये उनसे भी क्षमायाचना।

ब्र. जिनेश मलैया

मुख्य संयोजक-ब्र. संगोष्ठी श्रवणबेलगोल

जगद् गुरु कर्मयोगी स्वस्ति श्री चारूकीर्ति भट्टारक स्वामी जी स्मारिका बधाई संदेश

श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोला में श्री गोम्मटेश्वर भगवान बाहुबली स्वामी जी का महामस्तकाभिषेक का आयोजन १७ फरवरी २०१८ से २५ फरवरी २०१८ तक सम्पन्न हुआ। १२ वर्ष के अंतराल बाद आयोजित इस महामहोत्सव का शुभारंभ विविध कार्यक्रमों के माध्यम से २०१७ ईस्वी में प्रारंभ हुआ।

संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज का संयम स्वर्ण महोत्सव वर्ष २०१७-१८ में श्रद्धा और भक्ति के साथ संपूर्ण भारत वर्ष में मनाया गया। उसी पावन प्रसंग पर ब्रह्मचारी संगोष्ठी का आयोजन ९ जुलाई २०१८ से ११ जुलाई २०१८ तक श्री क्षेत्र में भक्ति और उल्लास पूर्वक संपन्न हुई। श्री क्षेत्र श्रवणबेलागोला में महामस्तिकाभिषेक के पूर्व संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, आदि भाषा की संगोष्ठी सम्पन्न हुई। महिला समाज, युवा वर्ग पत्रकारों तथा विद्वत समाज के सम्मेलन एवं कवि सम्मेलन आदि भी संपन्न हुये। सभी सम्मेलनों में श्रेष्ठ सम्मेलन ब्रह्मचारी संगोष्ठी के रूप में सम्पन्न हुई।

ब्रह्मचारी संगोष्ठी में उपस्थित ब्रह्मचारी भाईयों की संख्या देखकर सभी आश्चर्य चकित है। ऐसा लग रहा था कि जैसे लोकांतिक देवों की सभा हो। इस संगोष्ठी में ब्र. भैया और बहिनों ने जो आलेख प्रस्तुत किये उससे ऐसा लगा यह अंतराष्ट्रीय जैसा सम्मेलन हुआ।

महामस्तकाभिषेक और आचार्य श्री विद्यासागर जी का इस क्षेत्र से बड़ा संबध है। सन् १९६७ के महामस्तिकाभिषेक में आचार्य श्री देशभूषण महाराज के साथ बालक विद्याधर आये थे। यहाँ से ही उनका संयम का मार्ग प्रशस्त हुआ था। महामस्तकाभिषेक के समय संयम स्वर्ण महोत्सव अपने आप में गौरवपूर्ण है। सुवर्ण अक्षरों में लिखने योग्य कार्यक्रम है। आचार्य श्री का अवदान महत्वपूर्ण है। उनका मनन चिन्तन चिरस्थायी है। यहाँ उनके सम्मान में कीर्ति स्तम्भ खड़ा है। सभी ब्रह्मचारी भाई आचार्य श्री के कीर्ति स्तंभ बने।

संत भी विद्वान हो गये है यह आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की देन है। आचार्य श्री से विद्वत्ता प्रदान कर अपने शिष्यों को विद्वत्ता पूर्णकर रहे है। आज त्यागी भी विद्वान हो रहे है। यह परिवर्तन आचार्य श्री के कार ण ही हुआ है। आचार्य श्री संयम के भी सुवर्ण है और ज्ञान के सुवर्ण है।

सभी ब्रह्मचारी भाईयों और ब्रह्मचारी बहिनों का अपने गुरु के प्रति समर्पण और भक्ति प्रशंसनीय और अभिनंदनीय है। ब्रह्मचारी संगोष्ठी के स्मृति में स्मारिका ''**विराट स्वरूप विद्यासागर**'' का प्रकाशन हो रहा है। उसके लिये हमारी मंगल शुभकामनायें हैं।

ब्रह्मचारी संगोष्ठी

बाल ब्र.सनतकुमार जैन, तमिलनाडु

सादर प्रणाम ! संयम स्वर्ण महोत्सव पर श्री श्रवणबेलगोला में आयोजित ब्रह्मचारी संगोष्ठी में शामिल होने से हमें अत्यंत आनन्दव सन्तोष प्राप्त हुआ। आयोजन में हमारे गुरुवर संत शिरोमणि आचार्यश्री १०८ विद्यासागर जी महाराज के बाल्यकाल से अभी तक अर्थात् विद्याधर से विद्यासागर तक जो चिंतन, मनन, संस्मरण, यादें, शिक्षण, प्रशिक्षण, अनुभव, गुरुवर के गुण गान, त्याग साधना, देशभक्ति, श्रमदान, साहित्यकार जैसे सभी विषयों पर की विद्वानों, डॉक्टरों, संपादको, सोदहकों तथा बड़े-बड़े ब्रह्मचारियों द्वारा सभी बातें पर जो कुछ हमने सुना वो सदा के लिए मेरे मन में अंकित रहेगा।

संगोष्ठी के सभी लोग आचार्यश्री के संबंध में अपने-अपने यादें नवीनता के साथ प्रस्तुत किये। ये सब कुछ हमारे गुरुदेव के गुणों की कुंजी है। उनके बारे में सागर से ज्यादा विषय है। लेकिन समय बन्ध होने के कारण सभी ने जैसा समय मिला वैसा ही व्यक्त किया। लोगों के अनुभव को एक ही स्थान में एकत्रित करके संग्रहत किया तो वह भी एक महासागर जैसा बन गया। मुझे इतना संतोष हुआ कि अभी तक ऐसा संतोष मेरे जीवन पर्यन्त में नहीं मिला है। गुणों का सागर, आखिर सागरों का सागर है हमारे गुरुदेव। इस पर हमें ही नहीं बल्कि सारे विश्व को गौरव की बात है हमारे आचार्य श्री। संगोष्ठी में बहुत कुछ आवश्यक विषयों पर बड़े-बड़े विद्वानों और ब्रह्मचारियों ने सुझाव रखे हैं। उस पर हम लोग समाज की सेवा में भरपूर काम करेंगे। जैन धर्म की महिमा को गरिमा के साथ बना रहेंगे। समाज में होने वाली समाज बतलात (अनजाने में बदलना) रुकावट डालना चाहिये। तथा गरीबों, गंगालों में उलझन हुए जैन लोगों को उचित पढ़ाी, रोजगार, ईलाज जैसे समाज की उन्नति के कार्यों में लगाना चाहिए। इस पर हम सभी ब्रह्मचारियों को संकल्प लेना चाहिये। मैं भी इस बात पर संयम स्वर्ण महोत्सव के उपरान्त संकल्प ले लिया है।

संगोष्ठी आयोजन के लिये पंचबालयति मंदिर के बाल ब्रह्मचारी श्री जिनेश मलैया और उनक टीम के लोगों को और आयोजन के लिये सहयोग दिया सभी को मेरा धन्यवाद ! ऐसा संगोष्ठी आयोजन साल में एक बार अवश्य होना चाहिये। फिर एक बार सभी लोगों को मेरी ओर से, तमिलनाडु की ओर से, श्री विसाकार्यय तपोवन की ओर से धन्यवाद !

आचार्यश्री की चरणों में....

दिनांक : ११ जुलाई २०१८ स्थानः श्रवणबेलगोला

मनोभावना

श्री वीतरागाय नमो नमः। श्री नवदेवेभ्यो नमो नमः। पुनः पुनः श्री १००८ नवदेवेभ्यो नमो नमः।

श्री गोम्मटेश्वर १००८ भगवान बाहुबली श्रवणबेलगोल दिनांक ९-११ जुलाई २०१८ को परम पूज्य १०८ आचार्य परमेष्ठी श्री विद्यासागर जी के ५० वें स्वर्णिम महोत्सव के उपलक्ष्य में ब्र. भाईयों की सम्यक् सुंदर सरस उत्कृष्ट भावनाओं के साथ संगोष्ठी सानंद सम्पन्न हुई।

१० जुलाई २०१८ को भगवान महावीर जी ने सभी ब्र. भाईयों को स्वर्ण की झारी से भगवान बाहुबली जी का मस्तकाभिषेक व शांतिधारा कराई। श्री १०८ आचार्य परमेष्ठी वर्द्धमान सागर जी महाराज ससंघ सानिध्य श्री आचार्य परमेष्ठी सुविधि सागर की ससंघ सानिध्य मुनि श्री १०८ प्रज्ञसागर जी, मुनिश्री उत्तमसागरजी एवं अनेकानेक आर्यिका माताजी, ऐलक, क्षुल्लक एवं क्षुल्लिका माताजी तथा कर्मयोगी, कर्त्तव्यपरायण चामुण्डराय की सम्यक् उपमा से विभूषित चारूकीर्तिजी महा भट्टारक स्वामी जी का मंगल सान्निध्य प्राप्त हुआ। सभी सन्तों के मंगल भावना के साथ मांगलिक उद्बोधन भी प्राप्त हुआ।

लगभग दो सो व्रती ब्रह्मचारी बन्धुओं ने भी अपनी-अपनी मंगल उद्गार प्रकट किये। परम पूज्य आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज का पावन जीवन अंतरंग व बहिरंग में एक आदर्श संयमी, तपस्वी, रत्नत्रय की आराधना में संलग्न शब्दातीत हैं। शब्दों के द्वारा वर्णन सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

भगवान वर्द्धमान अंतिम तीर्थंकर के तीर्थ में आदर्श चतुर्विध संघ की परम्परा का संवर्धन करने वाला हैं। बहुत कुछ लिखा गया, पढ़ा गया, सुना गया क्योंकि प्रचार का युग है, परन्तु मैं तो उनके साथ ही साथ समस्त जीवों को अक्षम अतीन्द्रिय पद प्राप्ति की मंगल भावना भाता हूँ। ऐसा कोई विषय या क्षेत्र मंगल कर्त्तव्य नहीं जिनके विषय में आचार्यश्री का अनुशरण नहीं किया जाये अर्थात् जगत् कल्याणार्थ सर्व ही कर्त्तव्यों का पालन यथा शक्ति ही करना चाहिये। यही मंगल भावना है....

पूज्य स्वामी जी एवं मस्तकाभिषेक समिति का तथा पंचबालयति मंदिर इन्दौर के ब्रह्मचारी सुरेश मलैया जी एवं ब्र. जिनेश मलैया का सहयोग प्रशंसनीय रहा।

१ अगस्त २०१८ आचार्यश्री का दासानुदास भक्त, श्रद्धालु अल्पज्ञ
वीर निर्वाण संवत् २४४५ रतनलाल जैन
विक्रम संवत् २०७५, शक् संवत् १९३९ इन्द्र भवन, इन्दौर (म.प्र.)

स्वभाषा में जिन्दगी है

हुकुमचंद सावला (अंतर्राष्ट्रीय उपाध्यक्ष विश्व हिन्दू परिषद्)

भाषा ही राष्ट्र-साहित्य और संस्कृति का निर्माण करती हैं , आदर्शों की सृष्टि करती है। जब तक आपकेपास राष्ट्रभाषा नहीं, आपका कोई राष्ट्र नहीं। भारतीय जमीन से जुड़े रचनाकार मुंशी प्रेमचंद के विचारों को यदि आज के संदर्भ में परखा जाये तो -

अब पहचानों इसकी हस्ती, हिन्दी है न इतनी सस्ती,
यह विश्व पटल पर चमकेगी , बोलो हिन्दी बस्ती बस्ती।

हिन्दी की हस्ती को आज की स्थिति में देखा जाये तो कुछ समय पूर्व विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा मंडारियन (चीनी) को पीछे छोड़कर वर्तमान में विश्व में सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा (लिंग्वाफ्रेंका) हिन्दी हो गई है किन्तु विश्वभाषा हिन्दी की अपने ही घर में दुर्दशा देखकर लोकप्रिय स्व. प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने कारावास में रहते हुए, अपनी पीड़ा कुछ इस तरह व्यक्त की थी-

बनने चली जो विश्व भाषा, जो अपने घर में दासी,
सिंहासन पर अंग्रेजी है, देख कर दुनिया हँसी ।।
हिन्दी दाँ बनते चपरासी, अफसर सारे अंग्रेजी मय, अवधि या मद्रासी।
यह कैदी कविराय विश्व की चिंता छोड़ो।
पहलेअपने घर में अंग्रेजी के घर तोड़ो।

भारत की कोटि कोटि जनता पर अनंत काल तक अंग्रेजों को थोपने का जो इतिहास रहा है, संविधान लागू होने के बाद अंग्रेजों का दबदबा बढ़ा है, अंग्रेजी ने हिन्दी, क्षेत्रीय भाषाओं और जनभाषाओं को कुचल कर रख दिया है। आजादी ७० साल बाद भीगांव का एक किसान जब संसद की दर्शक दीर्घा में आकर बैठता है तो उसके लिए संसद का मतलब लाल पत्थरों और

कुछ बड़बड़ाते हुए जनप्रतिनिधियों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होता, संसद में बैठे अनेक सांसद अपने क्षेत्र के उन मतदाताओं के साथ एक प्रकार से एक छल करते हैं जो अपने क्षेत्र के मतदाताओं से कुर्सी पर बैठने के लिए वोट तो जनभाषाओं में मांगते हैं और कुर्सी मिलते ही मतदाताओं की भाषाओं को भूलकर अंग्रेजी में संवाद करते है। इस ७० वर्ष की आजादी ने उसे क्या दिया ? जुबान भी नहीं दी। सरकार, संसद पंचवर्षीय योजना, न्याय, शिक्षा सब आमजन के लिए जादू टोना है। आमजन उस जुबान को समझ नहीं सकता जिसे बड़े लोग समझते हैं। भारत के जन सामान्य को इस व्यवस्था ने गूंगा और बहरा बना दिया है। जिस देश में ऐसी व्यवस्था आमजन को गूंगा और बहरा बनाती है उस देश में सच्चा लोकतंत्र कैसे आ सकता है ? क्या आपने सोचा है जिन्हें भारी भरकम वेतन मिलता है वे कौन है ? क्या आपने कभी ध्यान दिया है कि रेल की वातानुकूलित प्रथम श्रेणी और हवाई-जहाज में यात्रा करने वाले लोग कौन हैं ? ये वे सब लोग है जिन्हें आप अंग्रेजी दाँ कह सकते हैं। ये तथाकथित अंग्रेजी दाँ अंग्रेजी को गुड़ की तरह खाए तो पचा भी सकते हैं। लेकिन यह तबका अंग्रेजी को अफीम की तरह खाता है और इसी नशे में स्वभाषाओं की हत्या करता है। वस्तुतः हिन्दी में इस राष्ट्र के जन-जन की जिन्दगी है। उनकी अपनी संस्कृति है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी द्वारा व्यक्त किये गये स्वभाषा के बारे में इन विचारों को लम्बे अरसे सत्ता में रही पार्टी ने अपने दोगलेपन से स्वभाषा को बुरी तरह रौंदा है। पूर्व और वर्तमान में सत्ता से जुड़े तंत्र के तत्व कुर्सी पर बैठते समय राजघाट पर जाकर गाँधी जी के विचारों के अनुकूल शासन चलाने का संकल्प लेते हैं और दूसरी तरह स्वभाषा की उपेक्षा कर बापू की आस्था को क्रूरता से कुचलते हैं । गाँधी जी ने कहा था कि यदि मैं तानाशाह होता तो आज ही विदेशी भाषा में शिक्षा दिए जाने को बंद कर देता। सारे अध्यापकों को स्वदेशी भाषाएँ अपनाने पर मजबूर कर देता जो आनाकानी करते उन्हें बर्खास्त कर देता। मुझे लगता है कि जब हमारी संसद बनेगी तब हमें फौजदारी कानून में एक धारा जुड़वाने का आन्दोलन करना

पड़ेगा। यदि दो व्यक्ति जो एक-दूसरे की भारतीय भाषाएँ जानते हुए भी एक दूसरे से अंग्रेजी में बोले तो उसे कम से कम छः महीने की सजा दी जाएगी। गाँधी जी ने आगे कहा था अंग्रेजों को हम गालियाँ देते हैं कि उन्होंने हिन्दुस्तान को गुलाम बनाया लेकिन उनकी अंग्रेजी भाषा के हम अभी तक गुलाम बन बैठे हैं। इस मानसिक दासता का जलता और उबलता हुआ उदाहरण है सत्ता के संरक्षण में अंग्रेजी माध्यम की संस्थाएँ दिन दूनी रात चौगुनी कुकुरमुत्ते की तरह पनप रही है। मंच पर सफेद झूठ बोलने वाले झूठ स्वभाषा समर्थक मक्कार नेता अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम की महँगी संस्थाओं में पढ़ा रहे हैं। पिछले चार-पाँच वर्षों में तो अंग्रेजी भाषा का प्रचलन सभी स्तरों पर कैंसर की तरह स्वभाषा के शरीर में बुरी तरह फैलता जा रहा है। जनसंचार के सभी माध्यमों में हिन्दी में अंग्रेजी शब्दों की मिलावट तेजी से बढ़ती जा रही है और दूसरी और स्वभाषा को रोमन लिपि में लिखे जाने से देवनागरी सहित स्वभाषा की अन्य लिपिओं के अस्तित्व को ही खतरा खड़ा हो गया है। पूर्व में ईस्ट इंडिया कम्पनी के दादा लोग भारत से माल लूटकर अपने देश ले गए और वर्तमान में तथाकथित विकास के नाम पर विदेशियों के साथ निवेश के जो समझौते हो रहे हैं वे न केवल भारत का मूल लूटकर ले जाएंगे अपितु हमारे देश की संस्कृति और स्वभाषा को भी कंगाल कर देंगे। जब-जब भी जहाँ-जहाँ भी विदेशी पूंजी के निवेश से औद्योगिक संस्थान खुले हैं वहां की लोक संस्कृति और लोक भाषाएँ चौपटहो गयी है। दुनिया के सभी प्रमुख विकसित राष्ट्रों, रूस, फ्रांस, जापान, कोरिया, जर्मनी आदि राष्ट्रों ने अपनी-अपनी स्वभाषाओं के माध्यम से ही सभी क्षेत्रों में चहुंमुखी विकास किया। पड़ोसी राष्ट्र चीन ने स्वभाषा के दम पर ही अपने व्यवसाय में वृद्धि की है। यही कारण है कि दुनिया के बाजारों में चीनी माल भरा पड़ा है, वहां की सामग्री हमारे बाजारों में छा गई है। उल्लेखित विकसित राष्ट्रों के सामान की मांग भी भारत के बाजारों में अच्छी खासी है। स्वभाषा की अनदेखी के कारण ही भारत का निर्यात आयात की तुलना में नगण्य है। स्वभाषाओं के उन्नयन के कारण ही भारत के बाद स्वतंत्र हुए बाद में राष्ट्रों ने अपने यहाँ

मौजूद गरीबी की समस्या को आसानी से हल कर लिया है। अपने देशों से बेरोजगारी की समस्या, जनसंख्या की समस्या को उखाड़ फेंका है। भारत में गरीबी, जनसंख्या वृद्धि की जड़ स्वभाषा की उपेक्षा ही है जो वंचित और सम्पन्न वर्ग के बीच विभाजन की रेखा खींचती है हमारे यहाँ चुनावी घोषणापत्रों में गरीबी हटाओं का नारा चुनाव जीतने के लिए तो बनता है किन्तु गरीबों की स्वभाषाओं के उन्नयन के लिए चुनाव घोषणापत्र में कोई मुद्दा नहीं बनता।

राष्ट्रपिता व दयानंद सरस्वती के घोषणापत्र के सपनों को कुर्सी पर बैठे नेताओं और नौकरशाहों ने स्वभाषा का गला ही घोंटकर रख दिया। उनका सपना था **''मेरी आँखें उस दिन को देखने के लिए तरस रही है जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक ही भाषा को समझने और बोलने लगेंगे।''** राष्ट्रीय स्वयंसेवकों संघ के सर संघ चालक मा.स. गोलवलकर ने स्वभाषा की अनदेखी और दुर्दशा देखकर कहा था - **''आज देश की दुर्दशा यह है कि अंग्रेजी प्रमुख भाषा बनबैठी है और हमारी सब भाषाएँ गौण बनी हुई है। इसेबदलना होगा। यदि हम समझते हैं कि हम स्वतंत्र राष्ट्र है तो हमें अंग्रेजी के स्थान पर स्वभाषा लानी होगी।''**

संत विनोबा भावे ने कहा था **''केवल अंग्रेजी सीखने में जितना श्रम करना पड़ता है, उतने श्रम में हिन्दुस्तान की सभी भाषाएँ सीखी जा सकती है।''** ब्रिटिश लेखक जॉर्ज आरवेल ने स्वभाषा के उपेक्षा करने के षड़यंत्र को खतरनाक षड़यंत्र मानते हुए कहा था - **''किसी राष्ट्र की संस्कृति और पहचान को नष्ट करने का सुनिश्चित तरीका है उसकी भाषा को हीन बना देना। इस षड़यन्त्र को हवा पानी देने वाले इस राष्ट्र के नौकरशाह, सत्तारूढ़दल के दोगले नेता ही तो है। इसके उलट इस देश की भूमि और अस्मिता को पूजने वाले सच्चे संत, साधु, सन्यासी स्वभाषा की घोर उपेक्षा से बेहद चिंतित है।''** आचार्य श्री विद्यासागरजी स्वयं कन्नड़ भाषी है गहन विचारक है वो भारत को इंडिया बनाने वाले से संतप्त है।वस्तुतः इंडिया में अंग्रेजी दाँ रहते हैं और भारत में इस देश में स्वभाषा

बोलने वाले गरीब निवास करते हैं। आचार्य जी ने अनेक एशिया महाद्वीप ही नहीं इनसे भी कई अन्य देश के लोगों की जन भाषा (लिंग्वाफ्रेंका) सम्पर्क भाषा, कामकाजी भाषा है। इस प्रयोजन मूलक भाषा और उसके बोलने वाले करोड़ों भाषा भाईयों के गले पर अंग्रेजी का फंदा कसा जा रहा है। जरा ढीला हो जाये तो भारतीय संस्कृति की जड़ खुदने से रूक जाये और भारत राष्ट्र महाशक्ति बन जाये। संविधान से अंग्रेजी के खात्मे का परिणाम यह होगा कि एक छोटे-छोटे आदमी का सीना भी चौड़ा हो जायेगा।

विदेशी भाषा का प्रदुषण हटेगा जन-जन का कद बढ़ेगा कारण स्वभाषा तो जिंदगी है थोपी गई पर भाषा और कुछ नहीं बस जिंदगी है।

❍❍❍

कविता

कठिन साधना संयम, तप में बीती मेरी जवानी है।
विद्याधर से विद्यासागर तक की अमर कहानी है॥

सारी दुनिया की सुंदरता पग-पग पर शर्माती है।
जाने क्या आकर्षण है उनमें दुनियां दौड़ी आती है॥

हो निशलय इस महाव्रती ने, कर्मो को चक चूर किया।
लौकिक सुख की इच्छाओं को, वन सम्यक्त्वी दूर किया॥

शोभायमान तप से शरीर, उसे परम दिगंबर शत का।
दर्शन कर लो सभी मुमुक्षु, चलते फिरते तीरथ का॥

नहीं आज तक देखे ऐसे, साधु अपने जीवन में।
भक्त समर्पण कर देते है, सर्वस्त जिनके चरणों में॥

नहीं लेखनी लिख सकती है, इस वैरागी की गाथा।
नहीं उसे गा सकती वाणी, झुका रहें अपना माथा॥

संगोष्ठी रिर्पोट

त्रिदिवसीय ब्रह्मचारी संगोष्ठी सम्पन्न : ९ से ११ जुलाई २०१८

प्रस्तोता : अभिनंदन सांधेलीय, पत्रकार (पाटन) जबलपुर

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज और उनका दार्शनिक चिंतन : श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोल (कर्नाटक)

पावन मार्गदर्शन : कर्मयोगी श्री चारूकीर्ति भट्टारक महास्वामी जी

आयोजक : एस. डी. जे.एम. आई. मेनेजिंग कमेटी ट्रस्ट (रजि.) श्रवणबेलगोला

प्रथम सत्र - ८ जुलाई २०१८, रविवार दोपहर २.३० से : यात्री निवास के सभाकक्ष

अध्यक्षता - कर्मयोगी श्री चारूकीर्ति भट्टारक महास्वामी जी

मुख्य अतिथि- बाल ब्र. पंडित रतनलाल शास्त्री, इन्दौर

मंगलाचरण संगोष्ठी के निर्देशक बाल ब्र. सुरेश मलैया इन्दौर ने प्रस्तुत किया।

इस औपचारिक सत्र का संचालन करते हुए संगोष्ठी के मुख्य संयोजक बा. ब्र. जिनेश मलैया, प्रधान संपादक संस्कार सागर इन्दौर ने आगत सभी ब्रह्मचारी भाईयों का परिचय देते हुए संगोष्ठी के आयोजन पर विस्तृत विचार प्रस्तुत किये। इन अवसर पर पडिंत रतनलाल शास्त्री ने एवं कर्मयोगी भट्टारक चारूकीर्ति स्वामी ने अपने सारगर्भित वचनों के माध्यम से श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोला एवं गोम्मटेश बाहुबली विशिष्टताओं एवं आचार्य नेमिचंद सिद्धांत चक्रवती तथा चामुण्डराय के अवदान पर प्रकाश डाला।

द्वितीय संगोष्ठी सत्र -रात्रि ८.०० बजे से : यात्री निवास सभाकक्ष ८ जुलाई २०१८ रविवार

इस सत्र में सान्निध्य मिला कर्मयोगी श्री चारूकीर्ति भट्टारक स्वामी जी का मंगलाचरण प्रस्तुत करते हुए मुख्य संयोजक ब्र. जिनेश मलैया ने आगन्तुक ब्रह्मचारी भाईयों को अपना परिचय देते हुए सभी से निवेदन किया कि क्रमशः सभी ब्रह्मचारी भाई अपना अपना परिचय देकर एक दूसरे से परिचित होंगे। सभी ने बारी बारी से अपना अपना परिचय देकर आत्मीयता स्थापित किये। इस परिचय संगोष्ठी सत्र ने

भट्टारक जी को भी प्रमुदित की। जिनवाणी स्तुति के साथ सत्र का समापन हुआ।

तृतीय संगोष्ठी सत्र- प्रातः ५ बजे से बी ब्लाक आवास हाल ९ जुलाई सोमवार

मंगलाचरण- भगवान बाहुबली स्तुति एवं योगी भक्ति सामूहिक रूप से

अध्यक्षता- ब्र. प्रदीप पीयुष शास्त्री- श्रवणबेलगोला

मुख्य अतिथि- श्री हुकमचंद सांवला इन्दौर (अंतराष्ट्रीय उपाध्यक्ष- विश्व हिन्दू परिषद)

विशेष अतिथि- ब्र. नितिन भैया, इन्दौर

संगोष्ठी के इस सत्र का शुभारंभ करते हुए नितिन भैया ने कहा कि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज आचरण की जिन ऊंचाईयों पर प्रतिष्ठित हुये है हम सभी का उनके आचरण के पद चिन्हों पर चलकर अपना जीन सार्थक होता है।

मुख्य अतिथि श्री हुकुमचंद सांवला जी एवं सत्र की अध्यक्षता कर रहे ब्र. प्रदीप पीयुष ने भी आचार्य श्री के विशाल व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आप सभी ब्रह्मचारी भाईयों ने अपना जीवन आचार्य श्री को समर्पित किया है। इस संयम स्वर्ण ५०वाँ दीक्षा महोत्सव वर्ष में हमें अपना आत्मावलोकन करना चाहिए कि हमने क्या खोया और क्या पाया है।

आचार्य श्री ने हमें पद एवं पथ दोनों दिये है।

संगोष्ठी सत्र का संचालन करते हुए ब्र. जिनेश मलैया ने आज के सत्रों के संबंध में प्रकाश डालते हुए सभी से निवेदन किया कि समय से पूर्व सत्र संगोष्ठी स्थल पर पहुंच कर सहयोग प्रदान करें।

चतुर्थ संगोष्ठी सत्र- प्रातः ८.३० से १०.३० तक यात्री निवास सभाकक्ष ९ जुलाई सोमवार

सत्र अध्यक्ष - हुकुमचंद सांवला, **मुख्य अतिथि-** ब्र. विनय भैया, खानियाधाना वाले, **विशिष्ट अतिथि-** पं. रतनलाल शास्त्री इंदौर, ब्र. संजय भैया पनागर, ब्र. अशोक भैया लिधौरा, ब्र. अनिल भैया इंदौर, ब्र. जयनिशांत भैया टीकमगढ, ब्र. विनोद भैया छतरपुर **मंगलाचरण**- प्रस्तुत किया ब्र. तरूण भैया इंदौर, संगोष्ठी का संचालन किया- ब्र. सुनील भैया इंजीनियर जबलपुर ने

ब्र. दिलीप भैया विदिशा ने आचार्य श्री के चिन्तन में शिक्षा विषय को प्रतिपादित करते हुए कहा कि हित का सृजन अहं का विर्सजन ही शिक्षा है।

आचार्य श्री की प्रेरणा से बालिकाओं की शिखा के लिये प्रतिभाशाली, स्वस्थ्य तन, स्वस्थ्य मन, स्वस्थ्य वचन, स्वस्थ्य धन, स्वस्थ्य वन, स्वस्थ्य वतन, स्वस्थ्य चेतन।

सुशिक्षित व्यक्ति वही है जो अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। प्रमाण पत्र (डिग्री) हासिल करना ही शिक्षा नहीं है, हम कितने प्रमाणिक है तभी शिक्षा का महत्व है। शिक्षा के माध्यम से स्वावलम्बी बने।

ब्र. अरूण भैया कटंगी- ने आचार्य श्री के चिन्तन में सेवा विषय पर अपने आलेख को प्रस्तुत करते हुए कहा कि आचार्य श्री के अंदर प्राणी मात्र के लिए नहीं जन जन के प्रतिदया के भाव हैं। अनेक संस्मरणों के द्व ारा आचार्य श्री की समाज के प्रति दया सेवा, करूणा के उदाहरण प्रस्तुत किये। सागर, अमरकंटक में कृत्रिम अंग प्रदान करने के केन्द्र शुभारंभ मानव सेवा का ही उपक्रम है यह सब आचार्य श्री की प्रेरणा एवं शुभाशीष का सुफल है। शिक्षा के माध्यम से सेवा के लिए प्रतिभा स्थली की प्रेरणा दी।

उपचारक का प्यार भरा दुलार से रोगी की पीड़ा कम हो जाती है का सार्थक रूप है सागर का भाग्योदय तीर्थ। दया, करूणा के माध्यम से जन-जन की पीड़ा को दूर करने के लिये आचार्य श्री की प्रेरणा से अनेक उपक्रम चल रहे है। .

ब्र. अन्नू भैया शहपुरा भिटौनी - ने आचार्य श्री के जीवन उपयोगी प्रेरक प्रसंग पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि आचार्य श्री विपरीत परिस्थितियों में भी आज चर्या के प्रति जागरूक रहते है। अनेक संस्मरणों के माध्यम से आचार्य श्री की क्रिया और आचरण पर विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया।

कुमुद सोनी प्रतिष्ठाचार्य अजमेर- ने संस्मरण के माध्यम से अपनी बात रखते हुए कहा कि आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज से ब्र. विद्याधर जी के साथ मुझे द्रव्य संग्रह का अध्ययन करने का अवसर मिला। अनेक संस्मरणों को सुनकर सभी से अवहादित कर दिया।

ब्र. विनय भैया भोपाल- सदस्य गो संवर्धन बोर्ड भोपाल ने आचार्य श्री के चिन्तन में जीवदया पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आचार्य श्री की प्रेरणा से १२२ गोशालाओं संचालित हो रही है। इन गोशलाओं के माध्यम से अनेको गायों की रक्षा हुई है। जो करल खातों में कटने से बची है।

विपुल उत्पादन के नाम पर हो रहे कीटनाशकों के दुष्टप्रभाव को बतलाते हुये

कहा कि कृषि कार्य हिंसा जनित नही है पर आजकल जो खेती हो रही है हिंसामय हो गई है। भोजन की शुद्धता का ध्यान रखा जा रहा है परन्तु भोजन में सम्मिलित पदार्थ जहरीले होने जा रहे है। अब जरूरत है अहिंसक खेतों की दिशाहीन श्रम को हम एक लक्ष्य लेकर चले तो एक क्रांति खड़ी हो सकती हैं यह ब्रह्मचारी भाई सोंचे। पर्यावरण के प्रति हमारी जागरूकता बढ़े। सभी ब्रह्मचारी भाई विधान में संविधान बनायें। पंचकल्याण के साथ समाज कल्याण की भावना विकसित हो।

ब्र. शांता भैया, तमिलनाडु- ने विचार रखते हुये कहा कि आचार्य श्री विद्यासागर जी ने अपनी गुरुभक्ति से आचार्य श्री ज्ञानसागर जी को ऊँचाईयाँ दी है वह प्रकाशनीय एवं वेदनीय है। आचार्य श्री की प्रेरणा से जो कार्य सफल हो रहे है उनका श्रेय भी गुरुवर अपने आचार्य श्री ज्ञानसागर जी को दे रहें है वे महान है, चन्द्रमा के समान दूर रहकर हम सभी को शीतलता प्रदान कर रहे है। अप्रभावना से बचना ही प्रभावना है यही आचार्य श्री का मूल मंत्र है।

हुकुमचंद सांवला- ने अपने अध्यक्षीय उदबोधन सत्र का समापन ठीक वैसा ही होता है जैसे किसी की अंतिम स्थिति होती है। जैन समाज की बात अकसर नकरात्मक क्यों होती है ? उनका जबाब था कि हम अक्सर बच्चों को भारतीय खान पान के संबंध में ठीक से समझा नहीं पाते। बादाम, काजू, अखरोट की बनावट के आधार पर बच्चों को उनके फायदा। आज के संदर्भ में समझाये तब उसका प्रभाव पड़ेगा। सकारात्मक दृष्टिकोण से किये गये कार्य निश्चित परिणाम देते है। आज की राजनीति के संदर्भ में बोलते हुए उन्होंने कहा कि सभा में जो भी आता है वह सबसे पहिले अपनी कुर्सी सुरक्षित रखता है।

आचार्य श्री के कई संस्मरण सुनाये जो गुरुवर के राष्ट्रहित, समाज हित के उत्थान को सोच का दिग्दर्शन कराते है। जिनवाणी स्तुति के बाद सत्र का समापन हुआ। मुख्य संयोजक ब्र. जिनेश मलैया ने सभी का आभार माना।

पंचम संगोष्ठी सत्र : २.१५ से ५.०० बजे तक- चामुण्डराय सभा मंडप में ९ जुलाई सोमवार

सान्निध्य- वात्सल्य वारिधि- आचार्य श्री वर्धमान सागर जी ससंघ, आचार्य श्री सुविधि सागर जी ससंघ , आचार्य श्री पंचकल्याण सागर जी ससंघ, मुनि श्री उत्तम सागर जी , गणिनी आर्यिका विशाश्री माताजी, गणिनी आर्यिका जिनवाणी

माताजी, गणिनी आर्यिका गुरुवाणी माताजी सहित अन्य आर्यिका माता जी, कर्मयोगी श्री चारूकीर्ति भट्टारक स्वामी जी

मंगलाचरण प्रस्तुत किया ब्र. त्रिलोक भैया जबलपुर, ने एवं संगोष्ठी सत्र का संचालन किया ब्र. जयनिशांत प्रतिष्ठाचार्य टीकमगढ़ ने।

संगोष्ठी सत्र के प्रथम चरण में पं. रतनलाल शास्त्री इंदौर ने जीवकाण्ड ग्रन्थ की विवेचना बिना ग्रन्थ को देखा की उसे सुनकर सभी स्तबंध रह गये, जो पंडित जी गहन अध्ययन का दिग्दर्शन कराता है।

जीव काण्ड ग्रन्थ का परिचय देते हुए पंडित जी ने बतलाया कि आचार्य नेमिचन्द्र ने अपने भक्त चामुण्डराय के लिए ही जीवकाण्ड ग्रन्थ की रचना की। इसमें ७३४ गाथायें है। इस ग्रन्थ में २० प्ररूपणाओ का वर्णन है। पंडित जी साहब ने एक घंटे तक बिना ग्रंथ खोले संपूर्ण जीवकाण्ड में वर्णित सभी अधिकारों की विस्तृत विवेचन कर अपनी जिनवाणी के प्रति समर्पण की बानगी प्रस्तुत की।

द्वितीय चरण में- ब्र. अशोक भैया लिधौरा (टीकमगढ़) ने आचार्य श्री के चिन्तन में तत्त्वार्थ सूत्र आलेख का वाचन करते हुए कहा कि आचार्य श्री के द्वारा विगत अनेक वर्षो से पर्वराज पर्यूषण पर दिये गये शताधिक लगभग ५०० नये चिन्तन बिन्दु आगम सापेक्ष उन्हीं सूत्रों में गर्भित नये अर्थ संघस्थ साधक व विद्वज्जगत को प्रदान किये हैं।

आचार्य उमास्वामी महाराज के महान ग्रन्थराज तत्वार्थसूत्र के १० अध्यायों में ३२७ सूत्र हैं। आज तत्त्वार्थ सूत्र के द्वितीय अध्याय के सूत्र नं. २४ सज्ञिनः समनस्काः इस सूत्र पर ब्र. अशोक भैया ने अपना आलेख वाचन एक घंटे में पूर्ण करते हुये विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की

विशेष :- ब्र. अशोक भैया ने आचार्य श्री को जब श्रवणबेलगोला में आयोजित इस संगोष्ठी के विषय में जानकारी दी तब आचार्य श्री ने बहुत उल्लासित भाव से कहा- चलो अच्छा है इस संगोष्ठी के माध्यम से गुल्लिका यज्जी में मंगल अभिषेक के कलश की तरह मेरे चिन्तन को कलश के द्वारा अभिषेक सम्पन्न हो जायेगा। यह सुनकर भगवान बाहुबली के प्रति अगाथ श्रद्धा प्रगट हो जाती है।

हुकुमचंद सांवला (अन्राष्ट्रीय उपाध्यक्ष विश्वहिन्दु परिषद) ने सर्वप्रथम अपना साहित्य आचार्य श्री एवं भट्टारक जी को भेट किया।

श्री सांवला जी आचार्य श्री के **चिन्तन मे राष्ट्रवाद** पर अपना सारगर्भित उद्‌बोधन दिया। उन्होने कहा कि विश्व एक बाजार है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति खरीददार है।

जिसकी जेब में पैसों की भरमार है, उसी का दारोमदार है। बाकी सब बेकार है। भारत अहिंसा की भूमि है। जैन आचरण है। नई पीढ़ी इतिहास भूल रही है। इतिहास को उजागर करने से इतिहास का बहुमान बढ़ता है। भारतीय संस्कृति की मान्यता है कि विश्व एक परिवार है, जहाँ प्रत्येक को जीने का अधिकार है त्याग पूर्वक भोग ही इसका आधार है, यही महावीर का विचार है। आपने अनेक उदाहरणों के माध्यम जैन सेना नायको, जैन महामंत्रीयों द्वारा देशप्रेम की संस्कृति का बखान किया। भारत की आजादी के जैन समाज के वीर नायकों के बलिदानों की अभिव्यक्ति से सभी को रोमांचित कर दिया।

विशिष्ट सम्मानः- बाल पं. रतनलाल जी शास्त्री इंदौर को उनकी जिनवाणी की महनीय सेवा के उपलक्ष्य में कर्मयोगी चारूकीर्ति भट्टारक स्वामी जी ने शाल श्रीफल मालार्पण कर स्मृति चिन्ह प्रदान कर सम्मानित किया। आचार्य वर्धमान सागर जी ने पंडित जी को जिनवाणी प्रदान की। ब्रह्मचारी संगोष्ठी आयोजन समिति ने पंडित जी को **करणानुयोग विद्याविशारद विशद** की उपाधि से सम्मानित किया एवं प्रशस्ति का वाचन ब्र. जयकुमार निशांत टीकमगढ़ ने किया।

प्रखर वक्ता, विचारक हुकमचंद सांवला इंदौर को भी भट्टारक स्वामी जी ने शाल, श्रीफल, माल्यार्पण का स्मृति चिन्ह प्रदान कर सम्मानित किया। संगोष्ठी आयोजन समिति ने **वाणीभूषण** की उपाधि से अलंकृत किया एवं प्रशस्ति का वाचन ब्र. जिनेश मलैया, इन्दौर ने किया।

भट्टारक चारूकीर्ति स्वामी जी- इस अवसर पर अपने उद्‌बोधन में कहा कि गोपालदास बरैया विद्यालय मुरैना में मेरी शिक्षा हुई, मेरे गुरु भट्टारक जी ने भी मुरैना (म.प्र.) विद्यालय में अध्ययन किया। मेरा लगाव भी मध्यप्रदेश से है।

अपने चिंतनबिन्दु प्रस्तुत करते हुए भट्टारक ने कहा श्रवणबेलगोल से आचार्यश्री का जीवन प्रारम्भ हुआ। उनकी संयम साधना के ५० वर्ष पूर्ण होने पर सुन्दर कलात्मक कीर्ति स्तम्भ यहाँ बना है। ब्र. अशोक भैया एक पाठी है उन्होंने

आचार्य श्री की वाणी को जिस सुन्द ढंग से प्रस्तुत किया वह अभिनंदनीय है। तत्त्वार्थ सूत्र में जो ५०० बिन्दुओं की जानकारी दी है वह भी महत्वपूर्ण है। संयम और ज्ञान साथ-साथ चलते हैं। आचार्य श्री के चिंतन बिन्दु हमें प्राप्त होते रहते हैं।

आज दो महान व्यक्तियों का सम्मान हुआ। करणानुयोग के प्रतिपादन में महारत हासिल है ऐसे पंडित जी साहब मूर्धन्य विद्वान है। हम सभी गौरवान्वित है। विद्या ददाति विनयं उन पर सटीक बैठती है।

श्री सांवला जी का भाषण सुनकर मेरा खून गरम हो गया। वीर बल्लाव के कार ण ही आज दक्षिण में जैन धर्म बचा है। हम शास्त्र का स्वाध्याय करते है, आज सांवला जी ने शस्त्र का भाषण सुनकर हम सभी गौरवान्वित है। अहिंसामय राष्ट्र बताने में आप सतत् प्रयत्नशील रहे।

मुनि श्री अपूर्वसागर जी ने अपने उदबोधन में कहा आचार्य विद्यासागर जी के संयमस्वर्ण महोत्सव पर सभी ब्रह्मचारी एक साथ यहाँ एकत्रित हुये है। पं. रतनलाल जी ने जीवकाण्ड को जिस सरल उदाहरणों की माध्यम से विवेचना की एवं आधुनिक उदाहरणों से बोधकारण वह मोहनीय है। भावों की भूगोल का ग्रन्थ है जीवकाण्ड।

मुनि श्री उत्तम सागर जी ने अपने उदबोधन में कहा कि आचार्य श्री भक्त को भगवान बना देते हें। आचार्य श्री चिंता नहीं चिन्तन करते है।

आचार्य श्री सुविधि सागर ने अपने उदबोधन में कहा पं. रतनलाल जी मेरे गुरु है अभिनंदन उनके ज्ञान का अभिनंदन है। आचार्य श्री विद्यासागर के संयम और अध्ययन को नमन करता हूँ। उनके चिंतन का आदर करता हूँ।

आचार्य श्री वर्धमान सागर जी ने इस अवसर पर अपनी पीयुषवाणी से कहा- शिकवा शिकायत है इस सेना (ब्रह्मचारी भाईयों) से यही कहना हे आपकी श्रद्धा सभी में हो। आचार्य विद्यासागर जी का नाम और कीर्ति इसलिए फैल रही है कि उन्होने कार्य किये है, जो कार्य करता है, उसका नाम होता है।

एक वृक्ष अपनी जड़ो के बल पर खड़ा है। आप आचार्य श्री को याद करते है उनका मूल आचार्य ज्ञानसागर जी है,उनका भी स्मरण होना चाहिए। शिकवा-शिकायत का गलत अर्थ न निकाला जावे। श्रद्धा स्पंद आचार्य विद्यासागर को मानते हुये उसकी जड़ आचार्य ज्ञानसागर जी को न भूलें।

पंडित जी ने सरस्वती की आराधना की है। उसका सम्मान हुआ। श्री सांवला जी अंतराष्ट्रीय स्तर के नेता हे। राष्ट्र के इतिहास के ज्ञाता भी है। सुखद अनुभूति हुई कि जैनों में भी क्षत्रित्व की भावना भी रही है। जैन समाज के लोगों ने राष्ट्र के लिए बलिदान भी दिया है जानकर प्रसन्नता है। नव जवानों में राष्ट्रप्रेम जागृत करते रहें।

संगोष्ठी सत्र का संचालन कर रहे ब्र. जय निशांत टीकमगढ़, ने कहा कि देव-देह के बाद देश के लिये समय दे। संचालन के दौरान आचार्य श्री के अनेक संस्मरण के माध्यम से आचार्य श्री की महानता का दिग्दर्शन कराया। जिनवाणी स्तुति के बाद सत्र का समापन हुआ।

षष्ठ संगोष्ठी सत्र- रात्रि ७.३० से १० तक यात्री निवास सभाकक्ष ९ जुलाई २०१८ सोमवार

सत्र की अध्यक्षता- कर्मयोगी चारूकीर्ति भट्टारक स्वामी जी

मुख्य अतिथि द्वय- ब्र. अनिल भैया अधिष्ठाता इंदौर एवं श्रीमति सुशीला पाटनी किशनगढ़

विशेष अतिथि- विजया संगई, अंजनगाँव सुर्जी महाराष्ट्र

डॉ. आराधना जैन, गंजबासौदा ने आचार्य श्री के **चिंतन में मूलाचार** पर विचार रखते हुये कहा कि २८ मूलगुणों का पालन श्रमण धर्म का सोपान है। दिगम्बर मात्र होने से श्रमण नहीं होता, २८ मूलगुणों को पालन करने वाला ही श्रमण है।

ब्र. मनीष भैया तेंदूखेडा ने आचार्य श्री के **चिंतन में करूणा** पर अपने विचार रखते हुए कहा कि जीव दया के क्षेत्र में आचार्य श्री के प्रेरणा से बड़ी संख्या में गौशालायें प्रारंभ हुई है जिनके माध्यम से जीवदया का कार्य हो रहा है। करूणा एवं दया के माध्यम से जीव दया के अनेक सोपान प्रारंभ करने की प्रेरणा गुरुवर से मिल रही है। करूणा को कर्तव्य भाव से करना चाहिये दिखावा के रूप में कार्य नहीं होना चाहिए।

बिन्दु दीदी राजकोट ने मूकमाटी का गुजराती में अनुवाद किया है। अपने मूकमाटी के अनुवाद के दौरान प्राप्त अनुभूति पर प्रकाश डाला। **विजया अविनाश संगई-अंजनगाँव सूर्जी** ने मूकमाटी में नारी की भूमिका अपने विचार रखे। **ब्र. धीरज भैया राहतगढ़** ने आचार्य श्री के व्यापक दृष्टिकोण को पारिभाषित करते

हुए चिंतन के अनेक बिंदुओं को प्रस्तुत किया। **डॉ. नवीन जैन बरेली** ने आचार्य श्री के चिंतन में धर्मध्यान पर अपने विचार रखते हुए अनेक उदाहरण के माध्यम से अपने विषय को प्रतिपादित किया। **ब्र. अनिल भैया, इंदौर** ने कहा कि हम सबके ऊपर आचार्य श्री के जो उपकार है उसका ऋण चुकाने के लिए एकत्रित हुए है। अपने सल्लेखना के प्रसंग के माध्यम से आचार्य श्री के विशिष्ठ गुणों और उनके चिंतन को प्रस्तुत किया।

सत्र की अध्यक्षता कर रहे **कर्मयोगी चारूकीर्ति भट्टारक स्वामी जी** ने अपने उद्बोधन में कहा कि इस श्री क्षेत्र में बहुत सारे शिलालेख है जिनमें समाधिमरण के प्रसंग उल्लिखित हैं। इन शिलालेखों का जब अंग्रेजी में अनुवाद किया इसमें कई त्रुटियां आई। उन्हें दूर करने के लिए कोष का निर्माण किया।

धवला आदि ग्रन्थों के कन्नड़ में अनुवाद हो रहा था तब आचार्य श्री के पास से अनेक पत्र आये जिनसे हमें आत्मबल मिला। गुरुदेव के पत्रों से हमें मार्गदर्शन मिला यही हमारी प्रसन्नता का कारण भी है।

आचार्य श्री महाकाव्य पर विचार प्रगट करते हुए कहा कि इसमें शान्तिदान की प्रधानता है। सचमुच मूकमाटी बोलती है। आचार्य श्री की प्रेरणा जीर्णोद्धार,साहित्य, जीवदया, मानवसेवा के अनेक कार्य हो रहे है। वे अभिनंदनीय है वंदनीय है।

इस सत्र का संचालन ब्र तरूण भैया ने करते हुए कहा कि गुरुवर ने पथ दिया, पद दिया पाथेय दिया उनके चरणों में शब्द सुमन समर्पित है। प्रारंभ में मंगलाचरण ब्र. विजय भैया लखनादौन एवं ब्र. नितिन भैया इंदौर ने प्रस्तुत किया।

सप्तम संगोष्ठी सत्र : प्रातः ५ बजे बी ब्लाक आवास सभाकक्ष १० जुलाई मंगलवार

मंगलाचरण - सामूहिक बाहुबलि स्तुति, सिद्धभक्ति पद्यानुवाद आचार्यश्री विद्यासागर जी

अध्यक्षता- सुरेश मारौरा इन्दौर : संचालन- ब्र. जिनेश मलैया इंदौर

ब्र. पारस भैया, भोपाल ने आचार्य श्री के **चिंतन में शिक्षा** पर अपने विचार रखते हुये कहा कि आचार्य श्री मातृभाषा में शिक्षा के लिए प्रमुखता दे रहे है। मातृभाषा जीवित रहेगी तभी हजारों संस्कृति जीवन्त रहेगी। आचार्य श्री की चर्या हमें बहुत कुछ सिखा देती है। उन्होने लौकिक और पारमार्थिक कार्यों को

कल्याण मार्ग से जोड़ा है। आचार्य श्री के हम पर बहुत उपकार है। जो कई जन्मों तक नहीं चुका पायेंगे।

ब्र. सुनील भैया, तारंगा ने आचार्य श्री के **चिंतन में नारी गौरव** अपने विचार रखते हुए कहा है कि भारतीय संस्कृति में नारी को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। नारियां महापुरुषों के जननी है, हमारी समाज की शक्ति है। अनेक उदाहरण के माध्यम से नारी समाज के गौरव को उद्घाटित किया।

सुरेश मारौरा, इंदौर ने अपने उद्बोधन में पर्यावरणी की उपेक्षा से होने वाले, दुष्प्रभाव को इंगित करते हुये कि स्वस्थ्य तन और मन के लिए शुद्ध वातावरण की जरूरत है। पर्यावरण के लिए हमें वृक्षारोपण पर ध्यान देना होगा। वृक्ष लगाना सरल है पर उनकी सुरक्षा की जिम्मेदारी भी सम्हालनी होगी।

ब्र. जिनेश मलैया इंदौर ने आज सभी ब्रह्मचारी भाईयों के लिये आज होने वाले गोम्मटेश्वर बाहुबली स्वामी के महामस्तकाभिषेक की व्यवस्था के संबंध में जानकारी देते हुए कहा कि श्री भट्टारक स्वामी जी के सान्निध्य में सुबह ७.३० बजे से अभिषेक प्रारंभ होगे। श्री कर्मयोगी चारूकीर्ति भट्टारक जी ने प्रासुक जल की व्यवस्था कराई है। आप सभी जिनके पास पात्र है नीचे से प्रासुक जल ले जा सकते है। श्री मलैया जी ने सभी ब्रह्मचारी भाईयों से अपील करते हुए कहा कि हम सभी कुछ न कुछ द्रव्य देकर ही अभिषेक करें । उनकी अपील कर सभी ने अपनी ओर से राशि की घोषणा की।

ब्रह्मचारी भाईयों ने किया महामस्तकाभिषेक

भगवान गोम्मटेश्वर बाहुबली स्वामी का महामस्तिकाभिषेक करने के लिए सभी ब्रह्मचारी भाईयों में एक विशेष उत्साह परिलक्षित हो रहा था। श्री भट्टारक स्वामी जी ने विशेष रूप से प्रासुक जल की व्यवस्था करवायी साथ ही साथ स्वर्ण की झारी से सभी को अभिषेक कराने की व्यवस्था भी कराई गई। ठीक आठ बजे ब्रह्मचारी संगोष्ठी के निर्देशक ब्र. सुरेश मलैया इंदौर ने सभी ब्रह्मचारी भाईयों की ओर से एक लाख इक्कीस हजार रूपयों की राशि की घोषणा कर प्रथम स्वर्ण कलश से बाहुबली भगवान का अभिषेक किया तदुपरांत सभी ब्रह्मचारी भाईयों को स्वर्ण झारी से प्रासुक जल देकर अभिषेक करने का सुअवसर मिला साथ ही साथ श्री कर्मयोगी चारूकीर्ति भट्टारक स्वामी जी ने प्रत्येक ब्रह्मचारी भाईयों को महामस्तिकाभिषेक के बाद रत्न एवं रजत पुष्प भगवान को ऊपर समर्पण करने

स्वयं देते रहे। ब्र. जिनेश मलैया ने व्यवस्थित रूप से महामस्तिकाभिषेक की विधि सम्पन्न कराई। अभिषेक के बाद मंच के प्रथम तल पर आकर ब्रह्मचारी भाईयों ने सामूहिक रूप से विधि विधान पूर्वक पूजन अर्चन सम्पन्न की।

जिस श्रद्धा और भक्ति पूर्वक सभी ब्रह्मचारी भाईयों ने श्रीजी का अभिषेक और पूजन अर्चन किया वह अपने आप में अदभुत एवं बेजोड़ दृश्य उत्पन्न कर गया। लगभग २०० ब्रह्मचारी भाई एक साथ पूजन अर्चन में संलग्न थे ऐसा नजारा बस देखते ही बनता था। अनेक ब्रह्मचारी भाईयों ने इस अदभुत नजारें को अपने अपने मोबाईल में कैद कर लिया गोम्मटेश बाहुबली स्वामी के श्री चरणों में बारम्बर नमन कर न चाहते हुये पर्वतराज से उतरने का मन बनाना पड़ा।

अष्टम संगोष्ठी सत्र- दोपहर २.३० बजे यात्री निवास सभाकक्ष (मठ के पास) १० जुलाई मंगलवार

मंगल सान्निध्य- मुनि श्री उत्तमसागर जी महाराज

अध्यक्षता - डॉ. भागचन्द्र भास्कर, नागपुर

विशेष अतिथि- डॉ. के.एम. गंगवाल, पुणे, वी.पी. नियम गौड़ा, जमखंडी, डॉ. रेखा जैन बेंगलोर, डॉ. बारेलाल जैन रीवाँ, डॉ. अरविन्द जैन इन्दौर, ब्र. प्रदीप पीयूष

संचालन- ब्र. जिनेश मलैया, प्रधान सम्पादक संस्कार सागर, इंदौर

मंगलाचरण- प्रस्तुत करते हुये ब्र. अविनाश भैया, भोपाल ने आचार्य श्री के वात्सल्य करूणा, अनुकम्पा से सम्बन्धित

उनके संस्मरण सुनाकर अपनी विनयांजलि गुरु चरणों से समर्पित की।

ब्र. अभय भैया मंडला ने अपने विचार रखते हुए कहा कि गुरु आज्ञा से हम दो ब्रह्मचारी भाई विदिशा चातुर्मास हेतु गये। वापसी में हम दोनों ने गुरुचरणों में पहुंच कर सभी वृतांत सुनाये। गुरुवर ने कहा कि मै जानता था कि तुम लोग प्रभावना करके आओगे। शेर का बच्चा पंजा मारना जानता है। यह विश्वास था गुरुवर को अपने शिष्या पर। आचार्य श्री के चिंतन के अनेक प्रसंग प्रस्तुत करते हुये कहा कि गुरुवर ने कहा था कि जो मेरा शिष्य मेरी आज्ञा का पालन करता है वह दूर रहकर भी पास है। और जो शिष्य आज्ञा नहीं मानता वह पास रहकर भी दूर है।

वी पी. नियम गौड़ा जमखंडी (कर्नाटक) ने मूकमाटी का कन्नड़ में

अनुवाद किया जो भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली से प्रकाशित है। श्री नियम गौड़ा ने कर्नाटक महाकाव्य और मूकमाटी पर संस्मरण के माध्यम से विचार प्रस्तुत करते हुये कहा कि मूकमाटी का अनुवाद करने के पूर्व कुंडलपुर में आचार्य श्री से मिला। मैने गुरुवर से कहा कि २ बार मूकमाटी को पढ़ा पर हर बार नया लगता है। में मूकमाटी का शब्द सह अनुवाद न कर भावानुवाद करूंगा। वस्तुतः मूल पुस्तक नैसर्गिक प्रसूति है, अनुवाद आपरेशन से प्रसूति है बच्चा दोनों से मिलता है। मूकमाटी पर भोपाल में आयोजित संगोष्ठी के संस्मरण सुनाते कहा कि मूल लेखक का संगोष्ठी में उपस्थित होना लाभ भी है, नुकसान भी है। उनकी उपस्थिति में हम टीका नहीं कर सकते। यदि कोई समस्या खड़ी होती है उसका समाधान मिलना लाभदायक हैं। सच तो यह है कि मूकमाटी काव्य शास्त्र है या साहित्य का शास्त्र है।

डॉ. रेखा जैन बैंगलोर (कर्नाटक) ने मराठी महाकाव्य और मूकमाटी का तुलनात्मक अध्ययन पर अपने विचार रखते हुये कहा कि गोम्मटेश बाहुबली का अभिषेक और आचार्य श्री का संयम स्वर्ण महोत्सव दोनों मणि काँचन योग है। मैंने विद्याधर से विद्यासागर का मराठी अनुवाद किया। मैने समग्र आचार्य श्री द्वारा सृजिन साहित्य एवं प्रवचनों का ४ भाग में संकलन को पढ़कर आचार्य श्री को बहुत नजदीक से जाना है। माटी जैसे तुच्छ वस्तु पर महाकाव्य लिखना सबके बस की बात नहीं है। आचार्य श्री प्रतिभा के सुमेरू है। आचार्य श्री ने मूकमाटी के माध्यम से श्रमण संस्कृति की विशेषताओं का दिग्दर्शन कराया है। मूकमाटी के माध्यम से अनेक संदेश दिये है। इस मूकमाटी ग्रंथ को रचकर भारतीय श्रमण संस्कृति को अजर अमर कर दिया है।

ब्र. सुदेश कोठिया इंदौर पूर्व प्राचार्य जैन गुरुकुल खुरई (सागर) ने आचार्य श्री को काव्य (तुकांत छंद) के माध्यम से विनयांजलि प्रस्तुत की।

डॉ. बारेलाल जैन रीवा ने आचार्य श्री के काव्य में रस योजना की विवेचना करते हुए कहा कि श्रमण संस्कृति में हमेशा शान्त रस को प्रमुखता दी गई है। आपने अनेक उदाहरण के माध्यम से आचार्य श्री के काव्यों में रस योजना की विवेचना की।

डॉ. के.एम. गंगवाल पुणे ने जानकारी देते हुये बतलाया वर्षों से जीवदया के क्षेत्र में कार्यरत हूँ। विगत ३-४ वर्षों से विदेश में जैन जीवन शैली के प्रचार-

प्रसार में कार्य कर रहा हूँ। २००-२५० लोगों को अंग्रेजी की मूकमाटी पढ़ने दी। उसे पढ़कर अनेक लोगों ने शराब और माँस के त्याग की भावनाव्यक्त की है। समय समय पर आचार्य श्री से मार्गदर्शन के लिया जाता रहता हूँ। अनेक संस्मरण के माध्यम से गुरुवर की अनुभूतियों को सुनाया।

सुरेश सरल जबलपुर ने श्रेष्ठ साहित्यकार आचार्य श्री विद्यासागर पर अपने विचार रखते हुये आचार्य श्री के साहित्य की विशिष्ठताओं पर विस्तृत विवेचन करते हुये मूकमाटी महाकाव्य की विशिष्ठताओं पर प्रकाश डाला। सच तो यह है कि आचार्य श्री के साहित्य में आत्मा है कि आत्मा में साहित्य है।

ब्र. विनोद भैया, छतरपुर ने एक संस्मरण के माध्यम से आचार्य श्री के चिंतन की विशिष्टताओं पर बोलते हुआ कहा। एक बार मैंने आचार्य श्री पूंछा जीवन का क्या सार है ? लक्ष्य तक कैसे पहुंचे ? गुरुवर का उत्तर था

शास्त्रों का हो, पठन सुखदा लाभ सत्संगति का,
सत् वृत्तों का सुजस कहके, दोष ठाकूँ सभी का।

जीवन की जो व्यवस्था है जिसका तुम्हें बोध नहीं है। जीवन शास्त्रों के अध्ययन मनन में चल रहा है, वह सही है। इस पंचमकाल में और कुछ न हीं किया जा सकता। एक उदाहरण के माध्यम से समझाते हुए आचार्य श्री ने कहा कि एक कमरे में एक चिड़िया घुस आई। अनेक बार प्रयास करने पर भी वह बाहर निकल पाने में असमर्थ थी। लोगों ने तालियां बजाकर उसे संकेत दिये पर वे विफल रहे। तभी एक दूसरी चिड़िया ने झरोके में प्रवेश कर चहचहाना शुरु किया अपने सजातीय सहयोगी की आवाज सुनकर पहिले वाली चिड़िया कमरे से बाहर निकलने में सफल रही। यह समझना चाहिए, संगति के कारण ही अपने जीवनदान मिला। अपनी आत्म निंदा करते रहो अपने अहंकार का विसर्जन करें। दूसरों के दोषों को न देखे। अंत में सल्लेखना भाव आने से जीवन की पूर्णता होगी। साधना में धैर्य रखें तत्काल फल की चिंता न करें।

ब्र. बहिन सुवर्णा दीदी -(आचार्य श्री की ग्रहस्थावस्था की बहिन) नेअपने विचार रखते हुये कहा कि संयम स्वर्ण महोत्सव की शुरुआत डोंगरगढ़ से प्रारंभ हुई पता नहीं समापन कब कहां होगा। आचार्य श्री के एक प्रवचन का संस्मरण सुनाते हुए कहा कि आचार्य श्री ने प्रवचन सभा में उपस्थितजनों को इंगित करते हुए कहा कि असंयमी होकर एक संयमी को सुख देना चाहते हो।

संयम अंतरमुर्हूत का होता है। आप को संयम अच्छा लगता है। आपके यहाँ से (भारत से) मछली का निर्यात होता है, तब आपको पेट्रोल आता है। आचार्य श्री ने वाहन का उपयोग कम करने का आह्वान किया। बहुत कम हाथ उठे। तब आचार्य श्री ने कहा आपको पता चल गया संयम क्या है। यह कठिन कार्य है। जिनसेनाचार्य ने भाव संग्रह ग्रन्थ में लिखा है कि चतुर्थ काल में १००० वर्ष की साधना पंचम काल की एक वर्ष की साधना के बराबर है उस हिसाब से आचार्य श्री की साधना ५०,००० वर्ष (पचास हजार वर्ष)के बराबर है।

ब्र. बहिन शान्ता दीदी (आचार्य श्री ग्रहस्थवस्था की बहिन) ने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि आचार्य श्री को दीक्षा लिये ५० वर्ष हो गये है। दीक्षा क्या है ? आचार्य कुंदकुंद स्वामी ने अष्टपाहुड़ में लिखा है- जिन दीक्षा लोभ रहित होती है, पाप से रहित, विकांर से रहित, भय से रहित होती है।

सत्र की अध्यक्षता कर हरे डॉ. भागचंद भास्कर (नागपुर) ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि जीवन का सौरभ कृतज्ञता में है। ब्रह्मचारी भाईयों में ऊपर उठने की जो लालसा है वह वंदनीय है। मूकमाटी पर विचार व्यक्त करते हुये कहा मूकमाटी न काव्य शास्त्र है न ही शास्त्र का काव्य है, वह दोनों का मिला रूप है। हम नहीं कह सकते है कि यह महाकाव्य है या खण्ड काव्य है। मूकमाटी जैसा काव्य, उसमें जो लक्षण मिलते है वह कहीं नही है। मूकमाटी जितनी बार पढ़ता हूँ उसमें से नई-नई बाते मिलती है।

आज ब्रह्मचारी वर्ग के हाथ में समाज का सूत्र है, शिक्षण की बागडोर भी हैं। हमें दर्शन की नहीं इतिहास की आवश्यकता है। ब्रह्मचारी को प्रतिमाओ का सही उपयोग होना चाहिए। आपको जैनेत्तर धर्म का गहन अध्ययन करना होगा तभी आप जैन धम के मर्म को समझा सकते है। समय शक्ति और प्रतिभा का उपयोग करें। जैन धर्म की प्राचीनता बहुत है पर हम उसे प्रस्तुत नहीं कर पा रहे है।

आचार्य श्री का साहित्य समयसार पर आधारित है। दिगम्बर साहित्य और श्वेताम्बर साहित्य एक दूसरे के पूरक हैं ।

मुनि श्री उत्तम सागर जी ने संक्षिप्त मार्मिक प्रवचन में कहा कि आचार्य श्री की चेतन कृतियां एक-एक महाकाव्य है। आचार्य श्री भक्त नहीं शिष्य बनाते हैं। भक्त थोड़े वक्त के लिये आता है, शिष्य हमेशा के लिए बनता है।

जिनवाणी स्तुति के बाद सत्र का समापन हुआ।

नवम् संगोष्ठी सत्र- रात्रि ७.३० बजे से यात्रि निवास सभाकक्ष १० जुलाई मंगलवार २०१८

सान्निध्य एवं अध्यक्षता श्री कर्मयोगी चारूकीर्ति भट्टारक स्वामी जी

मुख्य अतिथि- श्री महावीर अष्टंगे, सदलगा

विशिष्ट अतिथि- श्री अभिनंदन सांधेलीय, पत्रकार पाटन

मंगलाचरण- संगीतकार रामकुमार ने समधुर गीत के माध्यम से प्रस्तुत कर वातावरण की मंगलमय कर दिया।

संचालन- ब्र. अनिल भैया अन्नू शहपुरा (भिटोनी)

ब्र. अजित सौरई शिखर जी ने जेन शिक्षा में वर्णी जी का योगदान पर अपनी बात रखते हुये कहा आज जितने भी अद्भूत विद्वान जैन समाज के है वे सब गणेशप्रसाद वर्णी जी की देन है। अधिकांशतः इन विद्वानों की शिक्षा वर्णी जी द्वारा स्थापित गुरुकुलों में ही हुई है। आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के शिक्षा और दीक्षा गुरु आचार्य ज्ञानसागर जी का विद्यार्थी जीवन स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी में ही सम्पन्न हुआ। श्री भूरामल से भूरामल शास्त्री वर्णी जी की दृरदृष्टि का परिणाम है आज जो उद्भट विद्वान है वे सभी वर्णी जी के द्वारा स्थापित गुरुकुलों के विद्यार्थी रहे हैं। ये शिक्षा केन्द्र आगे चलकर विद्वानों की खान बने।

ब्र. बहिन डॉ. रश्मि जैन, बीना ने आचार्यश्री के चिंतन में लोकतंत्र विषय पर अपने आलेख पर वेबाकी से विचार प्रस्तुत कर सभी की प्रसंशा अर्जित की। डॉ. रश्मि ने कहा मैने समाज और संस्कृति को खगालने का प्रयास किया है। शासन व्यवस्था में जो खामियां है, उन्हें खूबियों में कैसे बदला जाये।लोकतंत्र में सभी मतों का आदर होना चाहिये। आचार्य श्री का चिंतन है कि लोकतंत्र में मैत्री भाव की जरूरत है। ही पश्चिमी सभ्यता का द्योतक है भी भारती संस्कृति का द्योतक है।

तेरी दो आंखे
तेरी ओर हजार
सतर्क हो जो

यह आचार्य श्री का हाईकू बहुत कुछ कहता है। न्याय व्यवस्था में भी दोष है। कभी-कभी अपराधी बच जाते हैं और निरपरा धी दंडित हो जाते है। नशाखोटी भी लोकतंत्र पर बड़ा खतरा है। इस प्रवृत्ति पर रोक होना चाहिये। आज लोकतंत्र-

मततंत्र और धनतंत्र में बदल गया ,गणतंत्र नहीं रहा। जीवन जीने की शैली सिखाता हे प्रथमानुयोग।

ब्र. राजेश भैया टड़ा ने आचार्य श्री चिंतन में जैन धर्म पर अपने विचारों में कहा कि जैन धर्म वैज्ञानिक धर्म है। सभी जीवों का संरक्षण और संवर्धन होते रहना चाहिये। जैन धर्म के मूल तत्त्वों के प्रति सभी का समर्पण रहे। राजनीति में धर्म आ जाये तब रामायण बनती हे और धर्म में राजनीति आने पर महाभारत। जैन धर्म जबरदस्ती का नहीं जबरदस्त धर्म है।

ब्र. इंजीनियर सुनील भैया जबलपुर ने संयोजना विसंयोजना के परिक्षेप में आचार्य श्री विद्यासागर जी पर अपने सारगर्भित विचार रखे।

संस्थाओ का सम्मान :- कर्मयोगी चारूकीर्ति भट्टारक स्वामी जी का सम्मान

इस सम्मान समारोह का संचालन करते हुये ब्र. जय निशांत टीकमगढ़ ने कहा कि अक्षराभिषेक से भगवान गोम्मटेश्वर बाहुबली स्वामी का महामस्किाभिषेक शुभारंभ हुआ है। जिन आश्रमों में ब्रह्मचारी भाई रहकर जिनवाणी की प्रभावना कर रहे हे उन सभी का सम्मान श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोला के जगद्‌गुरु कर्मयोगी स्वस्ति श्री चारूकीर्ति भट्टारक स्वामी जी को करने की भावना है। उसी श्रृंखला में १२ आश्रमों को एक-एक मंगल कलश भट्टारक स्वामी जी प्रदान कर रहे हैं।

१. श्री विद्यासागर आश्रम पंचबालयति मंदिर इंदौर - पं. रतनलाल शास्त्री

२. श्री उदासीन आश्रम इंदौर- अधिष्ठाता ब्र. अनिल भैया

३. श्री ज्ञानसागर आश्रम नेमवार- ब्र. राजेश नायक

४. आचार्य श्री विद्यासागर तपोवन तारंगा जी- ब्र. सुनील भैया

५. श्री गणेशप्रसाद वर्णी आश्रम ईसरी- ब्र. अनिल अन्नू भैया

६. श्री गणेशप्रसाद वर्णी गुरुकुल जबलपुर- ब्र. त्रिलोक भैया

७. साहित्याचार्य पं. पन्नालाल शोध संस्थान जबलपुर- ब्र. प्रदीप पीयूष भैया

८. श्री वृशाखाचार्य तपोनिलय पोन्नूरमलै तमिलनाडु- ब्र. इंजिनियर शांतकुमार

९. उदासीन श्राविकाश्रम इन्दौर- ब्र. बहिन अंजना दीदी

१०. बाह्मी विद्याश्रम जबलपुर- ब्र. बहिन अभिलाषा दीदी

११. ब्राह्मी विद्याश्रम सागर- ब्र. माया दीदी

१२.अ. मा. विद्वत परिषद- अध्यक्ष डॉ. भागचंद भास्कर नागपुर

इन १२ संस्थानो को सम्मान स्वरूप एक-एक मंगल कलश भट्टारक चारूकीर्ति स्वामी जी ने संस्थान के प्रतिनिधियो को प्रदान कर सम्मानित किया।

कर्मयोगी भट्टारक जी का वंदन : अभिनंदन

श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोला के भट्टारक श्री चारूकीर्ति जी को उनकी महनीय सेवाओ के लिये ब्रह्मचारी भाईयों के भाव वन्दना के हुए और उन्हें सम्मानित करते हुये सम्यक्त्व दिवाकर की उपाधि से देकर। सर्वप्रथम संगीतकार रामकुमा र ने स्वामी जी के सम्मान में गीत प्रस्तुत किया। प्रशस्ति पत्र का वाचन ब्र. अशोक भैया दशम् प्रतिमा धारी लिधोरा टीकमगढ़ ने किया। स्वामी जी को सम्मान प्रशस्ति, आचार्य श्री विद्यासागर का नयनाभिराम विशाल चित्र आचार्य श्री महाकाव्य **मूकमाटी** पर ३५० विद्वानों के समीक्षा का ग्रन्थ **मूकमाटी मीमांसा तीन भाग** (प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली) ब्रह्मचारी परिवार की ओर से पं. रतनलाल , ब्र. जयनिशांत, ब्र. जिनेश मलैया, डॉ. कल्याणमल गंगवाल पुणे, ब्र. विनोद भैया छतरपुर ने भेंटकर उनकी मान वंदना की।

भट्टारक चारूकीर्ति स्वामी जी ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि इतनी बड़ी संख्या में आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के ब्रह्मचारी शिष्य आज ऐसा लग रहा है कि यह लौकांतिक देवों का सभा हो। १२ संस्थाओ के प्रतिनिधि यहाँ आये भगवान बाहुबली स्वामी का अभिषेक भी १२ वर्षों के अंतराल में होता हैं। सभी संस्थाओं को मंगल कलश प्रदान किये गये। पूर्ण कुंभ का स्वरूप है मंगल कलश।

अपने एक आदेश दिया सम्यक्त्व दिवाकर बनो को स्वीकार करता हूँ। सम्मान के रूप में नही, आचार्य श्री विद्यासागर गुरुवर के आशीष जुड़े है इसे मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ। थोड़ा किया है बहुत करना है-

आचार्य श्री का अवदान महत्वपूर्ण है उनका चिंतवन, मनन चिरस्थायी है। यहाँ उनके सम्मान में कीर्ति स्तम्भ खड़ा हैं आप सभी उनके कीर्तिस्तम्भ बने। किसी राजा। चक्रवर्ती के इतने स्तम्भ नहीं बने जितने गुरुवर के संर्पूण भारतवर्ष में बने। **महामस्तिकाभिषेक और आचार्य श्री का इस क्षेत्र से बड़ा संबंध है।**

सन् १९६७ के महामस्तिकाभिषेक में आचार्य श्री देशभूषण के साथ बालक विद्याधर आये थे। यहाँ से हा उनका संयम का मार्ग प्रशस्त हुआ था।

भारत के माननीय राष्ट्रपति, माननीय प्रधानमंत्री जी इस महोत्सव में पधारे जाने के पूर्व सभी ने साधु वृन्दों को नमन किया। महामस्किाभिषेक सभी को जोड़ता है उत्तर को दक्षिण से और दक्षिण को उत्तर से।

महामस्तिकाभिषेक के समय संयम स्वर्ण महोत्सव का आयोजन अपने आप में गौरवपूर्ण है। स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य कार्यक्रम हो गया। धातु में और अक्षरों में भी स्वर्ण के रूप में लिखा है। भट्टारकों ने शास्त्रों के संरक्षण में महनीय योगदान दिया है।

संत भी विद्वान हो गये है यह आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की देन है। आचार्य श्री ने विद्वत्ता प्राप्त कर अपने शिष्यों को विद्वत्ता पूर्ण कर रहे हैं। आज त्यागी भी विद्वान हो रहें है। आचार्य श्री के कारण ही यह परिवर्तन हुआ है। आचार्य श्री संयम के भी सुवर्ण और ज्ञान के भी सुवर्ण और ज्ञान के भी सुवर्ण है।

इस अवसर पर आर्यिका अंतमति जी की कृति अभिराम यात्री का विमोचन पं. रतनलाल जी एवं मुनि श्री अजित सागर जी कृति विद्या का सागर का विमोचन ब्र. संजय भैया पनागर ने किया। मुनि श्री की यह कृति बच्चों को पठनीय और महनीय है। जिनवाणी स्तुति के बाद सत्रावसात हुआ।

दशम् संगोष्ठी सत्र- प्रातः ५ बजे से ११ जुलाई २०१८ बुधवार

मंगलाचरण सामूहिक बाहुबली स्तुति, पंच महागुरु भक्ति

अध्यक्षता- ब्र. अनिल भैया अधिष्ठाता इंदौर, मुख्य अतिथि- ब्र. जय निशांत टीकमगढ़

विशेष अतिथि- ब्र. विनोद भैया छतरपुर, ब्र. प्रदीप पीयूष श्रवणबेलगोला।

संगोष्ठी संचालन करते हुये ब्र. जिनेश मलैया इंदौर नेकहा कि जैन न्याय अकादमी पंचबालयति मंदिर इंदौर में प्रारंभ हुई है। जहाँ जहाँ से न्याय ग्रंथो का प्रकाशन हुआ है उनका संकलन पंचबालयति मंदिर इंदौर में किया जा रहा है। ऐलक श्री सिद्धांत सागर प्रतिवर्ष २-३ शिविर न्याय के लगाते रहे हैं तथा अध्ययन के लिए सरल पाठयक्रम तैयार किया जा रहा है। पहिले प्रशिक्षण बाद में शिक्षण होगा। जो जिस विषय में रूचि रखते है वे सभी अपनी अपनी रूचि लिखकर दे तदनुरूप विषय के हिसाब से अध्ययन अध्यापन की व्यवस्था की जा सके।

ब्र. विनोद भैया छतरपुर ने अपने भाव व्यक्त करते कहा कि हम सभी भाई है। हम सभी को प्रेम और सहयोग की आवश्यकता है। दूरियां होने से संपर्क नही है। विसंगतियों से दूर है। हम सब के बीच में सहयोग की भावना बढ़े। दूरियां कम कैसे हो यह विचारणीय है। हमें जयनिशांत टीकमगढ़ को केन्द्रबिन्दु बनाकर कार्य करना होगा।

ब्र. तरूण भैया इन्दौर ने पीड़ा व्यक्त करते कहा कि बड़े लोग छोटो का सहयोग नही करते।

ब्र. मनीष भैया तेंदूखेडा ने कहा कि हमें एक दूसरों की मर्यादा का ध्यान रखना चाहिये। व्हीं.आई. पी. कल्चर बढ़ रहा है हम सबके बीच इस पर भी विचार हो।

ब्र. प्रदीप पीयूष भैया ने कहा कि हमारा और आपका लक्ष्य क्या है ? एक ही बात ध्यान में रखे सम्यक दर्शन ज्ञान चारित्र। सम्यक् दर्शन की भूमिका मजबूत करनी है। हमें निंदा से बचना चाहिये।

अध्यक्षीय उद्‍बोधन में ब्र. अनिल भैया इंदौर ने कहा कि संगठन उद्देश्य विहीन न हो। ज्ञान के अभाव में हम बटे हुये हैं। विचारों में एकता स्थापित हो। आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है। इच्छाओं की पूर्ति संभव नहीं है। आज ब्र. भैया संग्रह कर रहे हैं पर उपयोग नहीं कर रहें है ध्यान ओर अध्ययन पर ही लक्ष्य हो, दीन-हीन न बनें। विचारों में एकता हो, जीवन निर्वाह का लक्ष्यन हो, निर्वाण का लक्ष्य हो। जिनवाणी स्तुति के बाद समापन हुआ।

एकादश संगोष्ठी सत्र- ७.३० बजे से १०.३० बजे तकः यात्री निवास सभाकक्ष ११ जुलाई २०१८ बुधवार

अध्यक्षता- डॉ. संगीता मेहता इंदौर,

मुख्य अतिथि- पं. रतनलाल जी शास्त्री इंदौर

विशिष्ट अतिथि- महावीर अष्टगे, सदलगा, ब्र. त्रिलोक भैया

संचालन किया- ब्र. जिनेश मलैया एवं ब्र. प्रदीप पीयूष ने

ब्र. कल्याणमल झांझरी कोलकाता ने आचार्य श्री विहार बंगाल - उड़ीसा के अनेक संस्मरण सुनाते हुये कहा कि आचार्य श्री कभी भी विहार की सूचना नहीं देते हैं। हम विहार बंगाल-उड़ीसा वालों को आचार्य श्री के सम्मेद शिखर जी के विहार की सूचना नही थी। श्री विमल कुमार मलैया सागर का

टेलीग्राम प्राप्त हुआ तब हमें ज्ञान हुआ। हमने देखा आचार्य श्री कभी प्रतिवाद नही करते। बंगाल का एक संस्मरण सुनाते हुये कहा कि आचार्य श्री कलकत्ता में प्रवेश कर विश्राम स्थल पर पहुंच गये। दूसरे दिन कलकत्ता के समाचार पत्रों से आचार्य श्री के प्रवेश का समाचार प्रमुखता से छाया। एक समाचार पत्र ने छापा था कि एक व्यक्ति को कलकत्ता ने देखा पर उसने कलकत्ता को नहीं देखा आचार्य भगवन सदैव नीची निगाह कर चलते हैं।

ब्र. राजेश वर्धमान सागर ने जब बोलना प्रारंभ किया सभागार में अजीब सी शांन्ति छा गई क्योंकि राजेश भैया अधिकांशतः मौन ही रहते है संभाषण लिखकर करते है। उन्होंने कहा तर्कशास्त्र जीवन की समस्या हैं और साधना भी है। ब्रह्मचारी भाई विद्याधर बन चुके है अतिकांश भाईयों ने विमान यात्रा की हैं। अब ब्र. विद्याधर का आचार्य श्री का ब्रह्मचाी अवस्था का नाम बनकर जीवन सफल करें। उनका अनुकरण करना चाहिये।बीच में समय हो रहा है ऐसा संचालक : ब्र. जिनेश मलैया ने कहा कि अब आपका समय शुरू हो रहा है।

हमें भौतिक साधनो से बचना चाहिये। यदि हम भौतिक साधनों को उपयोग में लायेंगे तो धनिकों के आश्रित हो जायेंगे। जब आप धनिकों के आश्रित होगे तो अंदर से खोखले हो जायेंगे। आपने संयम से कितने सुखी है जो लोगों को प्रेरणादायी बने। सत्याग्रह और सत्याग्रही बने। किसी भी ज्ञानवान से अध्ययन को हृदय में धारण करें।

ब्र. तात्या भैया सांगली (महाराष्ट्र) ने अपने विचार रखते हुये कहा कि आचार्यश्री जो भी कहते है उसके अनुपालन के लिए कार्यकर्त्ता कहाँ है ? यदि हम आचार्य श्री के विचारों का प्रचार-प्रसार करे तभी एक क्रांति देश में आ सकती है।

आचार्य श्री जैन समाज के संत हैं , हम उनके विचारों को देश और समाज के बीच रखे तो गुरुदेव जन जन के संत हो सकते है।

महाराष्ट्र प्रांत एवं कर्नाटक प्रांत के बीच बसे जैन भाईयों की दयनीय स्थिति को बताते हुये कहा कि ३ सालों में १६ जैन परिवारों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। जब उनसे संपर्क किया तब उन्होंने कहा कि हम परेशानी में थे तब आपका धर्म कहा था। हम अपने स्तर पर बसे उन जैन भाईयों के

लिए कार्य कर रहे है। समाज के उपेक्षित वर्ग के लिये कुछ कार्य तभी हमारा संयम स्वर्ण महोत्सव मनाना सार्थ होगा।

ब्र. नवीन भैया जबलपुर ने विद्याधर से विद्यासागर पर समीक्षात्मक दृष्टिकोण रखते हुये कहा कि यह कृति अपने आप में जैन धर्म का सार है क्योंकि इस कृति में चारों अनुयोग समाहित है। ब्र. संतोष भैया सागर ने आचार्य श्री के अवदान में मोह तथा ब्र. संजय भैया कटंगी ने आचार्य श्री और वैराग्य पर अपने विचार प्रस्तुत किये।

मुख्य अतिथि **पं. रतनलाल जी शास्त्री इंदौर** कहा कि ने बोलना कठिन है या मौन रहना कठिन है।७२ मिनिट की भावना ५ मिनिट में समापन करना है। पंड़ित जी ने तीर्थंकर के समोशरण की विशेषताओं का दिग्दर्शन कराते हुये कहा कि आचार्य श्री को कैवल्य प्राप्त होने के भाव प्रगट करते हुए कहाँ हमें भी समोशरण में स्थान मिले।

डॉ. संगीता मेहता नेअपनी अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि संगोष्ठी प्रसांगिक भी है और सार्थक भी है। आचार्य श्री के आगे शब्द गौण हो जाते है। वाणी मौन हो जाती है। वे आत्मा के शिल्पी है या अध्यात्मक के शिल्पी है। वे करूणा के शिल्पी है। वे पर्यावरण के हितैषी है। वे दया की मूर्ति हैं। उन्होंने जिनवाणी के भंडार को समृद्ध किया है। मूकमाटी में जीवन, दर्शन, नीति का समावेश है। संस्कृत में शतकों की परंपरा में उनका योगदान महनीय है। जिनवाणी की स्तुति के साथ समापन हुआ।

द्वादश संगोष्ठी सत्र- दोपहर २.३० बजे यात्री निवास सभाकक्ष ११ जुलाई २०१८ बुधवार

सान्निध्य - मुनि श्री उत्तमसागर जी महाराज एवं कर्मयोगी चारूकीर्ति भट्टारक स्वामी

मुख्य अतिथि- पं. रतनलाल शास्त्री, विनोद बाकलीवाल संयोजक संगोष्ठी मैसूर, ब्र. जय निशांत टीकमगढ़

डॉ. भागचंद्र भास्कर नागपुर ने मूकमाटी जैसा मैंने जाना और समझा पर अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा कि कृति में रचनाकार की शून्य से शिखर की यात्रा है।

मूकमाटी का कवि चरित्रनिष्ठ साहित्यकार है। आचार्य श्री की जीवनधारा मूकमाटी में मिल जायेगी मूकमाटी आचार्य श्री की जीवन गाथा है, ऐसा मेरा मानना है। मिट्टी के माध्यम से आचार्य श्री ने अपना जीवन प्रस्तुत किया, दूसरे रूप में एक साधारण व्यक्ति का जीवन भी माना जा सकता है।

मूकमाटी में उपादान और निमित्त का सुन्दर विवेचन किया है। इसमें श्रमण साधना का रूप दिया गया है। मूकमाटी में शान्त रस है उसे अध्यात्म रस भी कह सकते हैं। मूकमाटी में वीतराग भावना का विवेचन है जो अन्यंत नहीं मिलेगा। मूकमाटी साधना का उपक्रम है ओर मानवता वादी भी इसकी विशेषता है।

ब्र. अतुल भैया बरनावा (उत्तरप्रदेश) बरनावा जी गुरुकुल के संस्थापक भी है ने कहा कि शिक्षा से वंचित जो छात्र है हम अपने गुरुकुल में उन्हें प्रवेश देकर उनके सर्वागगीय विकास पर ध्यान देते है। समाज में यदि कही ऐसे छात्र हो तो उन्हें हमारे पास भेजें।

ब्र. नितिन भैया इंदौर ने आचार्यश्री के चिंतन में जिनालय निर्माण पर अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा कि जीवन के उत्कर्ष के लिये जितनी शिक्षा की जरूरत होती है, जिनालय का निर्माण भी जीवन के लिये आवश्यक है। मंदिर का भव्य होना समाज को भी भव्य बना देता है। जिनालय श्रमण संस्कृति का द्योतक होता है।

ब्र. त्रिलोक भैया जबलपुर ने गोम्मटेश बाहुबली स्वामी की विशिष्ठताओं को बतलाते हुये कहा कि गोम्मटेश का वस्तुतः दर्शन करना हो तो एक बार गोमटेश गाथा को जरूर पढ़े।

ब्र. करूणा भैया भोपाल ने आचार्य श्री के असाधारण व्यक्तित्व के संस्मरण सुनाते हुये एक प्रसंग को सुनाते हुये बतलाया कि नैनागिरि जी में राजाराम वर्णी की सल्लेखना के पूर्व उन्होंने संघ के सभी मुनि, ऐलक, क्षुल्लक महाराजों से पूंछा कि सत पात्र मिलना कठिन है, आज मिल रहा है आप लोगों का क्या विचार है। एक आचार्य अपने संघ से पूछने वाला वस्तुतः साधारण व्यक्ति नहीं हो सकता है।

ब्र. अमित भैया (एम. टेक. शिक्षित) हथकरघा कुण्डलपुर ने अपनी

बात रखते हुये कहा कि दो ढाई वर्ष पूर्व आचार्य श्री की प्रेरणा कुछ भाईयों को प्राप्त हुई जो उच्च शिक्षित थे। आचार्य श्री ने बहुत करीब से ग्रामीणजनों की जीवन शैली को देखा है। ग्रामीण जन ४-५ माह ही कृषिकार्य कर पाते हैं। उन्हें वैकल्पिक व्यवस्था उपलब्ध कराया जाये, उसी का उपक्रम है। हथकरघा पुरानी पद्धति ही क्यो ! समाज और संस्कृति को बचाने में एवं कला कौशल को बढ़ावा देने के लिए पुरानी पद्धति कारगर है। ग्रामीण जनों को स्वरोजगार की प्रेरणा देना। जिससे गांव से पलायन न हो। आज की शिक्षा व्यवस्था के कारण हम हमारी भारतीय संस्कृति को भूल रहे है या भुलाया जा रहा है। यह हथकरघा ग्रामीणजनों में कला कौशल को बढ़ावा देगी।

ब्र. मनीष भैया (बीनाबारहा) ने शांतिधारा दुग्ध योजना बीना (बारहा) के संबंध में जानकारी देते हुए कहा कि किसान कार्य तो कर रहा है पर कला कौशल को भूलता जा रहा है जो ग्रामीण परिवेश के ही थे। किसानों और ग्रामीण जनों को रोजगारोन्मुखी योजना है। शांति धारा दुग्ध योजना। इसके माध्यम से उनका जीवन स्तर उठाया जा रहा है और जैविक खेती के लिये प्रोत्साहित किया जा रहा है।

सम्मानः बहुमान :संस्थाओंः ब्रह्मचारी भाईयों

श्री कर्मयोगी चारूकीर्ति भट्टारक स्वामी द्वारा सिद्धायतन, सागर एवं द्रोणागिरि आश्रम तथा आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज संघस्थ बहिनो को सम्मानित करते हुये मंगल कलश प्रदान किया।

जिनेश मलैया इंदौर मुख्य संयोजक ब्रह्मचारी संगोष्ठी को उनकी अर्हनिस सेवाओ के लिए मंगल कलश प्रदान कर भट्टारक स्वामी जी ने सम्मानित किया। इस संगोष्ठी को सम्पन्न कराने में उनका योगदान स्मरणीय है।

ब्रह्मचारी भाईयों को भट्टारक स्वामी द्वारा बहुमान-

ब्रह्मचारी संगोष्ठी में पधारे सभी ब्रह्मचारी भाईयों एवं विशिष्टजनों का एस.डी. जे. एम. आई. मैनेजिंग कमेटी ट्रस्ट के सौजन्य से सभी को प्रशस्ति पत्र के साथ हथकरघा से निमित्त धोती दुपट्टा। कुरता पजामा के वस्त्रों को भेंट स्वरूप श्री कर्मयोगी चारूकीर्ति भट्टारक स्वामी ने प्रदान कर बहुमान दिया। ब्रह्मचारी बहिनों को प्रशस्ति पत्र तथा हथकरघा से निर्मित्त साड़ी भेंट की गई।

इस अवसर पर ब्रह्मचारी संगोष्ठी के मुख्य संयोजन जिनेश मलैया, उपाध्यक्ष जयनिशांत ने सफल आयोजन के लिए संयोजन श्री विनोद बाकलीवाल मैसूर श्री राजेश शास्त्री श्रवणबेलगोला, श्री रामदास शास्त्री जी त्यागी सेवा, श्री अशोक जी वाहन व्यवस्थापक एवं श्री विद्याप्रकाश जी ट्रस्ट कमेटी के सचिव को उनकी सेवाओं के लिये साधुवाद देते हुये प्रशस्ति पत्र (शील्ड) वस्त्र प्रदान कर बहुमान दिया।

श्री कर्मयोगी चारूकीर्ति भट्टारक स्वामी जी ने अपने मार्मिक उद्बोधन में अपनी लघुता प्रगट करते हुये कहा कि महामस्तिकाभिषेक के पूर्व संस्कृत, प्राकृत कन्नड़ भाषा की संगोष्ठी हुई।

महिला समाज, युवा वर्ग, पत्रकारों के साथ विद्वत समाज के सम्मेलन एवं कवि सम्मेलन आदि हुये। सभी सम्मेलनों से श्रेष्ठ सम्मेलन ब्रह्मचारी संगोष्ठी के रूप सम्पन्न हुई।

हमारी प्रार्थना को वात्सल्य देकर हमें आशीष दिया। ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ विद्वान पंडित रतनलाल जी इन्दौर का जो सम्मान हुआ है वह अनुकरणीय है वस्तुतः यह आगम का सम्मान है। इस संगोष्ठी में भैया और बहिनों ने जो आलेख प्रस्तुत किये उससे ऐसा लगता है कि अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ।

महामस्तिकाभिषेक के अवसर पर माननीय राष्ट्रपति जी पधारे। उन्हें जो शॉल भेंट किया गया वह हथकरघा से निर्मित्त था। उन्हें जानकारी दी गई यह आचार्य श्री के आदेश से निर्मित्त हुआ है। माननीय राष्ट्रपति ने उसे स्वीकार करते हुये कहा कि आचार्य श्री को हमारा नमोस्तु ज्ञापित करें।

ब्रह्मचारी सम्मेलन में उपस्थित ब्रह्मचारी को देखकर सभी आश्चर्य चकित है। ऐसा लग रहा था कि यह लौकांतिक देवों की सभा है। आप सभी आचार्य श्री की विचार धारा को बढ़ा रहें है।

श्री भट्टारक स्वामी जी ने ब्र. जिनेश मलैया के प्रसंशनीय कार्य की सराहना करते हुये कहा कि ब्र.जयनिशांत भी अनुभवशील है। ब्र. संजय भैया संयम स्वर्ण महोत्सव के मुख्य संयोजक है उनका योगदान महत्वपूर्ण और सराहनीय रहा।

मुनि श्री उत्तम सागर जी महाराज ने आशीर्वाद प्रदान करते हुये कहा कि विद्याधर सदलगा ने यहाँ ब्रह्मचर्य, व्रत लिया ७ प्रतिमां के व्रत ग्रहण किये

थे। आज आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के शुभाशीष की छांव तले इतने सारे ब्रह्मचारी यहाँ आये। आचार्य श्री एक बार सम्पूर्ण संघ लेकर आ जाये तब एक नया इतिहास रच जायेगा। बीच में ही महामस्तिकाभिषेक हो जायेगा।

बनोगे भक्त, बदले वक्त
बनोगे शिष्य, बदलेगा भविष्य
भक्ति कम होता है।

भगवान महावीर स्वामी की वाणी ६३ दिन तक नहीं खिरी भक्त तो थे पर शिष्य न था जैसे ही शिष्य मिला भगवान के वाणी खिरी।

आज यहाँ इतनी बड़ी संख्या में आचार्य श्री के शिष्यों के देखकर मन प्रफुल्लित हैं। सभी का गुरुदेव के प्रति समर्पण प्रशंसनीय है।

जिनवाणी स्तुति के बाद चार दिन से अनवरत चली रही संगोष्ठी का समापन हुआ।

ब्रह्मचारी संगोष्ठीः यादगार लम्हें

१. यों तो प्रतिवर्ष अनेक स्थानों पर संगोष्ठियां होती रहती है। विद्वत समाज एकत्रित होता है। विचारों की अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है पर श्री क्षेत्र में आयोजित ब्र. संगोष्ठी अपने आप में बेमिशाल थी। अधिकांश ब्रह्मचारी भाई पूर्व में हो आकर श्री गोम्मटेश्वर बाहुबली स्वामी का महामस्तिकाभिषेक कर चुके थे। इस संगोष्ठी ने महामस्तिकाभिषेक के साथ ही साथ अक्षराभिषेक का सुनहरा मौका दिया जिसका लोभ सम्भरण कर सभी ब्रह्मचारी भाईयों को आने पर मजबूर किया।

ब्रह्मचारी भाईयों की बस एक ही चाहत थी हम भी एक इस अभियान में सम्मलित हों। अधिकांश वक्ताओं ने अपने विषय पर बोलते के अलावा आचार्य श्री विद्यासागर जी से संबंधित संस्मरण जरूर सुनाये। सुनाते भी क्यों नहीं। जिन गुरुवर के चरणों में अपना जीवन समर्पित कर दिया हो, उनका गुणानुवाद करने का मौका क्यों छोड़े।

२. ११ जुलाई २०१८ को प्रातः काल ५.०० बजे आयोजित दशम् संगोष्ठी सत्र में सभी ब्रह्मचारी भाईयों को अपनी बात कहने का अवसर मिला।

वह अदभुत नजारा था। कनिष्ठ ब्रह्मचारी भाईयों ने जिस शालीनता के साथ अपने अग्रज, ब्रह्मचारी भाईयों से मन की व्यथा व्यक्त की, पीड़ा व्यक्त की कठिनाईयां व्यक्त की सभी वरिष्ठ भाईयों ने अपने अनुज भाईयों को सम्बल दिया, विश्वास दिया भरोसा दिलाया अपने आपको अकेला मत समझो। हर पल-हर समय हम आपके साथ है। हर परिस्थिती में आपको सहयोग देंगे। इस निर्णय के साथ वह सत्र विसर्जित हुआ कि संवाद-समन्वय सहयोग होगा। संपर्क बनाये रखें।

३. ब्रह्मचारी संगोष्ठी निर्देशक ब्र. सुरेश मलैया सदैव की भांति ब्रह्मचारी भाईयों को स्वादिष्ट भोजन कराने में ही संलग्न रहे। सुबह हो या शाम उनकी भोजनशाला में हर बार एक नया पकवान मिला। वरिष्ठ ब्रह्मचारी भाई अपने आहार के बाद अपने अनुज भाईयों को एक अभिभावक कि तरह भोजन परोसने में लगे रहे।पंचबालयति जिनालय इंदौर की भोजनशाला अपने आथित्य सत्कार के लिये जानी जाती है वही नजारा यहाँ भी दिखाई दिया। भोजन में गुलाब जामुन, जलेबी, मोदक वर्फी की बहार रही तो केला बड़ा, कचौरी, मंगौड़ी भी पीछे नहीं रही।

४. सच तो यह है कि इस संगोष्ठी को सफल बनाने में ब्र. जिनेश मलैया की जितनी प्रशंसा की जाये कम है। जिस लगन और निष्ठा के साथ प्रत्येक व्यवस्था पर ध्यान दिया। उनकी ब्रह्मचारी भाईयों की हर सुविधा पर पैनी नजन रखी। सभी की सुनी, सभी को संतुष्ट किया। और मना करने पर बाद में कई ब्रह्मचारी भाई अपने परिवार जनों को साथ ले आये पर परिवारजनो की हर सुविधा का ध्यान रखा जैसे स्वयं के परिवार जन हो।

वहीं उनके अग्रज ब्र. सुरेश मलैया जिनका वाहन का त्याग है, ए. सी. का त्याग है अपने अनुज ब्रह्मचारी भाईयों के आग्रह और स्नहेभाव को स्वीकार कर श्रवणबेलगोला गये और प्राश्चित स्वरूप कुछ उपवास करने का संकल्प श्रवणबेलगोला से लेकर आये। उनका अधिकांश समय भोजनशाला में ही व्यतीत हुआ। प्रतिदिन एक समय में २००-२५० व्रतीजनों, प्रतिमाधारियों की भोजन व्यवस्था को चुस्त और दुरस्त उन्होंने बनाये रखी।

५. कर्मयोगी स्वस्ति श्री चारूकीर्ति भट्टारक स्वामी जी की गुण ग्राहिता

के जितनी तारीफ की जाये कम है। श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोला जैसे विशाल क्षेत्र की व्यवस्थाओं पर उनकी पैनी नजर रहती है। श्री क्षेत्र के माध्यम से शिक्षण संस्थाये अस्पताल के अलावा भी अन्य उपक्रम संचालित है। उनकी व्यवस्था देखने के साथ ही आगत विद्वान के प्रति, त्यागी व्रती के प्रति आदर सम्मान देने में भट्टारक जी सदैव तत्पर रहते हे।

भट्टारक स्वामी जी द्वारा त्यागी व्रतियों को आदर और सम्मान तक देते है। साथ ही एक उन्हें समादरणीय भी कहते है। इस विशिष्ठ गुण ने उन्हें महान बनाया है। उनका तत्वचर्या में बहुत मन लगता है। २-२ घंटे रात्रि में तत्वचर्या के दौरान उनके ज्ञान और स्वाध्याय के अनेक रूप सामने आये। प्रश्नों के जबाव आगमानुकूल ही होते थे। उनकी सरलता और सादगी वंदनीय है।

संत शिरामणी आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के प्रति उनका समर्पण, उनकी भक्ति उनकी सदभावना अनूठी और बेजोड़ है। अनेक संस्मरणों के माध्यम से उनका आचार्य श्री के प्रति अनुराग हम सभी को सुनने मिला।

६. कुछ जिज्ञासुओं ने एक प्रश्न उठाया कि आचार्य श्री पर संगोष्ठी श्रवणबेलगोला में क्यों वह भी उनके ब्रह्मचारी भाईयों की। इस यज्ञ प्रश्न का एक ही जबाज भी यक्ष ही है।

आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज के सान्निध्य में १९६७ में श्री श्रवणबेलगोला का महामस्तिकाभिषेक हुआ था। युवा विद्याधर उनके संघ के साथ यहाँ महामहोत्सव में सम्मिलित हुये थे। महामस्तिकाभिषेक देखकर उन्होंने आचार्य श्री देशभूषण जी से ब्रह्मचर्य व्रत और सप्तम् प्रतिमा के व्रत अंगीकार किये थे।

कर्नाटक में जन्में पढ़े-बढ़े और संयम मार्ग का बीजारोपण भी कर्नाटक की इसी भूमि में ही प्रारंभ हुआ, विद्याधर से ब्रह्मचारी विद्याधर की जीवनयात्रा का शुभारंभ श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोल से हुआ इसीलिए यह क्षेत्र सभी आचार्य श्री के शिष्यों के लिये वंदनीय है। जिन युवाओं ने अपना जीवन गुरुचरणों में समर्पित कर ब्रह्मचारी पद पाया गुरुवर ने पथ और पाथेय दिया हो वह क्यों नही आना चाहेगा संयम स्वर्ण दीक्षा महोत्सव के वर्ष में श्री क्षेत्र श्रवणबेलागोला जहाँ उसे मिल रहा है गुरुवर का अक्षराभिषेक का सुवर्ण अवसर।

७. आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज, मुनि श्री समयसागर जी महाराज, मुनि श्री योगसागर जी महाराज के गृहस्थ जीवन के अग्रज श्रावक श्रेष्ठि महावीर अष्टगे, भाभी श्रीमति अलका अष्टगे, बहिन ब्र. शान्ता दीदी, बहिन सुवर्णा दीदी के साथ श्री महावीर जी अष्टगे के सुपुत्र अक्षय अष्टगे, पुत्रवधु स्वाति अष्टगे के एवं नाती राजद्वय चि. नमन एवं चि. समग्र की गौरवमयी उपस्थिति ने गरिमा प्रदान की। आचार्य श्री के गृहस्थ परिवार जनों की एक साथ उपस्थिति से सभी रोमांचित थे, उत्साहित थे। बहुतायत ब्रह्मचारी भाईयों ने इन यादगार लम्हों को कैद किया अपने मोबाइल में। सभी से आचार्य श्री एवं मुनि द्वय के संस्मरण सुनने लालायित रहे। कौन कितना पा सका वह प्राप्त करता ही जानता है। हाँ इतना कह सकता हूँ कोई निराश नहीं हुआ इस परिवार से।

८. संयम स्वर्ण मुनि दीक्षा महामहोत्सव की यादगार में बना कीर्ति स्तंभ आचार्य श्री की गौरव का युगों-युगों तक गाता रहेगा। इस संगोष्ठी के समापन के पूर्व कीर्ति स्तंभ के साथ अपनी तस्वीर लेने के भाव सभी के थे जिसकी पूर्ति हुई और सभी ब्रह्मचारी भाईयों , आगत विद्वानों के ग्रुप के साथ फोटो लिये गये।

इसी समय श्रावक श्रेष्ठि महावीर अष्टगे परिवार (सदलगा, बहिन शांता दीदी, बहिन सुवर्णा दीदी) के साथ भी अनेक ब्रह्मचारी भाईयों ने यादगार लम्हें अपने पास सुरक्षित किये।

९. श्री विनोद बाकलीवाल मैसूर जो कि राष्ट्रीय महामस्तिकाभिषेक कमेटी में सांस्कृतिक प्रकोष्ठ मंत्री भी है ब्रह्मचारी संगोष्ठी के संयोजक पद का जिम्मेदारी का बखूबी निर्वाहन किया। प्रत्येक व्यवस्थाओं को सुचारू पूर्वक पूर्ण कराई और स्वयं देखकर जो कभी दिखी उसे दुरूस्त भी कराये। उनकी महनीय सेवाओं के लिये धन्यवाद। साधुवाद शब्द भी बौनें है। कृर्त्तत्व परायणता के लिये बधाईयां प्राप्त हैं।

१०.सभी ब्रह्मचारी भाई आभारी है एस.डी.जे.एम.आई. मैनेजिंग ट्रस्ट कमेटी के जिन्हों ने ब्रह्मचारी संगोष्ठी सम्पन्न करने में महती भूमिका निर्वाहन

किया। ट्रस्ट कमेटी के सचिव विद्याप्रकाश को भी आभार ज्ञापित है उन्होंने समय-समय पर व्यवस्थाओं के संबंध में अपने अधीनस्थ सहयोगियों को निर्देश देते रहे।

११.ब्रह्मचारी संगोष्ठी श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोला में सानंद सम्पन्न कराने में ब्र. प्रदीप पीयुष की भूमिका प्रशंसनीय रही। जब-जब उनसे सहयोग मांगा अथवा जो जिम्मेदारी सौपी उसे तत्परता से पूर्ण किया। उनकी आत्मीयता एवं वात्सल्य अनुकरणीय है।

१२. लोकार्पण - जीवन विकास की पहली पहल मुनिश्री कुंथुसागर जी महाराज द्वारा लिखित पुस्तक का तथा मेरे सपनों का भारत सक्रिय सम्यग्दर्शन पर आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज के प्रवचन पुस्तक का अविराम यात्री, आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज के जीवन दर्शन पर आधारित कॉमिक्स का, संस्कार सागर हिन्दी मासिक पत्रिका जिसमें आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज के संयम स्वर्ण महोत्सव पर १४ विशेषांक प्रकाशित किये गये। इनका लोकार्पण भट्टारक चारुकीर्ति स्वामीजी ने किया।

अंत में अपनी बात :-

मैं एक अल्पज्ञ गुरु भक्त हूँ। मैं भी आचार्य भगवन श्री के चरणों में अक्षराभिषेक करने का सुनहरा मौका कब छोड़ने वाला था। मैं भी पहुँच गया गोम्मटेश बाहुबली स्वामी के धाम श्रवणबेलगोला संगोष्ठी को बहुत करीब से देखा। ब्रह्मचारी भाईयों में गुरुवर के अक्षराभिषेक करने की आतुरता भी देखी विषय चाहे जो हो उसमें गुरुवर के संस्मरण न हो ऐसा कम ही हुआ।

एक पत्रकार होने के नाते जैसा- जाना-पाया ब्रह्मचारी संगोष्ठी को उस पर अपनी कलम चलाई। मेरी अज्ञानता या प्रमाद वश मेरे से त्रुटि होना संभव है। अतः मेरी चूकों और भूलों के प्रति क्षमा भाव व्यक्त करता हूँ।

कर्मयोगी श्री चारूकीर्ति भट्टारक स्वामी जी के प्रतिकृतज्ञता ज्ञापित किये बिना आलेखन अधूरा है, उनकी उदारता, गम्भीरता गुण ग्राहिता वंदनीय है।

जय गोम्मटेश- जय विद्यासागर।

शब्द शिल्पी- **अभिनंदन सांधेलीय ,**
पत्रकार, पाटन, जबलपुर

सर्वाधिक दीक्षा प्रदाता : आचार्यश्री विद्यासागर

• ब्र. जिनेश मलैया, इन्दौर •

दीक्षा की परिभाषा को सार्थक करने वाले आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज इस युग के ऐसे संत है जिन्होंने हजारों बाल ब्रह्मचारी, योग्य, विलक्षण प्रतिभा के धनी, बहुत बड़े युवा त्यागियों क़ा समूह जैन समाज के लिए दिया। श्रमण संस्कृति के आधुनिक इतिहास में इतनी बड़ी संख्या में दीक्षित संयमी जन समूह प्रस्तुत करने वाले मेरे संज्ञान मे कोई दूसरे आचार्य नहीं हैं। दीक्षा देने वाले अनेक आचार्य मिल सकते हैं किन्तु आचार्यश्री विद्यासागर जी के पास दीक्षार्थियों की बहुत बड़ी पंक्ति आज भी लगी हुई है। किन्तु आचार्यश्री उनकी अनेक रूप से परीक्षा लेने के बाद भी उनसे एक ही बात कहते हैं, भावना रखो और साधना करो, उनके मापदंड में खरे उतरने के बाद ही वे योग्य अंतरंग साधना करने वालों को ही दीक्षा देने की सोचते हैं। आचार्यश्री ने प्रलोभन(लालच), धमकी के दबाव में आकर किसी को भी, कभी कोई दीक्षा नहीं दी। वे प्रायःअपने प्रवचनों में कहा करते हैं कि मैं किसी को भी नियम दीक्षा नहीं देता हूँ अपितु दीक्षार्थी अपनी योग्यता, साधना और इच्छा शक्ति तथा स्थिर अडिग संकल्प बल पर दीक्षा लेता है।

दीक्षा का अर्थ बहुत गहरा है, शिवराम वामन आप्टे ने अपने संस्कृत हिन्दी शब्दकोश में दीक्षा शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा है कि 'धर्म संस्कार के लिए समर्पण, पवित्रीकरण का नाम दीक्षा है।' प्रव्रज्या शब्द दीक्षा के अर्थ में ग्रहण किया जाता है। बोध पाहुड़ की गाथाओं में दीक्षा का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है -

गिहगंथमोहमुक्का वावीसपरीसहा जियकसाया।
पावारंभ विमुक्का पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।४५।।

जो निवास स्थान और परिग्रह के मोह से रहित है, बाईस परीषहों को जीतने वाली है, कषाय से रहित है तथा पाप के आरम्भ से अथवा पापपूर्ण खेती आदि के आरम्भ से मुक्त है ऐसी दीक्षा कही गई है।

सत्तूमित्ते व समा पसंसणिंदा अलद्धिलद्धिसमा।
तणकणए समभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।४७।।

जो शत्रु और मित्र में सम है, प्रशंसा, निन्दा, अलाभ और लाभ में सम है, तथा तृण और सुवर्ण में समभाव रखते हैं, वे दीक्षा के पात्र हैं।

जहजायरुवसरिसा अवलंबियभुअ णिराउहा संता।
परकियणिलयणिवासा पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।५१।।

जो तत्काल उत्पन्न हुए बालक के समान नग्न रूप से सहित है, जिसमें भुजाएँ नीचे की ओर लटकी रहती हैं, जो शस्त्र से रहित है, अथवा प्रासुक प्रदेशों पर जिसमें गमन करते हैं, जो शान्त है तथा जिसमें दूसरे के द्वारा बनाये हुए उपाश्रय में निवास किया जाता है , उसे जिनदीक्षा कही गई है।

उवसमखमदमजुत्ता सरीरसक्कारवज्जिया रुक्खा।
मयरायदोसरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।५२।।

जो उपशम, क्षमा और दम से सहित है, शरीर के संस्कार से रहित है, रुक्ष है, और मद राग, द्वेष अथवा दोषों से रहित है, वह जिनदीक्षा कही गई है ।।५२।।

प्रव्रज्या/दीक्षा का लक्षण सुनिश्चित किया गया है गृह और परिगृह तथा उनके ममत्व से जो रहित है २२ परिषह तथा कषायों को जिसने जीता है पापारंभ से जो रहित है उसे प्रव्रज्या कहा है जिसमें शत्रु-मित्र में, प्रशंसा-निंदा, लाभ-अलाभ, तृण कंचन मे समभाव हो उसे दीक्षा/ प्रव्रज्या कहा है यथाजात रूपधर लम्बायमान भुजा, निरायुध, शांत, दूसरों के द्वारा बनाई वसतिका में वास, शरीर संस्कार रहित तथा तेलादि के मर्दन से रहित, रुक्ष शरीर सहित ऐसी प्रव्रज्या कही गयी है। इस दीक्षा के स्वरूप को सार्थक करते हुए आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज ने १३१ मुनि, १७२ आर्यिका, ६० एलक, १४० क्षुल्लक, ३ क्षुल्लिका इस प्रकार कुल ५०६ साधकों को दीक्षा दी है।

दीक्षा के पूर्व दीक्षार्थियों के आवश्यक कार्यों को आचार्यश्री कुन्दकुन्द देव ने **प्रवचन सार के चारित्र अधिकार** में इस प्रकार कहा है -

आपिच्छ बंधुवग्गं विमोचिदो गुरुकलत्तपुतेहिं।
आसिज्ज णाणदंसणचरित्ततववीरियायारं ।।२।।

जो जीव मुनि होना चाहता है, वह पहले ही अपने कुटुम्ब के लोगों से पूछकर अपने को छुड़ावे। छुड़ाने की रीति इस तरह से है - भो इस जन के शरीर के तुम भाई बंधुओ, इस जन का (मेरा) आत्मा तुम्हारा नहीं हैं, ऐसा तुम निश्चयकर

समझो। इसलिये तुमसे पूछता हूँ, कि यह मेरे आत्मा में ज्ञान-ज्योति प्रगट हुई है, इस कारण अपना आत्मस्वरूप ही अनादि भाई बंधु को प्राप्त होता है। अहो इस जन के शरीर के तुम माता-पिताओ, इस जन का आत्मा तुमने उत्पन्न नहीं किया, यह तुम निश्चय से समझो, इसलिये तुम इस मेरे आत्मा के विषय में ममता भाव छोड़ो। यह आत्मा ज्ञान-ज्योतिकर प्रगट हुआ है, सो अपना आत्मस्वरूप ही माता पिता को प्राप्त होता है। हे इस जनके शरीर का मन हरने वाली स्त्री, तू इस जनके आत्मा को नहीं रमण कराती, (प्रसन्न करती) यह निश्चय से जाना, इस कारण इस आत्मा से ममत्व भाव छोड़ दे। यह आत्मा ज्ञान-ज्योतिकर प्रगट हुआ है, इसलिये अपनी अनुभूति रूप स्त्री के साथ रमणस्वभावी है। हे जन के शरीर का पुत्र, तू इस जन के आत्मा से नहीं उत्पन्न हुआ, यह निश्चय से समझ। इस कारण इसमें ममता भाव छोड़। यह आत्मा ज्ञान-ज्योतिकर प्रगट हुआ है, इसलिये अपने आत्मा का यह आत्मा ही अनादि पुत्र है, और वह उसको प्राप्त होता है। इस प्रकार माता, पिता, स्त्री, पुत्रादि कुटुम्ब से अपना पीछा छुड़ावे। अथवा जो कोई जीव मुनि होना चाहता है, वह तो सब तरह कुटुम्ब से विरक्त ही है, उसको कुटुम्ब से पूछने का कुछ कार्य ही नहीं रहता, परन्तु यदि कुटुम्ब से विरक्त होवे, और जब कुछ कहना पड़े, तब वैराग्य के कारण कुटुम्ब के समझाने को इस तरह के वचन निकलते हैं। यहाँ पर ऐसा नहीं समझना, कि यदि विरक्त होवे, तो कुटुम्ब को राजी करके ही होवे। कुटुम्ब यदि किसी तरह राजी न होवे, तब कुटुम्ब के भरोसे रहने से विरक्त कभी हो ही नहीं सकता। इस कारण कुटुम्ब के पूछने का नियम नहीं है। यदि कभी किसी जीव को मुनि-दशा धारण के समय कुछ कहना ही होवे, तो पूर्वोक्त प्रकार उपदेशरुप वचन निकलते हैं। उस तरह के वैराग्य रूप वचनों को सुनकर जो निकट-संसारी जीव कुटुम्ब में हों, वे भी विरक्त हो सकते हैं तथा इसके बाद सम्यग्दृष्टि जीव अपने स्वरूप को देखता है, जानता है, अनुभव करता है, अन्य समस्त ही व्यवहार भावों से अपने को भिन्न मानता है, और परभावरूप सभी शुभाशुभ क्रियाओं को हेयरूप जानता है, अंगीकार नहीं करता। लेकिन वही सम्यग्दृष्टि जीव पूर्व बंधे हुए कर्मों के उदय से अनेक प्रकार के विभाव (विकार) भावों स्वरूप परिणमता है, तो भी उन भावों से विरक्त है; वह यह जानता है,

कि जब तक इस अशुद्ध परिणति की स्थिति है, तब तक यह अवश्य होती है, इस कारण आकुलतारूप भावों को भी नहीं प्राप्त होता। यह सम्यग्दृष्टि जीव तो सकल द्रव्य भाव रूप विभावभावों का तभी त्याग कर चुका, जब इसके स्व पर विवेक रूप भेदविज्ञान प्रगट हुआ था, और तभी टंकोत्कीर्ण निजभाव भी अंगीकार किये। इसलिये सम्यग्दृष्टि को न तो कुछ त्यागने को रहा है, और न कुछ स्वीकार करने को ही है। परन्तु वही सम्यग्दृष्टि जीव चारित्रमोह के उदय से शुभ भावों रूप परिणमन करता है, उस परिणमन की अपेक्षा त्यागता है, और अंगीकार करता है। यही कथन दिखलाते हैं - प्रथम ही गुणस्थानों की परिपाटी से क्रम से अशुभ परिणति की हानि होती है, उसके बाद धीरे-धीरे शुभ परिणति भी छूटती जाती है। इस कारण पहले तो वह गृहवास कुटुम्ब का त्यागी होता है। पीछे शुभ राग के उदय से व्यवहार रत्नत्रयरूप पंचाचारों को अंगीकार करता है। यद्यपि ज्ञानभाव से समस्त ही शुभाशुभ क्रियाओं का त्यागी हैं, परन्तु शुभ राग के उदय से ही पंचाचारों का ग्रहण करता है। उसकी रीति बतलाते हैं- हे काल, विनय, उपधान, बहुमान, अनिह्नव, अर्थ, व्यंजन, तदुभयरूप आठ प्रकार ज्ञानाचार मैं तुझको जानता हूँ कि तू शुद्धात्म स्वरूप का निश्चय से स्वभाव नहीं है, तो भी मैं तब तक अंगीकार करता हूँ जब तक कि तेरे प्रसाद से शुद्ध आत्मा को प्राप्त न हो जाऊँ। अहो निःशंकितत्व, निःकांक्षितत्व, निर्विचिकित्सत्व, निर्मूढदृष्टित्व, उपबृंहण, स्थितिकरण, वात्सल्य, प्रभावनास्वरूप, दर्शनाचार; तू शुद्धातम का स्वरूप नहीं है, ऐसा मैं निश्चय से जानता हूँ, तो भी तुझको तब तक स्वीकार करता हूँ, जब तक तेरे प्रसाद से शुद्ध आत्मा को प्राप्त न हो जाऊँ। अहो मोक्ष मार्ग की प्रवृत्ति के कारण पंच महाव्रत, तीन गुप्ति पांच समिति रूप तेरह प्रकार चारित्राचार; मैं जानता हूँ कि निश्चय से तू शुद्धात्मा का स्वरूप नहीं है, तथापि तब तक अंगीकार करता हूँ, जब तक कि तेरे प्रसाद से शुद्धात्मा को प्राप्त न होऊँ। अहो अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशासन, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान, व्युत्सर्गस्वरूप बारह प्रकार तपाचार; मैं निश्चय से जानता हूँ कि तू शुद्धात्मा का स्वभाव नही हैं, परन्तु तो भी तुझको तब तक स्वीकार करता हूँ, जब तक तेरे प्रसाद से शुद्धस्वरुप को प्राप्त न हो जाऊँ। अहो समस्त आचार की प्रवृत्ति के बढ़ाने में

स्वशक्ति के प्रगट करने वाले वीर्याचार; मैं निश्चय से जानता हूँ कि तू शुद्धात्मा का स्वरूप नहीं है, परन्तु तो भी तुझको तब तक अंगीकार करता हूँ, जब तक कि तेरे प्रसाद (कृपा) से शुद्ध स्वरूप को प्राप्त न हो जाऊँ। इस प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्यरूप पाँच प्रकार आचार को अंगीकार करता है ॥२॥

दीक्षा के योग्य कौन-

उत्तरपुराण ग्रन्थ में आचार्य जिनसेन ने श्लोक ३९, पर्व ५८ में प्रव्रज्या दीक्षा की योग्यता गिनाते हुए कहा है कि कुल,गोत्र, शुद्ध होना चाहिए, चारित्र उत्तम होना चाहिए, सुमेधा हो, मुख सुन्दर हो, वही दीक्षा की पात्रता रखता है। योगसार प्राभृत में आचार्य अमितगति ने दीक्षा की योग्यता स्पष्ट करते हुए कहा है, कि जो मनुष्य शांत हो, तप के लिए समर्थ हो, शरीर से सुंदर अवयव वाला हो, वही दीक्षा ले सकता है। आचार्य जयसेन जी प्रवचनसार में टीका मे एक क्षेपक गाथा के माध्यम से कहा है

वण्णेसु तीसु एक्को कल्लाणेगो तवोसहो वयसा।
सुमहो कुछा रहिदो लिंगग्गहणे हवदि जोग्गो ॥

(३/१५, प्रवचनसार)

१. तीन वर्ण में से एक वर्ण का हो, २. निरोग हो, ३. तप में समर्थ हो, ४. अति बालत्व व वृद्धत्व से रहित हो योग्य आयु का हो, ५. दुराचार आदि लोक अपवाद से रहित हो। परम पूज्य आचार्य विद्यासागर जी इन सभी योग्यताओं को ध्यान में रखते हुए सर्वप्रथम ८ मार्च १९८० को मुनि दीक्षा द्रोणगिरि के पावन तीर्थ पर मुनिश्री समय सागरजी को दी। तदुपरान्त सागर शहर के मोराजी के विशाल प्रांगण में मुनि नियम सागरजी एवं मुनि योगसागरजी को १५ अप्रैल १९८० में दीक्षा दी। बस यह क्रम आगे बढ़ता ही गया आचार्यश्री ने १६ बार में १३१ युवा, बाल ब्रह्मचारी, प्रतिभा सम्पन्न, स्वाध्यायी, अडिग प्रतिभा के धारी साधकों को दीक्षा यथाजात निर्ग्रन्थ रूप में दी।

सात राज्यों के कुल मुनिराजों की संख्या -

राज्य मध्यप्रदेश के १७ जिले से ९१ मुनिराज -

१. सागर जिले के २७ मुनिराज - मुनिश्री क्षमासागरजी महाराज(सागर), गुप्तिसागरजी महाराज(गढ़ाकोटा), मुनिश्री सुधासागरजी महाराज(ईशुरवारा),

मुनिश्री समतासागरजी महाराज(नन्हीं देवरी), मुनिश्री स्वभावसागरजी महाराज(नन्हीं देवरी), मुनिश्री मार्दवसागरजी महाराज(पठा), मुनिश्री अजितसागरजी महाराज(गढ़ाकोटा), मुनिश्री सुमतिसागरजी महाराज(दलपतपुर), मुनिश्री पद्मसागरजी महाराज(सागर), मुनिश्री कुन्थुसागरजी महाराज(पटना बुजुर्ग), मुनिश्री अरहसागरजी महाराज (मालथौन), मुनिश्री सुव्रतसागरजी महाराज (पीपरा), मुनिश्री शैलसागरजी महाराज (टड़ा), मुनिश्री अचलसागरजी महाराज(सागर), मुनिश्री अतुलसागरजी महाराज(मण्डी बामौरा), मुनिश्री आनंदसागरजी महाराज(बण्डा), मुनिश्री निःस्वार्थसागरजी महाराज(सागर), मुनिश्री निरोगसागरजी महाराज(बण्डा), मुनिश्री निरामयसागरजी महाराज(बण्डा), मुनिश्री निराकुलसागरजी महाराज(खुरई), मुनिश्री निरुपमसागरजी महाराज(बीना), मुनिश्री निर्भीकसागरजी महाराज(रहली), मुनिश्री श्रमणसागरजी महाराज(सीहोरा), मुनिश्री संस्कारसागरजी महाराज(महाराजपुर), मुनिश्री ओंकारसागरजी महाराज(महाराजपुर), मुनिश्री निश्चिंतसागरजी महाराज, मुनिश्री निर्माणसागरजी महाराज।

२. जबलपुर जिले के १७ मुनिराज - मुनिश्री संयमसागरजी महाराज(कटंगी), मुनिश्री सरलसागरजी महाराज(नीमखेड़ा), मुनिश्री पवित्रसागरजी महाराज(जबलपुर), मुनिश्री प्रबुद्धसागरजी महाराज(जबलपुर), मुनिश्री प्रसादसागरजी महाराज(सीहोरा), मुनिश्री अभयसागरजी महाराज(पाटन), मुनिश्री प्रभातसागरजी महाराज(दर्शनी), मुनिश्री चन्द्रसागरजी महाराज(जबलपुर), मुनिश्री संभवसागरजी महाराज(पनागर), मुनिश्री निस्पक्षसागरजी महाराज(पनागर), मुनिश्री निस्पृहसागरजी महाराज(पनागर), मुनिश्री निस्पंदसागरजी महाराज(कटंगी), मुनिश्री निष्कामसागरजी महाराज(रांझी), मुनिश्री निरीहसागरजी महाराज(रांझी), मुनिश्री निसर्गसागरजी महाराज(जबलपुर), मुनिश्री निस्पृहसागरजी महाराज(पनागर), मुनि श्री निर्मान्तसागरजी महाराज।

३. दमोह जिले के ६ मुनिराज - मुनिश्री आर्जवसागरजी महाराज(पथरिया), मुनिश्री निर्दोषसागरजी महाराज(तारादेही), मुनिश्री निर्लोभसागरजी महाराज(तारादेही), मुनिश्री निर्मोहसागरजी महाराज(दमोह), मुनिश्री नीरागसागरजी महाराज(पथरिया), मुनिश्री निरालससागर जी महाराज।

४. शहडोल जिले के ५ मुनिराज – मुनिश्री पुष्पदन्तसागरजी महाराज(बुढार), मुनिश्री महासागरजी महाराज(बुढार), मुनिश्री अनुभवसागरजी महाराज(बुढार), मुनिश्री विनम्रसागरजी महाराज(बुढार), मुनिश्री अगम्यसागरजी महाराज(बुढार)।

५. अशोकनगर जिले के ५ मुनिराज – मुनिश्री सुखसागरजी महाराज(मुंगावली), मुनिश्री विशदसागरजी महाराज(मुंगावली), मुनिश्री सौम्यसागरजी महाराज(मुंगावली), मुनिश्री निश्चलसागरजी महाराज(अशोकनगर), मुनिश्री निकलंकसागरजी महाराज(शाढौरा)।

६. विदिशा जिले के ५ मुनिराज – मुनिश्री वैराग्यसागरजी महाराज(सिरोंज), मुनिश्री निर्णयसागरजी महाराज(सिरोंज), मुनिश्री क्षीरसागरजी महाराज(गंजबासौदा), मुनिश्री शीतलसागरजी महाराज(विदिशा), मुनिश्री समरस सागरजी महाराज(गंजबासौदा)।

७. रायसेन जिले के ४ मुनिराज – मुनिश्री प्रवचनसागरजी महाराज(बेगमगंज), मुनिश्री पुराणसागरजी महाराज(बरेली), मुनिश्री धवलसागरजी महाराज(बेगमगंज), मुनिश्री निर्मदसागरजी महाराज(बेगमगंज)।

८. खरगोन जिले के ४ मुनिराज – मुनिश्री प्रशस्तसागरजी महाराज(सनावद), मुनिश्री प्रयोगसागरजी महाराज(सनावद), मुनिश्री प्रबोधसागरजी महाराज(सनावद), मुनिश्री मल्लिसागरजी महाराज (बड़वाह)

९. गुना जिले के ४ मुनिराज – मुनिश्री पार्श्वसागरजी महाराज(छीपोन), मुनिश्री निष्कंपसागरजी महाराज(गुना), मुनिश्री निस्सीमसागरजी महाराज (आरोन), मुनिश्री निर्लेपसागरजी महाराज।

१०. देवास जिले के ५ मुनिराज – मुनिश्री विराटसागरजी महाराज(हाटपीपल्या), मुनिश्री विशालसागरजी महाराज(हाटपीपल्या), मुनिश्री दुर्लभसागरजी महाराज(अजनास), मुनिश्री निराकरसागरजी महाराज, मुनिश्री निशंकसागरजी महाराज।

११. नरसिंहपुर जिले के २ मुनिराज – मुनिश्री प्रशान्तसागरजी महाराज (गोटेगाँव), मुनिश्री निराश्रवसागरजी महाराज।

१२. छिन्दवाड़ा जिले के १ मुनिराज – मुनिश्री निर्वेगसागरजी

महाराज(छिंदवाड़ा)

१३. टीकमगढ़ जिले के १ मुनिराज – मुनिश्री निरापदसागरजी महाराज(टीकमगढ़)

१४. सिवनी के जिले १ मुनिराज – मुनिश्री नीरजसागरजी महाराज (छपारा)

१५. इन्दौर जिले के २ मुनिराज – धीरसागसागरजी महाराज (इन्दौर), मुनिश्री निरंजनसागर जी महाराज (इंदौर)।

१६. हरदा जिले के १ मुनिराज – मुनिश्री आगमसागरजी महाराज (हरदा)

१७. बुढार जिले के १ मुनिराज– मुनिश्री निर्ग्रन्थसागरजी महाराज।

कर्नाटक प्रांत के १० – मुनिश्री समयसागरजी महाराज(सदलगा), मुनिश्री योगसागरजी महाराज(सदलगा), मुनिश्री नियमसागरजी महाराज(सदलगा), मुनिश्री चेतनसागरजी महाराज(सदलगा), मुनिश्री चिन्मयसागरजी महाराज(जुगूल), मुनिश्री पुण्यसागरजी महाराज(येलवट्टी), मुनिश्री पायसागरजी महाराज(हडससी), मुनिश्रीऋषभसागरजी महाराज(नेल्लेकार), मुनिश्री चन्द्रप्रभसागरजी महाराज(तेज), मुनिश्री उत्कृष्टसागरजी महाराज (सदलगा)।

महाराष्ट्र प्रांत के १५ – मुनिश्री समाधिसागरजी महाराज(कुसुम्बा), मुनिश्री उत्तमसागरजी महाराज(अब्दुलघाट), मुनिश्री पावनसागरजी महाराज(कानड़वाड़ी), मुनिश्री अपूर्वसागरजी महाराज(समडोली), मुनिश्री विनीतसागरजी महाराज(महातपुर), मुनिश्री अक्षयसागरजी महाराज(शिरोल), मुनिश्री सुपार्श्वसागरजी महाराज(समडोली), मुनिश्री नमिसागरजी महाराज(बस्तवाड़ा), मुनिश्री नेमिसागरजी महाराज(सिरगुप्पी), मुनिश्री वीरसागरजी महाराज(नागपुर), मुनिश्री पुनीतसागरजी महाराज(औरंगाबाद), मुनिश्री वैराग्यसागरजी महाराज(कोल्हापुर), मुनिश्री अविचलसागरजी महाराज (कोल्हापुर), मुनिश्री सहजसागरजी महाराज(कुंभोज), मुनिश्री निस्संगसागरजी महाराज(नागपुर)।

गुजरात प्रांत के ३– मुनिश्री ओमसागरजी महाराज(मोरवी), मुनिश्री उपशमसागरजी महाराज(महुआ), मुनिश्री प्रशमसागरजी महाराज(महुआ)।

उत्तप्रदेश प्रांत के ९ – मुनिश्री प्रणम्यसागरजी महाराज(सिरसागंज), मुनिश्री

अभिनंदनसागरजी महाराज(सिरसागंज), मुनिश्री श्रेयांससागरजी महाराज(ललितपुर), मुनिश्री पूज्यसागरजी महाराज(ललितपुर), मुनिश्री विमलसागरजी महाराज(ललितपुर), मुनिश्री अनन्तसागरजी महाराज(ललितपुर), मुनिश्री धर्मसागरजी महाराज(ललितपुर), मुनिश्री शान्ति सागरजी महाराज(ललितपुर), मुनिश्री भावसागरजी महाराज(ललितपुर)।

राजस्थान प्रांत के २ – मुनिश्री शीतलसागरजी महाराज(पांचवां), मुनिश्री संधानसागरजी महाराज(जयपुर)।

झारखण्ड प्रांत के १ – मुनिश्री प्रमाणसागरजी महाराज (हजारीबाग)।

कुल १२० मुनिराज का प्रदेश वार विवरण इस प्रकार है।

आर्यिका दीक्षा का उद्घाटन

जिन बहिनों ने १९७६-७८ के बीच आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लिया था उनकी दीक्षा १० फरवरी १९८७ तक नहीं हो पायी थी। उनमें आर्यिका दीक्षा का प्रारंभ आर्यिका गुरुमति के साथ हुआ। आर्यिका दीक्षा १९८७, १० फरवरी को दी। कतार में लगी दीक्षार्थी बहिनों का समूह वर्षों तक प्रतीक्षा करता रहा। पूज्यश्री उनसे मात्र यही कहते रहे कि भावना रखो, साधना करो। दीक्षा देने का कार्य विधिपूर्वक १३ बार किया। सर्वाधिक दीक्षार्थी बहिनें १३ फरवरी २००६ में दिखी ५८ बहिनों ने एक साथ आर्यिका दीक्षा कुण्डलपुर में ली। कुल मिलाकर १३ दीक्षा समारोहों में १७२ आर्यिका दीक्षाएं सम्पन्न हुई। सुशिक्षित, प्रतिभावान, बाल ब्रह्मचारी बहिनें संयममार्ग पर आगे बढ़ गई जो आज गुरु की आज्ञा व निर्देशन में रहते हुए संघ व्यवस्था के कारण गुरु से दूर रहकर समाज में खूब प्रभावना साधना कर रही है। जो उत्कृष्ट स्वाध्याय से आगम के गूढ़ विषय समय-समय पर समाज को परोसती रहती हैं।

सात राज्यों के कुल आर्यिकाओं की संख्या –

राज्य मध्यप्रदेश के १७ जिले से १४६ आर्यिकायें–

१. सागर जिले की ५७ – आर्यिकाश्री गुरुमति माताजी(बण्डा), आर्यिकाश्री दृढ़मति माताजी(सागर), आर्यिकाश्री मृदुमति माताजी(रहली), आर्यिकाश्री ऋजुमति माताजी (सागर), आर्यिकाश्री गुणमति माताजी(शाहगढ़), आर्यिकाश्री जिनमति माताजी(शाहगढ़), आर्यिकाश्री निर्णयमति माताजी(महाराजपुर),

आर्यिकाश्री विलक्षणामति माताजी(टड़ा), आर्यिकाश्री धारणामति माताजी(शाहगढ़), आर्यिकाश्री प्रभावनामति माताजी(खुरई), आर्यिकाश्री भावनामति माताजी(खुरई), आर्यिकाश्री आदर्शमति माताजी(बण्डा), आर्यिकाश्री आलोकमति माताजी(शाहपुर), आर्यिकाश्री अनुभवमति माताजी (पिण्डरुआ), आर्यिकाश्री निकलंकमति माताजी(खिमलासा), आर्यिकाश्री पुराणमति माताजी(सनाई बोरिया), आर्यिकाश्री अधिगममति माताजी(अनंतपुरा), आर्यिकाश्री अनुगममति माताजी(बीना), आर्यिकाश्री सूत्रमति माताजी(बण्डा, आर्यिकाश्री सविनयमति माताजी(शाहपुर), आर्यिकाश्री संयममति माताजी(नन्हीं देवरी), आर्यिकाश्री समयमति माताजी(बीना), आर्यिकाश्री शीतलमति माताजी(बण्डा), आर्यिकाश्री विशुद्धमति माताजी(केवलारी), आर्यिकाश्री साकारमति माताजी(जैतपुर), आर्यिकाश्री शांतमति माताजी(मंडीबामौरा), आर्यिकाश्री सुशांतमति माताजी(मंडीबामौरा), आर्यिकाश्री सदयमति माताजी(सागर), आर्यिकाश्री उपशांतिमति माताजी(सागर), आर्यिकाश्री अमूल्यमति माताजी(बण्डा), आर्यिकाश्री उन्नतमति माताजी(सागर), आर्यिकाश्री आलोल्यमति माताजी(टड़ा), आर्यिकाश्री अनमोलमति माताजी(टड़ा), आर्यिकाश्री अचलमति माताजी(कंदवा), आर्यिकाश्री अवगममति माताजी(सागर), आर्यिकाश्री स्वस्थमति माताजी(सागर), आर्यिकाश्री वात्सल्यमति माताजी(शाहपुर), आर्यिकाश्री कर्त्तव्यमति माताजी(बण्डा), आर्यिकाश्री ध्येयमति माताजी(बण्डा), आर्यिकाश्री पृथ्वीमति माताजी(शाहपुर), आर्यिकाश्री पुनीतमति माताजी(खुरई), आर्यिकाश्री विनीतमति माताजी(खुरई), आर्यिकाश्री मेरूमति माताजी(खुरई), आर्यिकाश्री आप्तमति माताजी (बरा), आर्यिकाश्री ध्यानमति माताजी(टड़ा), आर्यिकाश्री अवायमति माताजी (जरुआखेड़ा), आर्यिकाश्री पारमति माताजी(बहेरिया), आर्यिकाश्री आगतमति माताजी(गढ़ाकोटा), आर्यिकाश्री श्रुतमति माताजी(सागर), आर्यिकाश्री स्वभावमति माताजी(नन्हीं देवरी), आर्यिकाश्री विनयमति माताजी(शाहपुर), आर्यिकाश्री समितिमति माताजी(शाहपुर), आर्यिकाश्री परममति माताजी(कर्रापुर), आर्यिकाश्री चारित्रमति माताजी(जैसीनगर), आर्यिकाश्री श्रद्धामति माताजी(जैसीनगर), आर्यिकाश्री उत्कर्षमति माताजी(जैतपुर),

आर्यिकाश्री भक्तिमति माताजी (खुरई)।

२. जबलपुर जिले की २७ – आर्यिकाश्री तपोमति माताजी(जबलपुर), आर्यिकाश्री पावनमति माताजी(पाटन), आर्यिकाश्री शुभ्रमति माताजी(जबलपुर), आर्यिकाश्री निर्मलमति माताजी(कटंगी), आर्यिकाश्री अंतरमति माताजी(जबलपुर), आर्यिकाश्री अविचलमति माताजी(जबलपुर), आर्यिकाश्री अक्षयमति माताजी(जबलपुर), आर्यिकाश्री अपूर्वमति माताजी(जबलपुर), आर्यिकाश्री अतिशयमति माताजी(कटंगी), आर्यिकाश्री अकलंकमति माताजी(जबलपुर), आर्यिकाश्री आगममति माताजी(जबलपुर), आर्यिकाश्री कैवल्यमति माताजी(जबलपुर), आर्यिकाश्री निर्वेगमति माताजी(जबलपुर), आर्यिकाश्री शांतिमति माताजी(पनागर), आर्यिकाश्री सतर्कमति माताजी(जबलपुर), आर्यिकाश्री सुशीलमति माताजी(चरगँवा), आर्यिकाश्री शैलमति माताजी(बरेला), आर्यिकाश्री सुसिद्धमति माताजी(शहपुरा), आर्यिकाश्री सौम्यमति माताजी(जबलपुर), आर्यिकाश्री आराध्यमति माताजी(जबलपुर), आर्यिकाश्री गन्तव्यमति माताजी(जबलपुर), आर्यिकाश्री निकटमति माताजी(जबलपुर), आर्यिकाश्री निर्वाणमति माताजी(चरगँवा), आर्यिकाश्री मार्दवमति माताजी(चरगँवा), आर्यिकाश्री मंगलमति माताजी(चरगँवा), आर्यिकाश्री अदूरमति माताजी(जबलपुर), आर्यिकाश्री मननमति माताजी(रांझी)।

३. दमोह जिले की १५ – आर्यिकाश्री सत्यमति माताजी(हिनौती), आर्यिकाश्री प्रशान्तमति माताजी(पटेरा), आर्यिकाश्री अनुत्तरमति माताजी(पिपरिया), आर्यिकाश्री विपुलमति माताजी(तेंदूखेड़ा), आर्यिका सहजमति माताजी(पथरिया), आर्यिकाश्री सकलमति माताजी(हिनौती), आर्यिकाश्री ओंकारमति माताजी(पिपरिया), आर्यिकाश्री अचिन्त्यमति माताजी(वनगाँव), आर्यिकाश्री आज्ञामति माताजी(अभाना), आर्यिकाश्री असीममति माताजी(पथरिया), आर्यिकाश्री गौतममति माताजी(पथरिया), आर्यिकाश्री अगाधमति माताजी(पिपरिया), आर्यिकाश्री धवलमति माताजी(पथरिया), आर्यिकाश्री अमितमति माताजी(दमोह), आर्यिकाश्री चेतनमति माताजी (सांगा)।

४. अशोकनगर जिले की १० – आर्यिकाश्री वैराग्यमति माताजी(अशोकनगर), आर्यिकाश्री अनुग्रहमति माताजी(अशोकनगर), आर्यिकाश्री अनर्घमति माताजी(अशोकनगर), आर्यिकाश्री आनंदमति माताजी(अशोकनगर), आर्यिकाश्री मुदितमति माताजी(शाढौरा), आर्यिकाश्री अमंदमति माताजी(मुंगावली), आर्यिकाश्री समुन्नतमति माताजी(खजुरिया), आर्यिका शास्त्रमति माताजी(अशोकनगर), आर्यिकाश्री सुधारमति माताजी(अशोकनगर), आर्यिकाश्री उचितमति माताजी(अशोकनगर)।

५. गुना जिले की ९ – आर्यिकाश्री मधुरमति माताजी(गुना), आर्यिकाश्री प्रसन्नमति माताजी(गुना), आर्यिकाश्री प्रशममति माताजी(गुना), आर्यिकाश्री सरलमति माताजी (गुना), आर्यिकाश्री शीलमति माताजी(गुना), आर्यिकाश्री तथ्यमति माताजी(गुना), आर्यिकापथ्यमति माताजी(गुना), आर्यिकाश्री संस्कारमति माताजी(गुना), आर्यिकाश्री संयतमति माताजी कुंभराज(कुंभराज)।

६. विदिशा जिले की ४ – आर्यिकाश्री सुनयमति माताजी(विदिशा), आर्यिकाश्री सिद्धमति माताजी(विदिशा), आर्यिकाश्री सूक्ष्ममति माताजी(सिरोंज), आर्यिकाश्री तथामति माताजी(विदिशा)।

७. नरसिंहपुर जिले की ६ – आर्यिकाश्री अमूर्तमति माताजी(नरसिंहपुर), आर्यिकाश्री अखण्डमति माताजी(गोटेगाँव), आर्यिकाश्री अभेदमति माताजी(गोटेगाँव), आर्यिकाश्री संवेगमति माताजी(गोटेगाँव), आर्यिकाश्री शाश्वतमति माताजी(नरसिंहपुर), आर्यिकाश्री अविकारमति माताजी(तेन्दूखेड़ा)।

८. मंडला जिले की ५ – आर्यिकाश्री कुशलमति माताजी(पिंडरई), आर्यिकाश्री शुक्लमति माताजी(पिंडरई), आर्यिकाश्री चिंतनमति माताजी(पिंडरई), आर्यिकाश्री सिद्धांतमति माताजी(पिंडरई), आर्यिकाश्री उदारमति माताजी(पिंडरई)।

९. सतना जिले की ४ – आर्यिका श्री अनंतमति माताजी(सतना), आर्यिकाश्री विजितमति माताजी(सतना), आर्यिकाश्री चैत्यमति माताजी(सतना), आर्यिकाश्री निसर्गमति माताजी(नागौद)।

१०. टीकमगढ़ जिले की २ – आर्यिकाश्री अनुनयमति माताजी(लार), आर्यिकाश्री विशदमति माताजी(टीकमगढ़)।

११. रायसेन जिले की १ – आर्यिकाश्री एकत्वमति माताजी (नई गाडिया)

१२. झाबुआ जिले की १ – आर्यिकाश्री विमलमति माताजी (झाबुआ)

१३. कटनी जिले की १ – आर्यिकाश्री सत्यार्थमति माताजी(कटनी)

१४. छतरपुर जिले की १ – आर्यिकाश्री शोधमतिमति माताजी (छतरपुर)

१५. शिवपुरी जिले की १– आर्यिकाश्री विनतमति माताजी (शिवपुरी)

१६. अनुपपूर जिले की १– आर्यिकाश्री अनुपममति माताजी (अनूपपुर)

१७. छिंदवाड़ा जिले की–१ - आर्यिकाश्री संतुष्टमति माताजी (छिंदवाड़ा)

कर्नाटक प्रांत की ३ – आर्यिकाश्री निष्काममति माताजी(जुगूल), आर्यिकाश्री विरतमति माताजी (जुगूल)।

महाराष्ट्र प्रांत की ६ – आर्यिकाश्री निर्वाणमति माताजी (सुकली), आर्यिकाश्री उद्योतमति माताजी(काटोल), आर्यिकाश्री संवरमति माताजी(नागपुर), आर्यिकाश्री निर्मदमति माताजी(नागपुर), आर्यिकाश्री परमार्थमति माताजी (दिग्रस), आर्यिकाश्री विदेहमति माताजी(नागपुर)।

दिल्ली प्रांत की २ – आर्यिकाश्री अकम्पमति माताजी(दिल्ली), आर्यिकाश्री आत्ममति माताजी (दिल्ली)।

उत्तप्रदेश प्रांत की ५ – आर्यिकाश्री स्वाध्यायमति माताजी(मैनपुरी), आर्यिकाश्री नम्रमति माताजी(ललितपुर), आर्यिकाश्री विनम्रमति माताजी(ललितपुर), आर्यिकाश्री अतुलमति माताजी(ललितपुर), अर्यिकाश्री लक्ष्यमति माताजी (ललितपुर)।

राजस्थान प्रांत की ३ – आर्यिकाश्री पूर्णमति माताजी(डूंगरपुर), आर्यिकाश्री श्वेतमति माताजी(बागीदौरा), आर्यिका जागृतमति माताजी(कुचामन)।

छत्तीसगढ़ प्रांत की ६ – आर्यिकाश्री उज्जवलमति माताजी(दुर्ग), आर्यिकाश्री साधुमति माताजी(रायपुर), आर्यिकाश्री साधनामति माताजी(रायपुर), आर्यिकाश्री दुर्लभमति माताजी(दुर्ग), आर्यिकाश्री सारमति माताजी(डोंगरगाँव), आर्यिक ध्रुवमति माताजी(कासांवेल)

तमिलनाडु प्रांत की २ – आर्यिकाश्री उपशममति माताजी(चेय्यार), आर्यिकाश्री संगतमति माताजी (बलाथि)

कुल१७२ आर्यिकाओं का प्रदेश वार विवरण इस प्रकार है।

आचार्यश्री ने मुनि आर्यिका दीक्षा देने के पहले सबसे पहले १९७७ में १० जुलाई, रविवार एक **एलक दीक्षा** ऐलक दर्शनसागर जी को दी। उन्होंने मुनि दीक्षा की प्रार्थना की परन्तु आचार्यश्री ने एलक दर्शनसागरजी को मुनि दीक्षा नहीं दी। परिणाम यह निकला कि उन्होंने आचार्य विमलसागर जी से मुनि दीक्षा ली। आचार्यश्री ने दीक्षा देने का क्रम जारी रखा और २४ अवसर पर एलक दीक्षा देकर ६० ऐलक साधकों को मोक्षमार्ग पर लगाया।

आचार्यश्री के पावन कर कमलों से **क्षुल्लक दीक्षा** का क्रम १२ दिसम्बर १९७५ से हुआ। पवित्र तीर्थ सोनागिरि पर पूज्यश्री ने चार साधक क्षुल्लक योगसागर, क्षुल्लक नियमसागर, क्षुल्लक समयसागर, क्षुल्लक प्रवचनसागर ने मोक्षमार्ग पर अपना प्रथम चरणपात किया था। यह क्रम आगे बढ़ता गया और १९ चरणों में गुरुजी ने १४० बाल ब्रह्मचारी साधकों को क्षुल्लक दीक्षा दी तथा तीन क्षुल्लिका दीक्षाएं भी प्रदान की।

आचार्यश्री द्वारा कभी भी अधिक समय तक प्रसारित किये बिना, लघु कालिक सूचना के साथ दीक्षा सम्पन्न हो जाती है। २०१४ में १६ अक्टूबर को चार दीक्षाएं, हुई उनका अतिशय यह है कि जिनके यहाँ आचार्य श्री का आहार हुआ तथा आचार्यश्री आहार से लौटते समय ब्र. डॉ. ऋषिजी ने आचार्यश्री से दीक्षा का निवेदन किया तो १२ बजे तय हुई। तुरंत ऋषि भैय्या ने अपने पद और संस्था से इस्तीफा दिया। दीक्षा की तैय्यारी हो गई। कुछ ही घंटों में अप्रत्याशित सी घटना लग रही थी और कुछ ही घंटों में दीक्षा विधि सम्पन्न हो गई। ब्र. ऋषि भैय्या मुनि शीतलसागर बन गये। ऐसी ही दीक्षा देने की प्रक्रिया सबको लगभग विस्मय में डालती रहती है।

प्रखर साधना में तपा कर, हर प्रकार से कसौटी पर खरे उतरने के बाद ही दीक्षा देने वाले पूज्य आचार्य विद्यासागर जी दीक्षित शिष्य स्वाध्याय साधना-प्रभावना और संस्कार बड़े ही मनोयोग से लगे हुए हैं। आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज चलते-फिरते विश्वविद्यालय है। उनका एवं उनसे दीक्षित शिष्यों का समाज में विशिष्ट स्थान प्राप्त किया तथा समाज सुधार, तीर्थोद्धार, दयोदय, स्वरोजगार जैसी योजनाओं को सफल बनाने में आचार्यश्री विद्यासागर जी के शिष्य अग्रणी हुए। विश्व कीर्तिमानों में सर्वाधिक दीक्षा प्रदाता आचार्य विद्यासागर जी संयम-स्वर्ण महोत्सव चिंतनीय-वंदनीय -अभिनन्दनीय है।

○○○

वर्तमान भारत के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार आचार्य श्री विद्यासागर जी

सुरेश जैन सरल

जिनके संकेत से अक्षर पक्षियों की तरह पंख लगाकर उड़ते चले आते हैं,. शब्द हिरणों की तरह दौड़े आते हैं, वाक्य सरिता की तरह बहने लगते हैं और विचार सागर की तरह उमड़ पड़ते हैं। ऐसे संत के ग्रन्थ उनकी श्रेष्ठता की नींव है; उनके कथन मंदिरों के कलशों की तरह उच्च है; उनकी कल्पनाऐं आगम का स्पर्श लिए होती हैं, उनका लेखन उद्देश्य-मोक्षपथ की ओर चलते रहना है।

मैं सन् १९८१ से उन्हें और उनके साहित्य को देख-परख रहा हूँ। वे लेखन-कार्य करते हुए शब्दों के साथ वैज्ञानिकों की तरह प्रयोग करते हैं। कहें कि लेखन के स मय एक प्रयोगशाला भी उनके भीतर चलती रहती है। तभी तो वे शब्दों का विन्यास करते हैं। वाक्य विन्यास तो उनके लिए पुरातन कार्य हो चुका है।

साहित्य की उद्भटता प्रकट करने वाले विशेषणों से को विद्वान वक्ता केवल मंचीय प्रलाप बनाने में सफल हो सकता है। वास्तविक समीक्षक, आलोचक और मौलिक साहित्य के लेखकगण उनके ग्रन्थों में विद्या के सागर पर फैला साहित्य का आकाश देखते हैं, तो स्व-प्रेरणा से प्रशस्त विशेषणों का चयन कर उपकृत होते हैं। उक्त लोगों के शब्दों को मैं श्रेष्ठ के प्रांगण में बांधा गया 'वंदनवार' (झालर) मानता हूँ। सुने आचार्यश्री किसी के शब्दों या विशेषणों से श्रेष्ठ नहीं बने हैं, वे तो अपने रचनाधर्म के आधार पर श्रेष्ठ हो गये हैं। हो गये हैं - अद्वितीय-साहित्यकार। महामनीषी, विचारक, दार्शनिक आदि बहुत कुछ

इतना ही नहीं, उन्हें श्रेष्ठ मानने का दूसरा आधार भी हमारे सामने हैं।

जब हम शब्दों/विशेषणों के माध्यम से उनके श्रेष्ठत्व का वर्णन करने में परेशान हो पड़े या जो कुछ लिखें -वह कमतर प्रतीत होने लगे, तब हमें स्वीकार करना पड़ता है कि वे कुछ अधिक ही श्रेष्ठ है जिसे नापा-तौला नहीं जा सकता।

उनकी पुस्तकें पढ़ने के बाद, उनके नाम पाठकगण याद रखते हैं। अतः यहाँ संख्या मात्र बतलाकर आगे का क्रम लिपिबद्ध करूंगा। आचार्यश्री मर्मज्ञ हैं अनेक भाषाओं और बोलियों के। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी, कन्नड़ भाषा के साथ उन्हें बुन्देली-बोली का गहन ज्ञान है। प्रवचनों के मध्य जब बुन्देलखण्डी बोली के एक-दो वाक्य बोलते हैं तो श्रोताओं के कर्ण कुण्ड में अतिरिक्त पीयूष की वर्षा हो पड़ती है।

भले ही उन्हें प्रारम्भ में काव्य-लेखन में अड़चन गई हो, क्योंकि उस समय हिन्दी ठीक से नहीं बोल पाते थे, पर आगम के अध्ययन और गुरुदेव ज्ञानसागर जी के संसर्ग ने उन्हें ऐसा सहारा दिया कि वे हिन्दी सहित अन्य भाषाओं के विशेषज्ञ हो गये। फलतः पूर्वाचार्यों के क्लिष्ट ग्रन्थों का संस्कृत और प्राकृत से हिन्दी में अनुवाद किया। वह भी पद्यों में। एक-दो नहीं, २४ ग्रन्थों का भाषान्तरण किया। मेधा की इस चर्चा में उनके श्रेष्ठ साहित्यकार होने के प्रथम स्तम्भ की गणना रखनी होगी।

संस्कृत के परमज्ञानी आचार्य श्री ने संस्कृत भाषा में ६ शतक लिख कर जो परिचय दिया है, उसे कौन भूलेगा।

फिर हिन्दी के विशेषज्ञ के रूप में बारह शतकों की रचना। ये १८ ग्रन्थ उनके श्रेष्ठ्य के द्वितीय स्तम्भ है।

महाकाव्य मूकमाटी की रचना उनके जीवनकी सबसे बड़ी साहित्यक घटना है। इस ग्रन्थ के कारण ही वे दो स्तम्भों के बाद सीधे चार स्तम्भों का आधार प्राप्त कर सके, जिस पर 'श्रेष्ठ साहित्यकार' के ठोस स्थान पर विराजमान है। संसार का यह प्रथम महाकव्य है जिस पर ३०० से अधिक

प्रोफेसरों , कुलपतियों , साहित्यकारों और विद्वानों ने समीक्षाएं लिखकर अपनी लेखनी को धन्य किया है। अनेक समीक्षकों ने आचार्य श्री की तुलना में कुछ बड़े साहित्यकारों के नाम लिये हैं , यथा श्री रविन्द्रनाथ टैगोर, जयशंकर प्रसाद, निराला, मैथिलीशरण गुप्त, पंत, महादेवी, भवानी प्रसाद मिश्र, नागार्जुन, मुक्तिबोध, केदारनाथ आदि परन्तु मेरी दृष्टि में मूकमाटी महाकाव्य उक्त सभी साहित्यकारों के काव्यों व महाकाव्यों से हटकर है और शीर्ष पर है। तुलना की आवश्यकता नहीं हैं, पर समीक्षक को तुलना कर समीक्षा धर्म का निर्वाह करना पड़ता है, सो वे लोग करते रहते हैं। मैं कहूं मिश्री मीठी है, तो आप सुन तो सकते हैं किन्तु माधुरी (मिठास) का अनुभव नहीं कर सकते। इसी तरह मूकमाटी भी है उसे जो पढ़ेगा सो चखेगा।

महाकाव्य की मिठास लोगों को ऐसी भायी की अन्य भाषा वालों को भी परोसी गी, मतलब-इस महाकाव्य का कन्नड़, बंगला, गुजराती, तमिल, मराठी और अंग्रेजी में अनुवाद किया जा चुका है- विद्वानों द्वारा, सो हिन्दी-साहित्य का विस्तार बहु-आयामी हो गया। आचार्य श्री के काव्यग्रन्थों , मूकमाटी सहित, पर अभी तक चार विद्वान डी.लिट का अलंकरण पा चुके हैं तो २२ पी.एच.डी. का। सात एम.फिल के शोध प्रबंध, दो एम.एड के और ६ एम.ए. लघु शोध भी प्रबंध भी उनके साहित्य को आधार बनाकर लिखे गये हैं। उनके हाइकू लेखन की चर्चा भी इसी निबंध के योग्य है। जापान में साहित्यकारगण के की दशकों से मुक्तक की तरह हाइकू लिख रहे हैं। उनकी परिभाषा और व्याकरण जग जाहिर है। आचार्य श्री ने करीब ३० वर्ष पूर्व इस विधा पर भी अपने महत्वपूर्ण विचारों को गुम्फित किया है और भारत, जापान के हीकू को नवादर्श प्रदान किया है। अब तक सहस्राधिक हाइकू लिख चुके हैं।

गुरुदेव के साहित्य में व्याकरण कहीं पंगु नहीं होती, वह व्याकरण-

शास्त्र के आधार पर ही पढ़ने मिलती है। छंद कही छलछंद नहीं करते, वे मात्राओं और लय का महत्वपूर्ण सरोकार बनाये रहते हैं। अलंकारों के दर्शन, क्यारी में खिलते फूलों की तरह, पाठक को बरबस हो जाते हैं, कहावते उनकी शैली की विशेषता बढ़ाती हैं। लोकोक्तियां-ज्ञान और साहित्य के विशाल गर्भ-प्रदेश का परिचय कराती हैं । हर प्रस्थान पर रस छलछलाते हैं, सो शब्द चित्र की पूर्णता पर अनेक रंग बिखर जाते हैं। पाठकों के मनः उद्यान में। इस तरह वे मूकमाटी महाकाव्य में व्याकरणाचार्य, छंदाचार्य रसाचार्य के रूप में उपस्थित होते हैं। समास-विशेषज्ञ व अलंकार सर्जक की छवि भी उनमें समाी हुी है। भाषा शैली के कारण कहीं कहीं प्रहसन/नाटिका जैसी वार्तालाप भी करते मिलते हैं अतः उन्हें नाटक/रंग का कर्ता भी कहते हैं। सो हो जाते हैं वे रंगाचार्य। इन सभी आचार्यों को मिलाकर साहित्याचार्य कहना कम ही लगेगा, अतः 'श्रेष्ठ साहित्यकार' ही करना उपयुक्त मानता हूँ।

इस लेखनी ने कुछ वर्ष पूर्व घोषणा कर दी थी कि पाठकों के लिए आचार्यश्री की कविता-कौमुदी का अपना एक सुख है, जिसमें सुखमय-संदेश आत्मा में अनुगूंजित होता रहता है। उनका समग्र साहित्य अध्यात्म के पवित्र-धरातल पर शिल्पित है और जैन दर्शन को स्फुरित करता है। वह सर्वांग सुन्दर है।

आचार्यश्री साहित्य पथ पर पूर्ण-मौलिक तो हैं ही, गहन स्वानुभवी भी हैं। पाठक ज्यों-ज्यों उनके साहित्य को पढ़ता है, उसका सरोकार काव्य से बढ़ता ही जाता है, फलतः उसमें मौलिकता और स्वानुभव की समझ बलवती होती जाती है और वह मृत्यु और मुक्ति का अंतर जानने लग जाता है।

आचार्यश्री छात्रावस्था से ही देशभक्ति की ज्योति अपने भीतर जगा चुके थे, जो आज भी उनके साहित्य और प्रवचनों में जगमग होते देखी-

समझी जा सकती है। 'इंडिया' नहीं 'भारत बोलो' यह राष्ट्रीय नारा उन्हीं की देन है। अंग्रेजी नहीं, हिन्दी पढ़ो और बोलो। देश-सेवा करने वाले सैनिक को संत से कमतर नहीं मानें। आचार्यश्री सही मायने में राष्ट्रचिंतक हैं। जब भी कोई राष्ट्रीय राजनेता उनके चरणों में आये हैं, वे लोग आचार्यश्री का राष्ट्र के प्रति प्रखर लगाव देखकर प्रेरित हुए हैं। आचार्यश्री को कपड़ा बनाने वाली कीमती-मशीनों के माध्यम से कोई पुकारता रहा है, अतः उन्होंने 'हथकरघा-योजना' को आशीष देकर देश के अनेक शहरों, ग्रामों, में रोजगार और राष्ट्रीयता को स्थापित कराया है। यह घटना उनके राष्ट्रकवि, राष्ट्रलेखक और राष्ट्रचिंतक होने का परिदृश्य भी उपस्थित करती हैं।

पंचाचार- प्रवीण महानाचार्य भी विद्यासागर जी जैन मुनि-संहिता के आदर्श उदाहरण हैं। देश में उसे पालन करने और शिष्य समूह से पालन कराने का उनका दृढ़ उद्देश्य चट्टान की तरह अभेद्य है।

अपने कथ्य को दोहराना नहीं चाहता, मात्र याद दिलाने की दृष्टि से इंगित कर रहा हूँ कि आचार्यश्री का साहित्य उनके श्रम, बुद्धि, अध्ययन और चिंतन से तो बना ही है, बड़ी बात यह है कि वे हर पृष्ठ पर एक आदर्श-चितेरे की तरह भी उपस्थित मिले हैं, जो विचारों की आगमिक-दार्शनिकता का पाठ पढ़ाते हैं। वे बिन्दु को जब तक सिंधु तक प्रसारण प्रदान करते हैं, उनके भीतर का वैराट्य पाठक को दृष्टिगोचर होने लगता है।पाठक सुनें, साहित्य में साहित्य की सुगंधि तो सभी साहित्यकार देते हैं, परन्तु आचार्यश्री ने एकनहीं, दो सुगंधे प्रदान की हैं-प्रथम साहित्य की, द्वितीय आत्मतत्त्व ही। सच, पाठक को प्रतीत होने लगता है कि यहाँ-यहाँ साहित्य में आत्मा है और अगले पन्ने पर आत्मा में साहित्य। यह रहस्य वल विज्ञ पाठक ही समझ पाते हैं।

OOO

आचार्य विद्यासागरजी एवं मंदिर निर्माण

प्रतिष्ठाचार्य ब्र. नितिन जैन, खुरई

जीवन उत्कर्ष के लिए शिक्षा और शिक्षालयों की जितनी आवश्यकता होती है उतनी ही आवश्यकता जिन चैत्यलयों की भी है। मंदिर अध्यात्म और ध्यान के केन्द्र है। मंदिरों के माध्यम से संस्कृति का संरक्षण होता है। इसीलिये आचार्यश्री की मंदिर निर्माण कराने के लिए विशेष प्रेरणा रहती है। वसुनंदी श्रावकाचार में कहा गया है। कि री के बराबर जिन प्रतिमा एवं धनिया की पत्ती बराबर मंदिर मंदिरों के निर्माण करने मे इतना पुण्य प्राप्त होता है कि ७-८ भवों में मुक्ति प्राप्त हो जाती है। पुण्य, यद्यपि आस्रव बंध का कारण कहा गया है किन्तु सम्यग्दृष्टि जीव उसी पुण्य के सद्भाव में दान के माध्यम से संवर और निर्जरा का अधिकारी हो जाता है। संवर और निर्जरा के निमित्त ऊपार्जित मंदिर भी स्वीकार होते हैं ।

इस देश में लोगों ने उन दिनों को भी देखा है जब उन्हें दो समय का भोजन नहीं मिलता था, ऐसी भी परिस्थिति रही कि उनके सिर पर छत नहीं रही, पहनने के लिए कपड़ों का अभाव रहा कितनी भी संकट की घड़ियाँ रही हो पर मंदिरों में घण्टा ध्वनि होती रही, दीप जलते रहे पूजन होती रही। जिन शासन में मंदिर व्यवस्था अनादि निधन है। अकृत्रिम चैत्यालयों में सौधर्म इन्द्र आदि हमेशा अभिषेक पूजन करते रहते हैं। वर्तमान में चैत्यालय सर्वप्रथम कुबेर के द्वारा आदिनाथ भगवान के जन्म से १५ माह पूर्व अयोध्या में सर्वतोभद्र महल में बनाया गया जिसका प्रमाण, त्रिलोक सार, तिलोयपण्णती एवं प्रतिष्ठा ग्रंथों में उपलब्ध होता है।

भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत पर ७२ जिनालयों का निर्माण कराया जिसका

उल्लेख प्रतिष्ठापाठ में आचार्य श्री जयसेन स्वामी ने किया है।

वर्तमान इतिहास की दृष्टि से ईसापूर्व ३५० वर्ष मंदिर निर्माण कार्य प्रारंभ हो गया था। गुफा मंदिरके रूप में उदयगिरि-खंडगिरि की रानी गुफा एवं हाथी गुफा का निर्माण जैन आगम केअनुकूल हुआ। जैन मंदिर की कला का विकास एवं जैन पद्धति से मंदिरों का निर्माण करना उस युग में सहज कार्य था क्योंकि जैन वास्तुकला का विकसित रूप अनेक प्रकार से सम्पन्न था। निषिद्धकाओं के रूप में जिन आयतनों का प्रचलन था आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती, आचार्य वसुनन्दी, आचार्य जयसेन जैसे महान आचार्यो ने भारतीय संस्कृति के लिए मंदिर मूर्तियों का निर्माण शास्त्रीय पद्धति से कराया था। इन आचार्यो ने जैन वास्तुकला के विकास के लिए अपनी लेखनी भी चलाी।

पूज्य आचार्य विद्यासागर महाराज ने जैन मंदिर के निर्माण के लिए अपना चिंतन पूर्व आचार्यो से समायोजित करते हुए रखा। सर्वप्रथम उन्होंने मंदिर संरचना को समझते हुए यह ध्यान दिया कि जैन मंदिर, शैव मंदिर, वैष्णव मंदिर में वास्तविक अंतर क्या होता है। शिखर की शैली बता देती है कि यह मंदिर किस परम्परा का है। शिखर बनाते समय श्रृंगों की गणना एवं उरु श्रृंगों का विस्तार तथा चैत्यगवाक्ष, अमलिकासार, ध्वजदण्डस्थान, जिन मुख रचना, सुख नासा जैसे शिखर के आवश्यक अंगों पर पूज्यश्री ने अपना ध्यान केन्द्रित किया। इन सब अंगों के साथ पूज्यश्री ने शिखर के अनुपात रचना पर अपनी सूक्ष्म दृष्टि केन्द्रित की। मूलरेखा के साथ शिखर की फालियों, कर्णिकाओं एवं उसके विस्तार और ऊंचाी के अनुपातों को सुंदर ढंग से समावेशित करने का पूर्ण प्रयास किया।

वर्तमान युग में सभी वास्तु संरचनाएं कंक्रीट से ही बनाई जा रही हैं, जबकि प्राचीन काल में निर्मित मंदिरों में लोहे का नामोनिशान भी नहीं था। खजुराहों के मंदिरों का अवलोकन करने पर ज्ञात होताहै कि वहाँ के मंदिर

केवल पाषाण से निर्मित है। उनमें मसाले से जुड़ाी भी नहीं है। कहीं-कहीं पर पाषाणों को तांबे की पट्टियों से कसा गया है। अतएव यह स्पष्ट है कि पाषाण निर्मित मंदिर बनाना असंभव नहीं है। आचार्य श्री विद्यासागर जी ने मंदिर निर्माण की प्रचलित अवधारणा एवं पद्धति को समूल परिवर्तित कर दिया। सुविधा और सरलता को ध्यान में रखकर प्रायः मंदिरों का निर्माण सीमेंट, गिट्टी एवं लौह धातु की छड़ों से हो रहा था तथा सीधा हाल बनाकर वेदी स्थापित की जाती थी। श्रावकगण यह भूल जाते थे कि आर.सी.सी. के निर्माण कार्य की आयु अधिकतम ५० वर्ष है। आचार्यश्री ने समाज को सूत्र दिया कि सस्ता रोवे बार-बार, महंगा रोवे एक बार, अतः पाषाण से निर्मित मंदिरों की योजना को आचार्यश्री ने कार्य रूप दिया। जिन्होंने भी मंदिर निर्माण की प्रस्तावना आचार्यश्री के समक्ष रखी उन सबके लिए आचार्यश्री ने पाषाण निर्मित मंदिर का ही निर्देश दिया और आचार्यश्री का निर्देश समाज ने आदेश समझकर शिरोधार्य किया। पूज्य आचार्य श्री ने सर्वप्रथम अमरकण्टक से ही पाषाण निर्माण का कार्य कराया तदोपरांत रामटेक, नेमावर, कुण्डलपुर, बीनाबारहा जैसे तीर्थो पर अद्वितीय पाषाण निर्मित सुंदर कला सम्पन्न सम्पूर्ण अंगों से युक्त मंदरों का निर्माण कराके दिगम्बर जैन संस्कृति को युगों -युगों तक के लिए उच्च स्थान पर स्थापित किया। आचार्यश्री का ऐसा मानना है कि मंदिर की भव्यता समाज को भव्य बना देती है। जिस नगर का मंदिर भव्य और दोषों से मुक्त होता है उस समाज का आर्थिक विकास भी दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता है। निर्दोष जिनालय के माध्यम से ही श्रावक धर्म की पूर्णता मानी जाती है। जिन आयतन सम्यक् धर्म की आधार शिला स्थापित करता है तथा धर्म, समाज एवं राष्ट्र की सम्पन्नता और सहजता को पूर्ण करता है जिनालय ही श्रमण साधना का केन्द्र बनता है।

जिनालय का निर्माण करने-कराने वाला अथवा करने की प्रेरणा देने वाला, जिनालय में बैठकर सामायिक-स्वाध्याय-उपासना की साधना होती है। उसके

अर्जित पुण्य का छठवां भाग पुण्य उसे भी उपलब्ध होता है जो मंदिर का निर्माण कराता है। मंदिर के श्रृंगार चौकी मत्तापूर्ण नृत्यमंडप, रंगमडंप, गूढ़मंडप, त्रिकमंडप या चौकी मंडप विविध प्रकार की शैलियों के होते हैं । इन मंडपों के अंत में गर्भ गृह रहता है। गर्भ गृह की मर्यादा जितनी सुरक्षित रखी जाती है उतने ही जिनालय में अतिशय प्रगट होते हैं। अतिशयों का नाश श्रावकगण स्वयं कर देते हैं वे जब गर्भ गृह में अशुद्ध वस्त्र पहनकर प्रवेश करते हैं (अथवा गर्भ गृह में महिलाओं का प्रवेश होने लगता है तब जिनालय के भक्त देवगण स्वयं पलायन कर जाते हैं और मंदिर का अतिशय क्षीण हो जाता है।)

जिनबिम्ब और जिनालय ऐसा होना चाहिए जिसके दर्शन से निद्धित निकाचित कर्मों का नाश हो सके तथा मिथ्यात्व का अंधेरा छंटकर सम्यक्त्व का दिव्य प्रकाश प्रकट हो सके जिनालय की रचना जितनी मनोज्ञ होगी उतने ही विशुद्धि परिणामों का संवर्धन होता है विशुद्धि परिणाम से साता वेदनीय का कर्म बंध होता है और असाता वेदनीय कर्म के स्थितिकारण्डक, अनुभाग काण्डक का घात होता है तथा असाता वेदनीय के सम्पूर्ण कर्म परमाणुओं को संक्रमण साता वेदनीय के रूप में हो जाता है। बस इसी कर्म की बदली हुी परिस्थिति से जिनालय और जिनबिम्ब में चमत्कार पैदा हो जाता है। अतः निर्दोष भव्य कलापूर्ण मंदिर बनवाना ही श्रेयस्कर है।

आचार्यश्री से प्रश्न किया कि आप पत्थर के मंदिर बनाने की प्रेरणा क्यों देते हैं ?

तब आचार्यश्री ने कहा - मिट्टी के मंदिर बनाने का पुण्य १० गुना, चुने के मंदिर बनाने का पुण्य ५० गुना, ईट के मंदिर बनाने का पुण्य १०० गुना, पत्थर के मंदिर बनाने का पुण्य १००० गुना स्थाई पुण्य।

आचार्य भगवान खुद ही स्थाई पुण्य करते हैं और सम्पूर्ण समाज के स्थाई पुण्य की व्यवस्था करने हेतु सभी को पत्थर के मंदिर बनाने की प्रेरणा देते हैं।

OOO

आचार्य श्री के प्रवचनों में-महात्मा गांधी

डॉ. ज्योति जैन (खतोली)

सौभाग्य हमारा, देश का, एवं समस्त विश्व का कि हम सभी ने धार्मिक महापुरुष संत शिरोमणि आचार्य विद्यासागर जी महाराज के युग में जन्म लिया, एक ऐसे युग प्रर्वतक संत जो प्राणी मात्र के कल्याण की बात करते हैं। एक ऐसे सर्वोदयी संत जो जात पात, धर्म ,सम्प्रदाय, भाषा आदि से ऊपर उठकर राष्ट्र प्रेम की भावना रखते है । एक ऐसा शिक्षाविद् संत जिनके सुविचारों से मानव जीवन के उत्थान को बल मिल रहा है। एक ऐसे नवप्रोदी प्रणेता संत जो जीवन के शाश्वत मूल्यों से मानवता का विकास कर रहे हैं। और एक ऐसा आध्यात्मिक संत जिसने दया करूणा की जन जन में अलख जगा दी है।

भारतीय संस्कृति के पुरोधा आचार्य श्री के प्रवचनों में राष्ट्रीय भावना परिलक्षित होती है। उनके प्रवचनों में सभी जीव सुखी हो, सभी का कल्याण हो, सभी प्रसन्न रहें। राजनीति धर्म से विमुख न हो, ऐसी राष्ट्र भावना सदैव रहती है। उनका कहना है कि कर्त्तव्य निष्ठ व्यक्ति ही देश और समाज की सुरक्षा कर सकता है। त्याग तपस्या तथा निस्वार्थ सेवा के बिना आत्मोद्धार और देश का उद्धार संभव नहीं है। हमें अपने राष्ट्र के प्रति गौरव, भक्ति और समर्पण होना चाहिए। देश के प्रति वफादार होना राष्ट्र के प्रति सच्ची कृतज्ञता है। प्रेम, मैत्री करूणा और दया मानवीयता की संजीवनी है।

भारत की संस्कृति अहिंसा प्रधान संस्कृति रही है महात्मा गांधी जैन धर्म के सिद्धांतो से अत्यधिक प्रभावित थे गांधी ाजी की आत्म कथा में उल्लेख है कि वे जब विदेश जा रहे थे तो मां ने अनुमति नहीं दी। मां ने एक जैन मुनि से उन्हें मांस, मदिरा और परस्त्री से दूर रहने की शपथ दिलायी थी तब उन्हें विदेश जाने की अनुमति मिली थी। गांधी जी सत्य और अहिंसा

पर दृढ़ आस्था थी। अहिंसा सत्य, दया और करूणा का संदेश गांधी जी ने जन-जन तक पहुंचाया और उन्हें जाग्रत करने का एक अद्भुत प्रयास किया। देश की आजादी में गांधी जी द्वारा चलाये गये अहिंसात्मक आंदोलन के मूल में अहिंसा की विचारधारा ही बह रही थी।

अहिंसा, दया, करूणा, सेवा, गौरक्षा स्वरोजगार, हाथकरघा आदि प्रसंगों में आचार्य श्री ने गांधी जी को स्मरण किया। आचार्य श्री कहते है हमारे पास राष्ट्रीय गीत, राष्ट्रीय ध्वज राष्ट्रीय चिन्ह है लेकिन राष्ट्रीय चरित्र नहीं है ? सत्य और अहिंसा ही हमारा राष्ट्रीय चरित्र बने, हमारा राष्ट्रीय धर्म बने। गौधन राष्ट्र की सबसे बड़ी पूंजी है, इसका सरंक्षण तो होना ही चाहिये। गांधी जी शब्दों में तो गाय करूणा की कविता है। पशुजगत के समग्र मूक प्राणी गाय, बैल, भैंस, घोड़ा, बकरी, बकरा, मुर्गा, मछली, की रक्षा करना हमारा धर्म होना चाहिये।

आचार्य श्री अपने प्रवचन में कहते है कि गांधी जी के माध्यम से भारत के स्वतंत्रता मिली।उनका उदेश्य मात्र भारत को स्वतंत्रता दिलाने का नहीं था। व्यक्ति व्यक्ति स्वतंत्रता का अनुभव कर सके, प्राणी मात्र स्वतंत्र हो और सुख शांति प्राप्त करे, यह उनकी भावना थी।

वर्तमान वेशभूषा पर टिप्पणी करते हुये आचार्य श्री ने कहा कि गांधी जी विदेश से वकालत पढ़कर आये थे, तब भी उन्होंने भारत की मर्यादा को नही छोड़ा, वे देश की अपनी वेशभूषा में रहते थे।

मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य, रहे, हम सब प्रतिदिन यह पाठ करते है पर व्यवहार में नहीं लाते। गांधी जी कितने करूणावान थे, एक बार की घटना है गांधी जी सर्दी में अपने कमरे में रजाई ओढ़े अंगीठी ताप रहे थे। बाहर कहीं से बच्चों के रोने की आवाज सुनाई दी, उन्होंने देखा कि कुत्ते के बच्चे सर्दी के कारण रो रहे थे, तब उनका हृदय द्रवित हो उठा वे बच्चों को उठाकर कमरे में लाये और रजाई उडायी। ये है करूणा, इस घटना के बाद उन्होंने नियम ले लिया था कि सभी के हित में अपना जीवन समर्पित

करूंगा।

अपने प्रवचन में एक और संवेदन शील घटना का जिक्र करते हुये कि एक दिन गांधी जी कहीं घूमने जा रहे थे। एक तालाब के किनारे एक महिला अपनी आधी धोती धो रही थी। आधी वह पहने हुये थी गांधी जी देखकर व्यथित दूषित हो गये उनकी आंख में आंसू आ गये। इस घटना के बाद गांधी जी छोटी धोती पहनने लगे और सादा जीवन बिताना प्रारंभ कर दिया। दूसरे के दुख और अभाव का अनुभव किया उन्होंने।

आचार्य श्री ने कहा कि गांधी जी के पास पर्याप्त ज्ञान था, विलायत जाकर उन्होने अध्ययन किया था और बैरिस्टर बने इतना सब होने के बाद भी उनके भीतर धर्म की संवेदना थी।

खादी जो हाथकरघा से बना कपड़ा है अहिंसक है, आरोग्यकारी है, स्वरोजगारी है, स्वतंत्रता का प्रतीक है, हर मौसम मे उपयुक्त है, बेरोजगारी को हटाने वाला है, स्वाभिमान का प्रतीक है ऐसे खादी वस्त्र एवं हाथ करघा से प्रत्येक व्यक्ति समाज और देश को जुड़ना चाहिए। गांधी जी द्वारा प्रचारित खादी आज आचार्य श्री की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से पुनः जीवित हो गयी है।

आचार्य श्री के इन प्रसंगों को उनकी शिष्य परम्परा मुनि पुंगव सुधा सागर जी महाराज, मुनि प्रमाण सागर जी, मुनि अभय सागर जी महाराज आदि ने भी समय पर उल्लेख किया। आचार्य श्री अपने प्रवचन में कहा कि इस युग में गांधी जी ने अपने जीवन को सादा जीवन उच्च विचार के माध्यम से उन्नत बनाया था। भौतिक शक्ति भले ही कम थी, लेकिन आत्मिक शक्ति धर्म का सम्बल अधिक था। उनके अनुरुप यदि आप अपना जीवन बनाने के लिए संकल्प कर लें तो बहुत सारी समस्याएं समाप्त हो जायेंगी। सभी का जीवन सुखद होगा। देश में मानवता कायम रहेगी और देश की संस्कृति होगी। आत्म कल्याण होगा।

❍❍❍

पूज्य आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज का उत्तम आचार्यत्व

ब्र. मनीष ज्ञान, तेन्दूखेड़ा

आचार्यतेऽस्मादाचार्यः।

जिनसे आचार ग्रहण किया जाता है उसे आचार्य कहते हैं।

आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज आचार के हिमालय हैं, उनके तप ,संयम, समता, समाधि, साधना ने जैन जगत् का नाम उन्नत किया है। सम्पूर्ण जैन समाज उनके अहिंसक ,अनेकांतिक विचार, आचार से अलंकृत हो रही है।

भगवान महावीर के तीर्थ में सदियों बाद सूर्य सम ज्ञान प्रकाश देने वाले तेजस्वी को हम देख पा रहे हैं। चारित्रिक क्षेत्र में इस काल में नया कीर्तिमान रचने वाले आचार्य विद्यासागर जी महाराज हम सबके भाग्यविधाता तारण हारे हैं।

हमें विषय मिला है आचार्य विद्यासागर जी महाराज का उत्तम आचार्यत्व, पर ऐसा ही हो गया सागर को पार करने के लिए टूटी नाव या सूर्य की दीपक दिखाने जैसा उपक्रम।

उत्तम का अर्थ उत्तमा :- प्रधानाः।

मूलाचार में कहा है

मिच्छत वेदणीयं णाणावरणं चरित्र मोहं च।
तिविह तमाहु मुक्का, तम्हाते उत्तमा होंति ॥

मिथ्यात्व वेदनीय ज्ञानावरण और चारित्रमोह इन तीन हम से मुक्त हो चुकें हैं, इसलिए वे केवली उत्तम हैं।

आज हमारे बीच केवली नहीं हैं, पर हमारे आचार्य श्री ही हमारे उत्तम हैं। हम ही नहीं उनके आचरण के प्रत्येक पग/शब्द कर रहे हैं ।

आचार्यों का जो स्वरूप मूलाचार, धवला आदि में कहा है उसके आधार

पर हमारे सबके आचार्य देव सत्प्रतिशत खरे उतरते हैं ।

लगता है प्रकृति ने सारे गुणों को एकत्रित करके आचार्य श्री में भर दिये। एक एक कदम में मूलाचार झलकता है। हर श्वांस में पंचाचार महकता है। हर रोम से दया का दरिया निकलता हैं।

पवयण जलहि जलोयर ण्हायामल बुद्धिसुद्ध छावासो।
मेरुव्व णिप्पकंपो सूरो पंचाणणो वण्णो ॥२९॥
देशकुल जाइ सुद्धो सोमंगो संग भंग उम्मुक्को।
गयणव्व णिरुवलेवो आयारिओ एरिसोहोई ॥३०॥
संगह णिगह कुसलो सुत्तथ विसारओ पहिय कित्ती।
सारण वारण साहण किरियुज्जुत्तोह आयारिओ ॥३१॥ धवला १११/१

प्रवचन रूपी समुद्र के जल के मध्य में स्नान करने से अर्थात् परमात्मा के परिपूर्ण अभ्यास और अनुभव से जिनकी बुद्धि निर्मल हो गयी है, जो निर्दोष रीति से छह आवश्यकों का पालन करते हैं, जो मेरु के समान निष्कंप हैं , जो शूर वीर हैं, जो सिंह के समान निर्भीक हैं, जो वर्य अर्थात् श्रेष्ठ हैं देश कुल जाति से शुद्ध हैं, सौम्य मूर्ति हैं, अन्तरंग बहिरंग परिग्रह रहित हैं ।आकाश के समान निर्लेप हैं , ऐसे आचार्य परमेष्ठी होते हैं।

जो संघ के संग्रह अर्थात् दीक्षा और निग्रह अर्थात् शिक्षा और प्रायश्चित देने में कुशल हैं जोसूत्र अर्थात् परमागम के अर्थ विशारद हैं , जिनकी कीर्ति सब जगह फैल रही है सो सारण अर्थात् आचरण, वारण अर्थात् निषेध और साधन अर्थात् व्रतों की रक्षा करने वाली क्रियाओं में निरन्तर उद्यत हैं उन्हें आचार्य परमेष्ठी समझना चाहिए।

आगम अभ्यास और अनुभव से बुद्धि निर्मल हो गई है-जिनवाणी की कृपा ही है, जो उसका अभ्यास और अनुभव करता है। उसकी सकरात्मक सोच वन जाती है। अनुभव से ही सम्यकज्ञान प्राप्त होता हैं।

सम्यकज्ञानी हमेशा उपकार दया, अहिंसा, अनेकांत, समता के विचारों से ओत प्रोत होता हैं।

निर्मल परिणामों से ही कर्म निर्जरा होती हैं। ध्यान में स्थिर होने के लिए

निर्मल परिणाम आवश्यक हैं। व्रतों के प्रति आदर निरातिचार पालन की शक्ति भी निर्मलता से मिलती हैं।

निर्दोष रीति से आवश्यक पालन- आचार्य श्री की सबसे बड़ी विशेषता है कि आवश्यकों को बड़े आदर से श्रद्धापूर्ण मन वचन काय से करते हैं। सामायिक पूर्ण समर्पण भाव जागृत भाव से करते है ,ऐसा नहीं लगता की कहीं रुप से कर रहे हों। चारों संध्याओं में सामायिक करते हैं। समायिक में कभी भी प्रमाद नहीं करते चाहे कैसी भी विषमता हो पर कभी भी विचलित नहीं होते न ही प्रमाद आता दिखता है। पद्मासन मे लकड़ी की ठूठ जैसे निश्चल परिषहों को सहते हुए आत्म ध्यान मे लीन रहते हैं। स्तुति वंदना में लीन होते तो पूर्ण समर्पित हो जाते है, अरिहंत सिद्धों के गुण गान मे कभी भी मन चलायमान नहीं दिखाई देता।

वाणी गद्‌गद्‌यन वपुः पुलकयन नेत्र-द्वयं श्रावयन्

मूर्द्धानं नमयन करौमुकुलयंश्चेताऽपि निर्वापयन् ॥

चाहे कितनी भीड़ हो चाहे कितने कार्य हो पर जब जो कार्य करते हैं पूर्ण जागृति में।

स्वाध्याय से समय जिनवाणी प्रति आदर भाव और ज्ञान के प्रति भक्ति अनुराग झलकता दिखाई देता हैं। गंभीर से गंभीर प्रश्नों के उत्तर बड़े सहजता से देते हैं।

एक बार एक शिष्य ने व्यंग्य रुप में बोल दिया क्या आप सर्वज्ञ हैं। इस बात पर क्रोध न करके हास्य रुप में टाल दिया और कहा हां हम सब सर्वज्ञ देव को मानने वाले हैं, इसलिए हम सब सर्वज्ञ ही तो है। यही तो जिनवाणी की विनय है। उस समय अपने आप को सम्हाले रखना। बड़ी बात होती है।

प्रतिक्रमण में प्रत्येक शब्द पूर्ण लीन होकर उच्चारित करते हैं , यहां वहां मन नहीं ले जाते। कायोत्सर्ग में कभी भी हाथ अगुलियां नहीं हिलती, पूर्ण २८ श्वास-उच्छास में पूर्ण करते हैं, कभी कभी लोग दो दो कायोत्सर्ग कर लेते जब उनका एक कायोत्सर्ग होता है। कभी भी जल्दबाजी नहीं करते।

मेरु के समान निष्कम्प- आचार्य विद्यासागर जी महाराज प्रतिकूलता रुप आंधियों में भी निष्कंप रहते हैं।

महापुरुषों की यही तो निशानी है। छोटी-छोटी बातों में विचलित नहीं होते। जैसे समुद्र में नदियों का पानी कितना भी आ जाये पर उसका स्तर कभी बढ़ता नहीं है और कितना भी ताप हो जाये पानी सूखता नहीं है। कितने शिष्य, कितनी योजनाएं- कितनी भीड़, कितना बिहार, फिर भी लेखन, स्वाध्याय आदि कार्य चलते रहते हैं। हमेशा हर परिस्थिति में प्रसन्न रहते हैं। हमेशा श्रम करते रहते हैं।

शूर वीर- आचार्य श्री जहां कदम रख देते हैं कभी पीछे नहीं हटते कभी-कभी संघस्थ जन भी सहमत नहीं होते, पर आचार्य श्री का सोचा हुआ कार्य पूरा होता है, क्योंकि महापुरुषों की सोच देखने मे विपरीत लग सकती है, पर उसका एक रहस्य होता है, जो समय आने पर फलदायी होता है, लाभ देता है। कभी कभी तो समाज भी विरोध करती है, पर कुछ समय पश्चात् समझ में आ जाता कि आचार्य श्री ने सही कहा था। इसलिए समाज आचार्य श्री की आज्ञा विना किसी विचार के शिरोधार्य करती हैं।

कुण्डलपुर प्रसंग एक ऐतिहासिक घटना थी। कल वह मंदिर जैन शिल्प का अनुपम उदाहरण बनेगा हजारों वर्षों तक जैन धर्म की पताका फहराता रहेगा। देश विदेशों से लोग आकर बड़ेबाबा के दर्शन करेगे।

सिंह के समान निर्भीक- सिंह वृत्ति के धारक अनियत बिहारी हैं। कभी वसतिका समाज मंदिर ग्राम नगर से ममत्व भाव नहीं रखते। परिहार विशुद्धि मुनि जैसी चर्या का पालन करने की चेष्टा करते हैं। कभी कांटा लग जाये तो निकालने का नहीं बोलते, औषधियों का प्रयोग नहीं करते। नगर ग्रामों में ज्यादा नहीं रूकते ज्यादा समय तो क्षेत्रों पर व्यतीत करते हैं। यहां गाजे बाजे मंच माइक लिए लोग खड़े हैं और पीछे से विहार हो जाता, एकाध किलो मीटर के बाद समाज को मालूम पड़ता है। विहार हो गया। कभी लोग समझते है शौच क्रिया को जा रहे हैं , और विहार हो गया। अनोखी वृत्ति के धारी हैं , कहीं कहीं के लोग २०-२० वर्षो से पुरुषार्थ कर रहे हैं, हमारे यहा का पंचकल्याण आचार्य श्री के सान्निध्य मे करायेंगे। पर आचार्य श्री कुछ नहीं कहते। बहुत सारे प्रसंगो में

सिद्धांत के आगे भय आशा स्नेह से झुकते नहीं है। न ही कभी किसी लोभ के कारण लल्लो चप्पो करते हैं।

श्रेष्ठ है- मुनियों आचार्यों की जो विशेषताएं होती है उनमें श्रेष्ठ तो आचार्य विद्यासागर जी ही है, ज्ञान विज्ञान प्रवचन, काव्य, लेखक, सिद्धांत, साहित्य, व्याकरण, न्याय, अध्यात्म, तप, दया, संगठन, समाजोत्थान, शिक्षा, चिकित्सा, रोजगार, देश प्रगति की भावना, तीर्थोद्धार, महिला विकाश आदि अनेक कार्यों मे श्रेष्ठ हैं और किसी संस्था कमेटी आदि से बंधे नहीं हैं। आचार्य श्री ने समाज को जो किया है उसका ऋण समाज हजारों वर्षों तक नहीं चुका सकती।

सौम्य मूर्ति- समता, सहजता, तप, संयम ,साधना, शुभ भावों के परिणाम स्वरुप छवि में ऐसा तज है , जो चांद तारों में नही, उनकी मुद्रा को देखते हुए कभी मन तृप्त नहीं होता। हजारों किलो मीटर से लोग दौड़े चले आते हैं। आचार्य श्री के रोम रोम से वैराग्य झलकता है। अंग अंग की रचना मोहनीय है।

देश-कुल-जाति से शुद्ध हों - कर्नाटक देश हजारों वर्षो से जैन धर्म का केन्द्र रहा हैं, संस्कारित नैतिक परिवार में जन्म मिला जहां उनकी मां ने घुट्टी में संयम शिक्षा दी, जहां के वातावरण में वैराग्य घुला है। सारा का सारा परिवार संयमी हो गया। ऐसा कुल किसे मिलेगा। उत्तम कुल ने ही उत्तम आचार्यत्व दिया है। आज अच्छे से अच्छे साधक भैतिक सुविधाओं चकाचौध में डगमगा गये हैं। पर एक मात्र आचार्य श्री सुविधा साधनों की आंधी में न बहकर महावीर के सिद्धांतों पर चल रहे हैं।

अंतरंग बहिरंग परिग्रह के ग्रह से दूर भेद विज्ञान की छेनी लेकर कर्म पर्वत को काट रहे हैं। समय सार मय जीवन स्वावलंम्बी का पाठ पढ़ा रहा हैं।

जो हर समय अपने परिणामों को पढ़ता हो, देखता हो। अतिशययुक्ति नहीं होगी, सदियों बाद मूलगुणों के अभिप्राय को किसी ने अच्छी तरह से समझा और जिया हैं।

आचार्य श्री ने ही प्रवचन की नयी विधा को जन्म दिया, जिनको सुनने

हजारों लोग लगे, वह आचार्य श्री की कृपा है।

आज उत्तम चर्या धारक साधक दिख रहे हैं वह आचार्य श्री का जादू हैं।

आचार्य श्री अनलिमिटेड दीक्षा का बंफर आफर ला दें, तो एक दिन में हजारों दीक्षायें हो जायेगी। हजारों भैया दीदी लोग दीक्षा हेतु तैयार ही बैठे हैं।

कीर्तिवान- आचार्यों के गुणों में आता है कि आचार्य कीर्तिवान होना चाहिए आचार्य श्री की कीर्ति सात समुद्र को लांघ कर सम्पूर्ण विश्व में दिगम्बरत्व का पाठ पढ़ा रही है।

आचार्य श्री के समान कीर्ति आज किसी साधु की नहीं है। यह कीर्ति यंत्र-मंत्र-तंत्र, ज्योतिष, गण्डा-तावीज, शनिग्रह निवारण, प्रवचन शैली से नहीं मिली, वह तो रत्नत्रय युक्त मूलगुणों की उत्तम साधना से प्राप्त हुई हैं।

आज अच्छे साधकों की तुलना आचार्य श्री से की जाती है, यही तो उनकी श्रेष्ठता का सबसे बड़ा प्रमाण हैं।

आचार्य श्री की साधना शाश्वत है, उधार नहीं, क्योंकि आचार्य श्री कहते हैं, खरा सो मेरा अभी तक सदियों के इतिहास में आचार्य विद्यासागर जी महाराज ऐसे उत्तम आचार्यत्व का धारण करने वाले संत है, जिन्होंने सर्वाधिक दीक्षाएं दी हैं। उनमें भी सबसे ज्यादा साधु उच्च शिक्षित हैं।

आचार्य श्री केवल बाल ब्रह्मचारी भैया, ब्रह्मचारी बहनों, नौकर-चाकर, गाड़ी-घोड़े आदि नहीं रखते।

संघ में कोई शीत ऋतु में चटाई का उपयोग नहीं करते। आज्ञानुवर्ती कोई कोई साधु चटाई का उपयोग करते हैं। अधिकांश साधुओं का नमक रस का त्याग है। आचार्य श्री का नमक, मीठा, तेल, दही, हरी सब्जी, फल, मेवा आदि का त्याग है, अनाज दाल भी सीमित संख्या में लेते हैं।

आहार में हमेशा कुएं का जल उपयोग में लिया जाता है। कैसा भी परिस्थितियां हों मुंह से कफ, थूक बाहर नहीं करते। यह भी व्रतों के प्रति सजगता है।

रात्रि में लाइट का उपयोग नहीं करते क्योंकि विजली बनने में हिंसा है,

उपयोग करने में अनेक जीवों की हिंसा होती है।

आचार्य श्री ऐसे संत है जो सदा संध्या कालीन सामायिक में बैठने से पहले लघुशंका जाते हैं और फिर प्रातः कालीन सामायिक के पश्चात जाते हैं। रात्रि में कभी भी लघुशंका या दीर्घशंका नहीं जाते। ऐसी साधना महान् साधकों की होती है।

केशलोंच कभी सभा में नहीं करते क्योंकि यह तो साधना, स्वावलम्बन, सिंहवृत्ति की पहचान है , हमेशा दो माह बाद करते हैं।

अनियत विहारी है- भगवती आराधना में कहा गया है साधु को अनियत विहारी होना चाहिए। कभी भी योजना बद्ध बिहार नहीं करते जिससे वसतिका, समाज, आदि से ममत्व न हो। देश-देश की चर्या, भिन्न वातावरण से परिचय होता है परिषह सहने से ज्ञान की वृद्धि होती है।

ऐसे प्रथम आचार्य थे जिन्हें अपने गुरु श्री ज्ञानसागर जी ने अपना आचार्य पद देकर शिष्यत्व स्वीकार किया, सबसे सफल सल्लेखना की। आचार्य श्री अपने गुरु की ऐसी सेवा की कि युगों युगों तक स्मृति रहेगी। यदि श्री ज्ञानसागर जी को मुंह में कफ आ गया तो आचार्य श्री अपने हाथों में कफ ले लेते थे, पूरा उपयोग और समय गुरू की वैयावृत्ति मे लगा दिया था। नसीराबाद की भीषण गमी में ऐसी सेवा की जो युगयुगांतर स्मरण रहेगी। आचार्य विद्यासागर जी उत्तम निर्यापकाचार्य हैं।

भगवती आराधना में कहा है आचार्यत्व गुणों को धारण करने वाले आचार्य सर्व दोषों का त्याग करते हैं, इसलिए गुणों में प्रवृत्त होने वाले दोषों से रहित ऐसे आचार्य निर्यापक होने के लायक होते हैं।

निर्यापकाचार्य जो संसार भय मुक्त हैं, जो पाप कर्म भीरू हैं और जिनागम का स्वरूप मालूम है, ऐसे आचार्य के चरण मूल में वह यति समाधि मरणोद्मी होकर आराधना की सिद्धि करता है।

ये सब विशेषताएं आचार्य श्री पर शत प्रतिशत खरी उतरतीं हैं।

क्योंकि में कहा है

सर्वज्ञवीतरागस्य स्ववशस्यास्य योगिनः।
न कामपि भिदां कापि तां विद्यो हा जड़ा वयम्। नि.सा. १४९

सर्वज्ञ वीतराग में और स्ववश योगी में कभी कुछ भी भेद नहीं है, तथापि अरे रे हम जड़ हैं कि उनमें भेद मानते हैं।

धर्म, अर्थ काम, मोक्ष तथा उनकी कारण भूत प्रवज्या को देने वाले ऐसे आचार्य देव हैं। बोध पा. धवला में रत्नत्रय की अपेक्षा देव पना है।

आयरिय पसाय- आचार्य के प्रसाद से विद्या मंत्र तंत्र की सिद्धि होती है।

बड़े बड़े मंचों पर बड़े बड़े लोगों से सम्मान प्राप्त करने वाले लोग भी आचार्य श्री के यहा आकर धक्का खाकर भी प्रसन्न होते हैं । यही तो उनका आचार्यत्व है, वह भी उत्तम।

पंचाचारों से परिपूर्ण पंचेन्द्रिय हाथी के मद का दलन करने वाले, धीर और गुण गम्भीर ऐसे आचार्य होते हैं। नि सा./मू./७३

जिनके निमित्त व्रतों का आचरण करते हैं वह आचार्य कहलाता हैं। स.सि. ९/२४/४४२

गंभीरो दुद्धरिसो सूरो धम्मप्पहावणासीलो।
खिदि ससिसायर सरिणो कमेण तं सो दु संपत्तो ।।१५९।। मूलाचार

जो गंभीर हैं दुर्धर्ष हैं शूर है और धर्म की प्रभावना करने वाले हैं भूमि, चन्द्र और समुद्र के गुणों के सदृश्य हैं। इन गुण विशिष्ट आचार्य को वह मुनि क्रम से प्राप्त है।

आचार्य श्री वास्तव में समुद्र के समान गंभीर हैं सुनते ज्यादा है बोलते कम हैं। कभी भी निर्णय में शीघ्रता नहीं करते, वोलने मे भी एक एक शब्द तौल कर निकालते है।

जैन धर्म की जितनी प्रभावना आचार्य श्री ने उतनी सैकड़ो वर्षो मे कोई नहीं कर पाया।

बुंदेलखंड में ३ दशकों से दान, पूजा करने वालों की संख्या बड़ी है नियम, संयम, व्रतों को धारण करने क्रांति आयी प्रत्येक जगह मिल जायेगे। ग्राम नगरों में पाठशालायें संस्कार का बड़ा कार्य कर रही हैं।

आचार्य श्री किसी को त्याग नहीं करवाते, आहारादि के प्रसंग में ज्यादा जटिल नियम लेने का नहीं वोलते पर लोग ज्यादा करते हैं।

सर्व कवि- संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी, कन्नड़, बंगला आदि भाषाओं मे काव्य रचना करके साहित्यकारों को आश्चर्य में डाल दिया है।

आचार्य समंतभद्र स्वामी जैसे संस्कृत श्लोक, मुरजबंध, चित्र काव्य, अल्पअक्षरी काव्य, कासी रचना की अनेक ग्रंथों का हिन्दी में पद्यानुवाद करके आगम को सहज सरल कर दिया है।

मूकमाटी जैसा महाकाव्य जिस पर ५५ के लगभग शोधार्थियों पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की हैं। हिन्दी साहित्य में वह कार्य किया है, तो बड़े बड़े साहित्यकार नहीं कर पाये। उस साहित्य की समीक्षा में भेद भाव किया जा रहा। जैसे हमारे पुराने हिन्दी साहित्य के साथ भेद-भाव हुआ है, वही भेद भाव आज भी हो रहा है। यदि और कोई होता तो उसे नोवल पुरस्कार मिल जाता।

आचार्य श्री के चिंतन से प्राचीन शिल्प कला फिर जागृत हो गयी है, अभी जो भी नये मंदिर बन रहे हैं आगें चलकर हमारी जैन संस्कृति के दर्पण होगे।

आचार्य श्री के द्वारा जो बीज वपन किया गया है वह कुछ वर्षों पश्चात् बट वृक्ष बनेगा, तब हमारा झंझा दशों दिशाओं में कीर्ति फैलायेगा।

आचार्य श्री की उत्तम चर्या को हमारा संत समुदाय पचा नहीं पा रहा, क्योंकि संयम पालन में आचार्य श्री जैसा सामर्ध्यत्र नहीं है। हमें लगता है आचार्य श्री जैसी साधना पाने के लिए लोगों को एक जन्म और लेना पड़ेगा। परिग्रह धारियों को सबसे ज्यादा डर आचार्य श्री के संघ से लगता हैं।

कुछ मिला कर आचार्य श्री जैन गगन के चंद्र हैं, संस्कृति के सितारे हैं, गरीबों के पालन हार हैं, संयमियों की खदान हैं। आचार्य श्री की चर्या में मूलाचार झलकता है। यदि कोई मूलाचार न पढ़ पाया हो तो आचार्य श्री की चर्या को देख लेना, फिर पढ़ने की जरूरत नहीं पड़ेगी।

इन सब बातों से हम कह सब कह सकते हैं, आचार्य श्री उत्तम आचार्यत्व का धारण करने वाले महान संत हैं।

○○○

आचार्य विद्यासागर और उनकी आहार चर्या

ब्र. जिनेश मलैया, इन्दौर

ले तप बढ़ावन हेतु नहीं तन पोखदे नहीं ताज रसन को। इस छहढ़ाला के वाक्यांश को पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर महाराज ने अपने जीवन में गहराई से अपनाया है। जब वे ब्रह्मचारी थे तब भी वे श्रावक के घर नीची गर्दन करके सीधे भोजन करते थे। बिना किसी ना नुकर के जो भी मिलता था उसे संतोष के साथ ग्रहण करते थे। मुनि दीक्षा के उपरांत आचार्य श्री विद्यासागर जी ने रस परित्याग की ओर अपना पूरा ध्यान केन्द्रित किया। कढ़ाई के तले भुने पदार्थ और मिष्ठान तो उन्होंने न जाने कब से ही त्याग कर दिये। नमक और शक्कर का त्याग तो आचार्य श्री ने सन् १९६९ में ही कर दिया था एवं सन् १९९४ में रामटेक वर्षायोग के दरमियान आचार्य श्री ने सभी वनस्पतियों का त्याग कर दिया था। यह तो सर्व विदित ही है कि जैन साधु एक ही बार भोजन और पानी लेते है तथा वे खड़े होकर भोजन लेते है तथा अंतराय आने पर बीच में ही भोजन पानी लेना छोड़ देते हैं। फिर कुछ भी नहीं लेते हैं। आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज कि पड़गाह न विधि एक अलग ही प्रकार से है। वे बिजली की चमक की तरह आहार के लिए निकलते हैं, विधि मिलाने के लिए लौट पलट नहीं करते है किन्तु जहां उनकी विधि मिल जाती हैं वहीं वे रुक जाते हैं। आहार के समय श्री श्रावक से ज्यादा पूछताछ या उसकी परीक्षा नहीं लेते हैं अनेक प्रकार कि चौके में देखरेख भी नहीं करते है इसके पीछे उनका सोच यह है कि साधु को आहार काल में श्रावक की अधिक परीक्षा नहीं करना चाहिए भ्रामरी वृत्ति से ही आहार करना चाहिए। वैसे भी मूलाचार आदि ग्रंथों में आहार चर्या के समय चार प्रकार की वृत्तियां प्रमुख रूप से बताई गई है। १. भ्रामरी वृत्ति २. गर्त पूरितवृत्ति ३. अक्षमृक्षणवृत्ति ४. गोचरीवृत्ति

जिस तरह भौंरा फूल-कलियों पर बैठकर रसचूस लेता है किन्तु फूल-कली

को जरा सा भी झुकने नहीं देता है उसी तरह साधु अपने पूर्ण आहार कर लेता है किन्तु श्रावक को जरा सा भी कष्ट नहीं होने देता है इसे ही भ्रामरी वृत्ति कहते है। जिस प्रकार रथ या गाड़ी की धुरी पर घी तेल ओगन या कोई भी चिकना पदार्थ लगा देते हैं, प्रयोजन सिर्फ इतना होता है कि धुरी घिसना नहीं चाहिए ठीक इसी तरह से तप स्वाध्याय और वैयावृत्ति हेतु अक्षमृक्ष वृत्ति कहते हैं। जिस तरीके से गड्डे को भरने के लिए पत्थर, रेत,ईंट चूरा किसी का भी प्रयोग करते हैं , ठीक इसी प्रकार साधु-रूखा चिकना कैसा भी भोजन लेकर अपने पेट का गड्डा भर लेते हैं, इसे गर्त पूरित वृत्ति कहते हैं। जिस प्रकार गाय के लिए सुन्दर असुन्दर कोई भी स्त्री पुरुष चारा डालते हैं, गाय को तो मात्र चारा खाने से प्रयोजन होता है , उसे डालने वाले से कोई प्रयोजन नहीं होता है ठीक इसी तरह साधु के लिए सुन्दर असुन्दर आदि कैसा भी दाता दान दे रहा है उसे इससे कोई मतलब नहीं होता है उसे तो सिर्फ आहार ग्रहण करने से मतलब होता है ,इसे ही जैन आचार्यों ने गोचरी वृत्ति कहा है। पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर महाराज की आहार चर्या में ये वृत्तियां स्पष्ट तौर पर देखी जाती हैं।

वैसे तो मूलाचार, रयणसार, अनगार धर्मामृत में भोजन ग्रहण करने का कारण व प्रयोजन संयम रक्षार्थ कहा गया हैं, शरीर रक्षार्थ नहीं। किन्तु मूलाराधना कि ४७९ गाथा में कथंनचित् शरीर रक्षार्थ भी आहार ग्रहण करने का प्रयोजन बताया है उन्होंने कहा है क्षुधा की वेदना के शमन करने के लिए, वैया वृत्ति करने के लिए छः आवश्यक क्रिया के पालन के लिए, तेरह प्रकार के चारित्र के लिए, उत्तम क्षमा आदि धर्म के पालन के लिए भोजन करना चाहिए यहाँ पर यह गाथा पठनीय हैं।

वेयणवेज्जा वच्चे किरियाठाणेय संयमट्ठाय । मू. आ. ४७९
तधपाण धम्म-चिंता कुज्जा ऐदेहि आहारं ।।

इससे यह सिद्ध होता है कि पूज्य आचार्य विद्या सागर जी महाराज जी की आहार चर्या आगम अनुकूल और नियमबद्ध है। आधार चर्या आगम अनुकूल और नियमबद्ध है। आहार और स्वाद का संबध तो उनका कभी रहा ही नहीं है। हाँ स्वास्थ के अनुकूल भी कहा जाय तो कठिन बात है न तो भरपूर कैलोरी लेते

है न ही उनके आहार का सबंध फुड टेक्नालॉजी से है और न ही न्यूट्रेशन से। फिर भी उनका शरीर और उनकी फिटनेस तो बहुत गजब की है। उनके अन्दर स्फूर्ति और स्टेंपनर और आरोग्यता खूब गजब की है, एक बार नीरस आहार लेने वाले साधक चौबीस घण्टे की साधना अबाधित रूप से करते हैं ।

सजात्तित्व व पिण्डशुद्धि जैसे मामले (मुद्दें) आचार्य श्री ने आगम के परिपेक्ष्य में खूब सुलझा कर रखें हैं, उन्होंने अपने आहार चर्या के माध्यम से सदैव समाज को जोड़ा है तथा युवा वर्ग के लिए आहार के माध्यम से प्रोत्साहन देते हुए आहार चर्या के माध्यम से धर्म पथ में लगाया है। हम यह कह सकते हैं कि आचार्य श्री ने किसी को भी नियम से बाह्य नहीं किया है। अतः हम कह सकते है पूज्य आचार्य श्री आहारचर्या पतितोद्धारक हैं आगम निष्ठ स्वास्थ्य संवर्धक, स्वाध्याय सापेक्ष, इंद्रिय निरोधात्मक तथा सरल श्रावक को धर्म की प्रेरणा देने वाली आहार चर्या आदर्श रूप कही जा सकती है। जिसे प्रत्येक साधु अपनाकर मोक्षमार्ग पर आरूढ़ हो सकते हैं।

OOO

दान राशियों को अन्य क्षेत्रों में हस्तांतरण: आचार्य विद्यासागर महाराज जी की दृष्टि

पं. सनतकुमार विनोदकुमार जैन (रजवाँस सागर म.प्र.)

दिगम्बर जैन साधु आत्मशुद्धि एवं वीतरागता की प्राप्ति के लिए निरन्तर विहार करते रहते हैं । एक स्थान पर रहने से मोह एवं राग की उत्पत्ति एवं पुष्टि होती है। नीतिकारों का कथन है कि बहता हुआ पानी एवं विहार करता हुआ साधु पवित्र होता है। जिस प्रकार पानी रुक जाने पर दूषित हो जाता है उसी प्रकार साधु के रुक जाने से वह रागद्वेष मोह से दूषित हो जाता है। निरन्तर विहार करते रहने से जहाँ आत्मशुद्धि होती है वहीं श्रावकों का कल्याण भी होता है। साधु तरण-तारण हैं। वे स्वयं पार होते हैं और दूसरों को भी पार करते

हैं। अर्थात् साधु चलते फिरते तीर्थ हैं। संसार से पार उतरने के कारण को तीर्थ कहते हैं। यह तीर्थ दो प्रकार के हैं । १. निश्चय तीर्थ २. व्यवहार तीर्थ

१. निश्चय तीर्थ- जिनमार्ग में निर्मल उत्तम क्षमादि धर्म, निर्दोष सम्यक्तव, निर्मल संयम, बारह प्रकार का निर्मल तप और पदार्थ का निर्मल ज्ञान ये तीर्थ हैं। धर्म का अर्थ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र है, चूंकि इनसे संसार सागर को तरते हैं, इसलिए तीर्थ कहा है । जिनका आश्रय लेकर भव्यजीव संसार से तिरकर मुक्ति को प्राप्त होते हैं, उसको तीर्थ कहते हैं।

कितने भव्य जीव श्रुत से अथवा गणधर की सहायता से संसार से उत्तीर्ण होते हैं। इसलिये श्रुत और गणधर को तीर्थ कहते हैं। दृष्ट, श्रुत और अनुभूत ऐसे विषय सुख की अभिलाषा रूप जल के प्रवेश से जो रहित हैं, ऐसी परम समाधि रूप नौका के द्वारा जो संसार-समुद्र से पार हो जाने के कारण तथा दूसरों को पार उतारने का उपाय अर्थात् कारण होने से तीर्थंकर परम तीर्थ हैं।

२. व्यवहार तीर्थ- जो निश्चय तीर्थ की प्राप्ति का कारण है, वह व्यवहार तीर्थ है। वे तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों के स्थान एवं मुक्त जीवों के चरणकमलों से स्पृष्ट सम्मेदशिखर, ऊर्जयन्त, शत्रुन्जय, पावागिर आदि व्यवहार तीर्थ हैं। तीर्थ के दो भेद हैं -१. द्रव्यतीर्थ २. भावतीर्थ

१. द्रव्यतीर्थ- जिससे सन्ताप शान्त होता है , तृष्णा का नाश होता है, मल पंक की शुद्धि होती है वह द्रव्यतीर्थ है।

२. भावतीर्थ- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से युक्त जिनदेव भावतीर्थ हैं। आगम और तीर्थक्षेत्र संस्कृति के संरक्षक और संवाहक होते हैं । इनकी सुरक्षा, संरक्षण, संवर्द्धन एवं वृद्धि हमारा कर्तव्य ही नहीं आवश्यक कार्य भी है। जीर्ण एवं विस्मृत होते तीर्थों का पुनरोद्धार- जीर्णन्युद्धार येद्यस्तु पुण्यमष्ट-गुणं लभते।

प्राचीन मंदिर जीर्णोद्धार करने से आठ नये मंदिर बनबाने का पुण्य प्राप्त होता है। अतः हमें जीर्णोद्धार के कार्य में सदा संलग्न रहना चाहिए। नगरों की अपेक्षा तीर्थों पर अनेक जीर्ण मंदिर देखे जा सकते हैं। इसलिए तीर्थ क्षेत्रों पर निरन्तर जीर्णोद्धार के कार्य होते रहते हैं । कुछ ऐसे तीर्थ हैं जो विस्मृत हो

गये हैं । ऐसे तीर्थों का पुनरूद्धार भी आवश्यक था। आचार्य विद्यासागर जी महाराज ने ऐसे ही तीर्थ नेमावर और अमरकंटक आदि पर दृष्टिपात किया और उनका पुनरूद्धार हो गया। इनका निर्वाण काण्ड में उल्लेख है।

दहमुह-रायस्स सुआ, कोडीपंचद्धमुणिवरें सहिया।
रेवा-उहयम्मि तीरे णिव्वाण गया णमो तेंसि ।।१०।।

तीर्थक्षेत्रों का विकास- तीर्थक्षेत्रों का उद्भव और विकास अर्थाधीन होता है। वर्तमान में भौतिकता की चकाचौंध में व्यक्ति बहिर्मुखी, विषयाभिलाषी एवं सुविधाभोगी होता जा रहा है। इसकी आय का बहुभाग विलासिता में खर्च हो रहा है । इससे वर्तमान में समाज की दृष्टि तीर्थक्षेत्रों में कम गतिमान है । धर्माराधना के नाम पर उत्सव प्रियता बढ़ी है। महँगे खर्च से कार्य करने की शैली फल-फूल रही है। लोग भी रुचि पूर्वक धन खर्च करते हैं। जो प्रायः ५० प्रतिशत ही उपयोगी और आवश्यक स्थानों में खर्च होता है।

ऐसे समय में युगनिर्माता, युगसृष्टा, युगदृष्टा, आचार्य विद्यासागर जी महाराज ने अपनी दूरदृष्टि और अनुभव के आधार पर समाज को मार्गदर्शन दिया कि बड़े आयोजनों, महोत्सवों की आय यदि जैनधर्म, संस्कृति संरक्षण और श्रमण संस्कृति के सरंक्षण के उन्नयन में लगे तो श्रेष्ठ है। आचार्य श्री के इन वचनों को प्रमाण मानते हुए, इन्हें चरितार्थ किया गया है। जिसके कारण जहाँ पुराने तीर्थो का सरंक्षण हुआ है , वहीं विस्मृत तीर्थो की स्थापना हो सकी है। ऐसे लोकोत्तर कार्यों को युगों-युगों तक स्मरण किया जायेगा।

धन मनोमालिन्य का प्रथम सोपान कहा गया है । महामहोत्सवों के बाद स्वीकृतधन या देर से प्राप्तधन का ग्रहण मन को जहाँ कलुषित करता है, वहीं अनेक विकृतियाँ भी उत्पन्न करता है। कई बार दान में दिया गया धन परिणाम शुद्धि से कहीं ज्यादा अशुभ भावों को उत्पन्न कर देते हैं, किन्तु महोत्सव की आय या आय का अंश किसी क्षेत्र को प्रदान करने की घोषणा से धन का संकलन सहज और सरल हो जाता है। परिणाम भी शुभ होते हैं। वह चिन्तन करता है कि बोली के धन का अच्छा उपयोग हो रहा है । क्रियात्मक, विचारात्मक, भावात्मक और सकारात्मक चिन्तन शुभास्त्रव का कारण बनता

है और तीर्थों का संरक्षण होता है, अतःयह कार्य अनुकरणीय ही नही प्रशंसनीय भी है।

❍❍❍

दिव्य व्यक्तित्व के आइने में आचार्य देव विद्यासागर जी महाराज

दर्पण झूठ कहता नहीं, जो होता है दिखता वही

विधानाचार्य ब्र. त्रिलोक जैन, जबलपुर

व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके चेहरे पर झलकता है। व्यक्ति का चरित्र उसकी चर्या में झलकता है। व्यक्ति का अंतः करण भावों के माध्यम से या तो चेहरे पर पड़ा जा सकता है, या वाणी में सुना जा सकता है। कुल मिलाकर शारीरिक भाषा एवं वचनों के माध्यम से ही व्यक्ति के मन के तल का पता चलता है। इन्द्रियों एवं मन का शांत संयत व्यवहार व्यक्ति की उज्जवल आत्मा के उत्कर्ष का पता देता है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं चारित्रिक विकास की बुनियाद माता पिता से प्रारम्भ होकर परिवार पड़ोस एवं समाज की राह से चलकर शिक्षक एवं गुरु के हाथों उत्कर्ष को प्राप्त होती है।

आज सुधीजन हो या व्रतिजन, विद्वत जगत हो या साहित्य जगत संत हो या संसारी सबके मुख पर एक ही नाम है संत शिरोमणि १०८ आचार्य गुरुदेव विद्यासागर जी महाराज। जिनके तप त्याग की सुगंध से सम्पूर्ण धर्म जगत महक रहा है। आइये, व्यक्तित्व विकास यात्रा के प्रथम पड़ाव जननी और जन्मभूमि पर विचार करे। यह सर्व विदित है विद्याधर का जन्म जम्बूद्वीप स्थित भारत देश कर्नाटक प्रान्त के ग्राम सदलगा में १० अक्टूबर १९४६ को माँ श्रीमंति के पवन कोख में हुआ। माँ अपने शिशु के व्यक्तित्व विकास की प्रथम पाठशाला होती है। (संस्कार, सदाचार, न्याय नीति की आचरण मूलक जो शिक्षा एक माँ दे सकती है वह दुनिया के सभी विश्व विद्यालय मिलकर नहीं दे सकते) संसार भगवान आदिनाथ, महावीर, राम आदि

महापुरुषों को नमन कर जयकार तो करता है किन्तु माता मरुदेवी, माता त्रिशला, माता कौशल्या को भूल जाता है। आचार्य भगवन मानतुंग स्वामी ने माता के गुण गौरव को रेखांकित करते हुए कहा है जैसे सूरज को जन्म देने वाली एक मात्र पूर्व दिशा ही होती है ठीक इसी प्रकार से तीर्थंकर भगवंत को जन्म देने वाली दिव्य अलौकिक व्यक्तित्व की धनी माँ होती है। जो वृक्ष आसमान छूते हैं उनकी जड़े भी पाताल छू रही होती है। आज सम्पूर्ण परिवेश संत शिरोमणि आचार्य भगवंत विद्यासागर मय हो रहा है। त्रिलोक पूज्य गुरुदेव कि कीर्ति पताका चारों ओर लहरा रही है, गुरुदेव की यश सुरभि से सम्पूर्ण धर्म जगत महक रहा है। गुरुदेव के गुण गौरव से अभिभूत मेरा चित आज माँ श्रीमंती को नमन करना चाहता है। विद्याधर के अग्रज व्रती श्रावक महावीर जी के अनुसार माँ श्रीमंती के बचपन में ही सम्पूर्ण परिवार महामारी में काल कवलित हो गया था। यह सर्व विदित तथ्य है सांसारिक सहारे जितने अनुकूल होते हैं हम उतने ही भगवान और भक्ति से दूर हो जाते हैं। अनुकूलताओं में प्रायः व्यक्ति भोगों की ओर दौड़ता है प्रतिकूलताओं के भंवर में फंसते ही व्यक्ति और भगवान और भक्ति के अभिमुख होता है। जो बिटिया बचपन मेंही अनाथ हो गी हो महामारी ने जिसके सभी सहारे छिन लिए हो उस बिटिया की भगवान में लगन और भक्ति किस कोटि की होगी इस बात को सहज ही समझा जा सकता है। यही बिटिया श्रीमंती आगे जा कर मल्लप्पा जी की धर्मपत्नी बनी। कोी भी अनाज, फल-फूल की फसल एक दिन में तैयार नहीं हो जाती। कृषक की साधना, धैर्य एवं संघर्ष की राह से गुजर कर ही फल-फूल एवं अनाज को प्राप्त करती है। यही बात संतान के संदर्भ में भी लागु होती है। संसार फल देखता है वृक्ष एवं जड़े नहीं। अपने कुल, ग्राम, परिवार और समाज के साथ देश के मान बहुमान सम्मान को अपनी तप त्यागमय चरित्र साधना से जो हिमालयी ऊंचाई प्रदान कर रहे हैं , संत शिरोमणि आचार्य भगवन विद्यासागर जी महाराज का प्रादुर्भाव जिस युवारत्न विद्याधर में मुनि कुल तिलक आचार्य भगवन ज्ञान सागर जी ने किया उस धर्म युवा विद्याधर की जननी माँ श्रीमंती

की धर्म साधना, विशुद्ध भावना जिसने अपने बच्चों को डॉक्टर, इंजीनियर, कलेक्टर, सी.ए. बनाने की न सोच नियम से भगवान बनाने की सोच होगी। अपने मन को जिसने निरंतर कषायों से बचाया होगा। तृष्णा - नागिन को अपने घर से दूर रखा होगा। संसार के प्रलोभनों से जिसने खुद को बचाया होगा, यही कारण है कि जिसके तीनों पुत्र मोक्ष मार्ग के महापथिक बन रत्नत्रय के रत्न से चमक रहे है। प्रथम पुत्र ज्ञान सागर के सागर विद्यासागर है तो निज में ठहरे चिन्मय चेतन मग्न मुनिश्री समयसागर जी एवं मुनि श्रेष्ठ योगसागर जी भी मुनित्व के गौरव को बढ़ा रहे हैं। दोनो बिटियाँ शांता एवं सुवर्णा ब्राह्मी सुंदरी की तरह ब्रह्मचर्य की साधना कर अपने जीवन को सार्थक कर रही है। सबसे सुखद यह है पिता मल्लाप्पा जी के वंश वेळ को आगे बढ़ा प्रथम पुत्र महावीर जी भी मुनि बनाने के लिए प्रयत्नशील है। धन्य है माँ श्रीमंती पिला मल्लाप्पा जी जिनके राग का परिणाम भी वैराग्य के पथ पर अग्रसर है।

धन्य है ग्राम सदलगा कि गलियां जिनमें खेला बचपन आज विद्याधर से विद्यासागर बन राग देश के संसारवर्धक खेल को तज आत्मा परमात्मा से मेल बढ़ानेवाले मोक्ष मार्ग पर रत्नत्रय के आलोक में महाव्रतों की सजीव साधना कर दिगम्बरत्व को जयवंत कर रहा है। व्यक्तित्व विकास का दूसरा सशक्त हेतु है गुरु। माँ एक सम्भावना को जन्म देती है और गुरु उसे संभव कर दिखाता है। पिता मल्लप्पा जी के संस्कारवान आंगन में शरद पूर्णिमा के दिन जिस उजली सम्भावना विद्याधर ने माँ श्रीमंती की पावन कोख से नज्म लिया था उसे संभव कर दिखाया मुनियों में महामुनि १०८ ज्ञानसागरजी महाराज ने। जहाँ विद्याधर जैसे शिष्य का समर्पण गुरु गुण गौरव आचार्य भगवन ज्ञान सागर जी के पावन पुनीत चरणों में सागर में नदी की तरह होता है, वही मोह के अंधेरे में धर्म का सवेरा एवं ज्ञान का उजेरा क शील संयम तदाचार संस्कार एवं तप रूप चरित्र का दिव्य प्रकाश फैलाने वाले युगदृष्टि योगीशरर त्रिलोक पूज्य श्रमण सूर्य गुरु देव विद्यासागर जी का धर्म रूप आलोक मोक्ष मार्ग प्रशस्त करता है।

मैंने आचार्य भगवन ज्ञानसागरजी को नहीं देखा, मैंने देखा है गुरवर विद्यासागर जी को। फिल्म के किसी भी दृश्य में डायरेक्टर, निर्देशक, दिखाी नहीं देता लेकिन ऐसा कोई दृश्य नहीं होता जिसमें डायरेक्टर न हो। ठीक इसी प्रकार से परम पूज्य गुरुदेव की मोक्ष मार्ग के अनुकूल जीवंतचर्या में आचार्य भगवन ज्ञानसागरजी के दर्शन करता हूँ।

आइये परम पूज्य गुरुदेव श्रमण सूर्य १०८ आचार्यश्री विद्यासागर जी की मूलाचार मयी चरित्र दिगदर्शिका साधना को चर्या के आलोक में देखते हैं, गुरुदेव का रूप स्वरूप मयी व्यक्तित्व जो मोक्ष मार्ग का जीवंत दिग्दर्शन करता है।

अनुभवी सुधिजन एवं व्रतिजनों के साथ श्रेष्ठी जन कहते हैं आचार्यश्री के दिव्य आभामंडल में पहुंच कर संसार ताप से तप्तयमान संसारी प्राणी को भोगों के रेगिस्तान में अध्यात्म अमृत रस की मधुर जल धार का अनुभव होता है। जो संतुष्टि महलों एवं सिहांसनों पर बैठ कर नहीं मिलती वह संतुष्टि श्री गुरुदेव के चरणों में नम्रीभूत होने पर मिलती है।

सूरजमुखी पुष्प का मुख जैसे सूरज की ओर ही रहतका है ठीक ऐसे ही भव्य जीवों का मुख भी श्रमण सूर्य गुरुदेव विद्यासागर जी की ओर रहता है। आचार्य देव के दिव्य मुख मण्डल के दर्शन कर भाव विभोर भवि जीव मोह के अँधेरे से निकल धर्म के सबेरे में आ जाते हैं।

आचार्य श्री की अलोकिक वीतरागी छवि को निहार कर भवि जीवों को नयन मोक्ष मार्ग में नम्रीभूत हो जाते हैं। आचार्य देव विद्यासागर जी के श्रीमुख के दर्शन कर भवि जीवों को ऐसा ही आनंद मिलता है जैसा आनंद अंधकार से भयभीत रात्रि में पथ भटके व्यक्ति को सूर्य की प्रथम किरण भोर की बेला में मिलता है। इसके साथ ही स्व पर कल्याण मित्र आचार्य श्री जी अपने आत्म अभ्युदय के प्रति अहिर्निष सजग तो है ही कर्मों की मार लाचार शिष्य विकारों में डूबे मोही प्राणियों को भी आत्मोत्कर्ष के प्रति प्रेरणा का प्रकाश भी प्रदान करते हैं।

आचार्य श्री जी की चरित्र मय जीवन चर्या को देखकर, भविजीव हर्षित हो अहोभाव से भर वस्त्रों के भार को उतार कर निर्भार हो रत्नत्रय की संसार तारणी पावन पुनीत नौका में निश्चित हो कर बैठ जाता है। आचार्य श्री जी की आत्म हितकारी चर्चा को सुन कर भवि जीव प्रेय से श्रेय की यात्रा के पथिक बन जाते हैं। आचार्य भगवन संत शिरोमणि विद्यासागर जी की अमृत वाणी को सुन कर भवि जीवों को ऐसा ही आनंद मिलता है। जैसा आनन्द माँ से बिछड़े बच्चे को माँ से मिलने पर मिलता है।

आचार्य श्री जी के स्वाध्याय में तल्लीन चेहरे की आकृति को देख कर ऐसा लगता है कि शब्दागम कि गंगा में डुबकी लगा कर भावश्रुत के अनमोल मोती प्राप्त कर रहे हैं। आचार्य श्री जी जब अपने निर्ग्रन्थ मुनिराजों को स्वाध्याय कराते समय जिस अहोभाव से हेय उपादेय का बोध कराते हैं तो ऐसा लगता है जैसे कि भवि सिद्धों से बात कर रहे हैं। कुल मिलाकर आत्म निष्ठ प्रवृत्ति अन्तर्मुखी मनोवृत्ति को जाग्रत करते हैं। आचार्य श्री जी के दिव्य वचन प्रवचन। कुल मिला कर आचार्य श्री जी की चर्चा एवं चर्या दोनों प्रेरणा का प्रकाश प्रदान करती है। आचार्य श्री जी कि कायोत्सर्ग मुद्रा आत्म हित साधकों को आत्म तल्लीनता के साथ साथ आनंद का खजाना संतुष्टि का अमृत अपने अंदर ही है कही बाहर नहीं है इस दिव्य अनुभूति की सुखद प्रेरणा भी देती है। आचार्य श्री जी की प्रतिक्रमण निष्ठा साधकों के लिए दोषों के शोधन से ही कर्मों के छेदन की दिव्य कला का दिग्दर्शन कराती है। आचार्य श्री जी का सामयिक साधना साधकों को दृश्यों की मायामयी छलना से बचा कर दृष्टा के अमर सौंदर्य की ओर प्रेरित करती है। आचार्य श्री जी की प्रभु एवं गुरु के साथ जिनशासन के प्रति विनम्रता भक्त हृदय श्रावक-श्राविकाओं एवं आत्म साधकों को द्रवीभूत कर नम्रता विनम्रता मृदुता ऋजुता जिसकी हरियाली है ऐसे धर्म के मनोरम उपवन में आत्मरथ होने को प्रेरित करती है। कुल मिला कर त्रिलोक पूज्य संत शिरोमणि गुरुदेव विद्यासागर की गरिमामयी तेजोमयी उपस्थिति से युक्त परिसर में पहुँचते ही भवि जीवों की सद प्रवृत्तियों का जागरण, सद्इच्छाओं का स्फुरण एवं व्रत नियम संयम का

पल्लवन होने लगता है। लाख परेशानियों बाधाओं को झेल कर भी जिसे आपके चरण स्पर्श करने का सौभाग्य मिल जाता है उसका आनंद ऐवरेस्ट कि ऊंचाईयों को छूने लगता है। आचार्य श्री जी का व्यक्तित्व हिमालय से भी अधिक ऊँचा होते हुए भी ऐसा चमत्कारी है कि आपकी कृपा छाँव में आने वाला बौना नहीं रहता।

समस्त नदियाँ जैसे सागर में मिलकर कृत कृत्य होती है। ऐसे ही मुक्ति के इच्छुक भव्य आत्मायें ज्ञान के सागर विद्यासागर में मिलकर कृत कृत्य होती है। मधुर जल से युक्त नदी तो सागर में मिलकर खारी हो जाती है पर राग द्वेष के खार से खारी जिंदगीयां गुरुदेव विद्यासागर में मिलकर मीठी मधुर हो जाती है। इसलिए आचार्य श्री जी की मधुर मुस्कान युक्त दिव्य दर्शन श्रावकों एवं साधकों को वरदान से कम नहीं है। आचार्य श्री जी के तेजोमय मुख मण्डल पर आत्म साधना का जो सौंदर्य चन्द्र अपनी सम्पूर्ण कलाओं के साथ शोभायमान होता है वह स्वरूप सौन्दर्य का प्रवाह देश और काल की सीमाओं से परे है।

यह न सम्मोहन है न जादू, क्योंकि दोनों की अपनी सीमा है पर गुरुदेव का आकर्षण चुम्बकीय और असीम है। शायद इसलिए गुरुदेव कि अमर मुस्कान को देखकर ऐसा लगता है जैसे किसी मानसरोवर से हजारों राजहंस एक साथ उड़ान भर रहे हो। कुल मिलाकर त्रिलोक पूज्य गुरुदेव विद्यासागर जी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रेरणा का दिव्य प्रकाश पुंज है। जो भवि जीवों को तप, त्याग, ब्रह्मचर्य आदि अणुव्रत महाव्रतों के साथ स्वदेशी, स्वभाषा, स्वावलम्बन के धरातल पर स्वकल्याण पूर्वक राष्ट्र अभ्युदय का हित चिंतन भी प्रदान करता है यही कारण है कि पूज्य गुरुदेव की प्रेरणा से उच्च शिक्षा प्राप्त उच्च पदों की नौकरिया छोड़ सैकड़ों युवा हथकरघा, गौसेवा के माध्यम से स्वावलम्बन को साकार कर रहे हैं।

अंत मैं यही कहूँगा-

हीरे-मोती मणिक पन्ना, नीलम और पुखराज।

सूरज चंदा तारगण का, है सीमित प्रकाश ।
रत्नत्रय अलोक अमर है, अजर अमर अहसास ।
त्रिलोक पूज्य गुरु विद्या सागर, हम सबके विश्वास ।।

❍❍❍

आचार्य श्री जी का वैराग्य पथ

ब्र. संजय कटंगी, म.प्र.

युग बीतते हैं, सृष्टियां बदलती हैं दृष्टियों में भी परिवर्तन आता है। की युगदृष्टा जन्म लेते हैं। अनेकों की सिर्फ स्मृतियाँ ही शेष रहती हैं लेकिन कुछ व्यक्ति अपनी अमर गाथाओं को चिर स्थायी बना देते हैं। उन्हीं महापुरुषों का जीवन स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाता है जो असंख्य जनमानस के जीवन को घर के तिमिर से निकाल कर उज्जवल प्रकाश से प्रकाशित कर देते हैं। ऐसे निरीह निर्लिप्त, निरपेक्ष, अनियत विहारी, महामनीषी प्रज्ञा संपन्न एवं स्वावलम्बी जीवन जीने वाले युग पुरुषों की श्रेणी में नाम आता है गुरुवर दिगम्बर जैनाचार्य श्री विद्यासागरजी मुनिराज का जिन्होंने स्वेच्छा से अपने जीवन को पूर्ण वीतरागमय बनाया। त्याग और तपस्या से स्वयं को श्रृंगारित किया। स्वयं के रूप को संयम के सांचे में ढाला।

जो रूप से अरूप की ओर बढ़ रहे हैं उनके रूप का क्या वर्णन करें ? शब्द से निःशब्द की ओर गतिमान है, उन्हें किन शब्दों से निबद्ध करें ? जो सीमाओं से परे असीम होने निकल पड़े हैं, उन्हें किस भाषा में सीमित करें ? जिनके चरण, बंध से अबंध की ओर प्रस्थान कर रहे हैं उन्हें किस परिभाषा के बंधन में ढाले ? भाषाएँ-परिभाषाएँ राग के साँचे में ढली है, और जिनकी यात्रा राग से वीतराग की ओर हो चुकी है, ऐसे परम वीतरागी यात्रिक को राग के साँचे में ढालकर किसी भाषा के बंधन में बांधा कैसे जा सकता है। वे परिभाषाओं के समस्त साँचे से ऊपर उठ चुके हैं । अब परिभाषाएं ही उनके

साँचे में ढलती है। भाषाएं ही उनका अनुगमन करती, अब शैलियाँ ही उनसे कला सीखती हैं। अब व्याख्याएँ ही उनसे अनुप्राणित होती है। अब पदावलियाँ ही उनसे धन्यता पाती हैं।

जिनकी वीतरागी देह का, प्रत्येक स्पंदन, स्वयं छलकती ही महाकाव्य की निरझरणी है, ऐसे महासाधक के वैराग्य पथ को या व्यास्ति करने में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ महाकवि भी पराजित हो जायेंगे। वैराग्य के संबंध में राजवार्तिक में कहा है-

''विरागस्य भावः कर्म वा वैराग्यम्।''

विराग का भाव या कर्म वैराग्य है अथवा
विषयों से विरक्त होना वैराग्य है।
और द्रव्य संग्रह में लिखा है -

''संसार देह भोगेसु विरत्त भावों या वैराग्यं।''

संसार, शरीर तथा भोगों से जो विरक्ति का भाव है, सो वैराग्य है।

उपर्युक्त आगमोक्त परिभाषाओं के संदर्भ में आचार्य प्रवर के वैराग्य को रेखांकित करने वाले प्रसंगों को कहकर मैं सुख-शांति का अनुभव करूँगा ।

संतत्व से सिद्धत्व तक के, अविराम यात्री, गतिशील साधक, आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज दिगम्बर रत्न रूपी आकाश में विचरण करने वाले एक आध्यात्मिक सूर्य है। ऐसे गुरुवर का सम्पूर्ण जीवन ही वैराग्य से भरा है । बचपन से ही आपकी रूचि धर्म में थी। प्रतिदिन मंदिर जाना, स्वाध्याय करना, मुनिराजों के दर्शन, वैयावृत्ति आदि करना, ध्यान लगाना आदि आपकी दैनिक क्रियाओं में शामिल था।

एक बार घर में तरबूज आया। श्रीमंति जी ने बच्चों को आवाज लगी। सारे बच्चे उपस्थित किन्तु विद्या कहीं दिखाी नहीं दिया। विद्या की प्रतीक्षा के बाद जब शांता-स्वर्णा उन्हें आस-पास देखने गी और खोजते-खोजते बावड़ी

के पास पहुँची तो दोनों वहाँ का दृश्य देखकर दंग रह गई उनके भाई बावड़ी के अंदर जल में ध्यानस्थ मुद्रा में बैठे हुए मिले।

विद्याधर जी ने चलचित्र में देखे। जब कभी आपको लगता यह फिल्म देखना चाहिए तो अपने मित्रों के साथ जाकर देखते। सिनेमा देखकर भी आपने कुछ अनुचित ग्रहण नहीं किया। मनोरंजन की जगह आत्मरंजन अर्थात् भोगों की भंगुरता का ही बोध ग्रहण किया। चलचित्र देखकर संसार की नश्वरता का भान होता था उन्हें।

किसने जाना था कि सबके बीच रहने वाला बिल्कुल अपना सा यह छोरा दूर-सुदूर, नितांत पराया होने जा रहा है। पराया होकर इतनी दूर पहुँचेगा कि द्रूतगामी धावक भी उसे पकड़ने में असमर्थ रहेंगे। इतने निर्मोही, इतना निष्पृही हो जायेगा कि एक भी अश्रु पुकार उसे छू ना पाएगी।

जन्मदायनी अम्बा भी तो नहीं जान पाी थी अपने पुत्र की मूक साधना को। अनजानी ही रहीं वे भी। दुग्धपान में भी वैराग्य की घुट्टी घोल-घोलकर पिलाने के उपरान्त भी कब जान पाया था उन्होंने कि भावी निर्ग्रन्थ सम्राट का लालन-पालन कर रही हैं। स्वयं ही विराग पान कराया और स्वयं ही भूल गी थी कि उनका यह लाड़ला उनके विराग पान को निरर्थक नहीं जाने देगा। माँ के दूध को अमृत बना कर बिखेरगा सारे विश्व में ।

विद्या का वैराग्य जैसे-जैसे बढ़ता जा रहा था। परिवार से उनकी रूचि वैसे-वैसे घटती जा रही थी। श्रीमंति को विद्याधर की यह बात असह्य थी। उनकी यह तटस्थता, यह चुप्पी मां का ह्रदय विदीर्ण करती थी। अपना ही जाया माँ से पराया होता जा रहा है। माँ का दर्द, माँ की पीड़ा, माँ का दुख, माँ के ह्रदय के जख्मों को भूलकर किसके दर्द, किसके दुःख, किसकी पीड़ा हरने जा रहा है। अपनों को पराया करके किस पर अपनत्व बरसाने जा रहा है। पर वे अपने उस अनबोले बेटे से कुछ कह न पाती। माँ की ममता सुबकती रहती। नेह तड़फता रहता। वात्सल्य सिसकता रहता। पर एक दिन

ममता की नदी में बाढ़ आ गी सारे बांध तोड़कर एक दिन पूछ बैठी अपने बेटे से - एक बात कहूँ बेटा ! विद्या ने कहा - अक्का ऐसा क्यों कह रही हैं आप ? आपको तो हजार प्रश्न पूछने का अधिकार है। वे अधिकार तूने रहने ही कहा दिये हैं ? अक्का क्या मुझसे कोी गलती होगी, क्या परेशानी है मुझसे ? भला मेरी परेशानी से तुझे क्या लेना देना, ऐसा कहते हुए श्रीमंती की आँखों से अविरल अश्रुधारा बह निकली। माँ तेरी आँखों में आसु नहीं, अक्का नहीं मैं तेरी आँखों में आशु नहीं देख सकता। विद्या ने आगे कहा - बोला माँ क्या चाहती है मुझसे ?तब श्रीमंती जी अपने आपको सम्हालते हुये मुश्किल से बोली - देख तू ज्यादा घूमा फिरा मत कर। घर जल्दी आ जाया कर। विद्या ने कहा - मेरे देर से घर आने पर आपको कोी परेशानी होती है क्या ? परेशानी वाली तो कोई बात ही नहीं हैं। बेटा पर तेरी यह निर्लोभता मुझे सह्य नहीं हैं। मुझ पर भरोसा नहीं है क्या ? नहीं -नहीं मुझे तुझ पर तो पूरा भरोसा है। तो फिर निश्चिंत रहो अक्का । आपका यह बेटा कभी भी कुछ भी गलत नहीं करेगा ? जो करेगा सबके लिए अच्छा ही करेगा। और अक्का जिस दिन आपका यह विश्वास उठ जाये उस दिन एक इशारा बस कर देना आपका बेटा घर की देहरी से बाहर तक नहीं जायेगा।

और कितनी दृढ़ता से वचन निभाया विद्याधर ने कि तब से अब तक कभी जिन घर की देहरी नहीं लांघी।

बेटा उड़कर आसमान छू लेगा, माँ धरती पर बिलखती रह जायेगी, कंपित हाथों से अश्रु भीगा आंचल हाथ में थामे। कोख का जाया ही पराया हो जायेगा और हुआ भी वही एक दिन वह प्यारा सा माँ का लाल सबकी आँखों का तारा बनने निकल पड़ा वैराग्य की राहों पर।

आज का युवा यौवन की दहलीज पर कदम रखते ही विषयों के प्रति आकर्षित होने लगता है। लेकिन विद्याधर ने युवा होने से पहले ही अपने जीवन को वैराग्य पथ की ओर मोड़ लिया और मुक्ति वधु से नाता जोड़ लिया।

विद्या और मारुति किसी विषय पर चर्चा कर रहे थे। चर्चा करते-करते अचानक विद्या किसी गहन चिंतन में खो गये। तब मारूति ने पूछा- विद्याधर कहाँ खो गए ? विद्या ने मारूति से कहा - क्या तू ब्याह रचायेगा ? सभी रचाते हैं तो मैं भी रचाऊँगा ब्याह। विद्या ! क्या तू ब्याह नहीं रचायेगा ? तब विद्याधर ने गंभीर होकर कहा - नहीं मैं ब्याह नहीं रचाऊँगा । मैं तो शिवरमणी से ही पाणिग्रहण करूँगा क्योंकि सच्चा आत्मिक सुख तो उसी में है।

प्रतिदिन मित्र मारूति और विद्या की इसी प्रकार वैराग्य-वर्धित वार्ताएँ होंती थी। जिस तरुणाी में व्यक्ति इंद्रियों के वशीभूत होकर अपनी देह को सुख प्रदान करने वाली भोग सामग्रियों को अपनाता है उस उम्र में प्रवेश करते ही विद्या ने गृह त्याग का कठोर संकल्प ले लिया। घर में रहकर भी लालटेन के मंद प्रकाश में देर रात तक मूलाचार आदि महान ग्रंथों का स्वाध्याय करने वाला वह किशोर आज स्वयं एक जीवंत मूलाचार बन चुका है।

विद्या का वैराग्य परवान चढ़ने लगा, घर उसे घर नहीं कारावास सा लगने लगा। आत्मा रूपी परिंदा सुख का स्थान मोक्ष महल में जाने के लिए उतावला हो उठा। जहाँ चाह वहाँ राह, निकल पड़े। एक दिन घर से किसी को बिना बताएं बिना कहे-आचार्यश्री देशभूषण जी के चरणों में रास्ते में दो दिन के उपवास हो गए,परन्तु वैरागी को उसकी चिंता कब थी उसे तो लक्ष्य प्राप्ति की लगन थी। आचार्यश्री देशभूषण जी ने उन्हें आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया। संघ की वैयावृत्ति के साथ-साथ प्रारंभ हो गई। आपकी साधना। आचार्य संघ विहार करता हुआ। सन् १९६७ में इसी श्रवण बेलगोल में महामस्तकाभिषेक के लिए आया और इसी पावन पुनीत अतिशयकारी भगवान बाहुबली स्वामी जी के श्री चरणों में विद्याधर जी ने सात प्रतिमा व्रत ग्रहण किये।

अभिषेक के पश्चात् संघ स्तवनिधी पहुँचा। वहाँ पर आपके बड़े भी

महावीर भैया आपसे मिलने आए। महावीर ने आपको शुभ वस्त्रों से आव्रत ब्रह्मचारी वेश में देखा तो उनके मुख से निकला - विद्या ! और आँखें छलकने लगी। आप का हाथ अपने हाथ में लेकर बोले - विद्या चलो अपने घर लौट चलो। तब विद्या ने कहा - अपने घर ही तो लौट रहा हूँ भैया ! विद्या ? हाँ भैया, पर घर में कब तक रहा जा सकता है। पर घर ? सुनकर रो पड़ा महावीर का हृदय। इतनी जल्दी हम सब तेरे लिए पराए हो गए। पर हो गये नहीं ! पर थे मुझे यह समझने में वक्त लगा। और अब जब समझ ही गया हूँ तो निज घर में ही रहने दो ना भैया। महावीर पूछते हैं- विद्या क्या तुझे हमारी जरा भी याद नहीं आती। विद्याधर जी ने कहा - मैंने राग पद का त्याग कर वैराग्य पथ पर चलने का दृढ़ संकल्प लिया है। अब आप तो क्या दुनिया की कोी भी शक्ति मुझे मेरी आत्म भक्ति को प्रकट करने से नहीं रोक सकती। और आपका यह विद्या अब कभी आपके साथ वापस नहीं जायेगा। मैं अपने घर की ओर लौट रहा हूँ भैया। और आप भी अपने घर की ओर लौटें।

जब विद्याधर को पता चला आचार्य संघ का वर्षायोग इसी क्षेत्र में होने वाला है तो विद्या ने सोचा सदलगा समीप ही है घर के लोग आते रहेंगे, मोह बढ़ेगा आपने सोचा मैं अपनी वैराग्य साधना में राग का किंचित् मात्र भी प्रवेश नहीं होने दूँगा। और छोड़ दिया स्तवनिधी। प्रस्थान कर दिया। राजस्थान की ओर आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज के पास। जब विद्याधर जी प्रथम बार आचार्य श्री ज्ञानसागर जी के पास पहुँचे तो आचार्य ज्ञानसागर जी ने कहा - कौन हो तुम ? तो आपने कहा - विद्याधर। गुरु ने पुनः कहा किसलिए आए हो ? आपने कहा - विद्यार्जन के लिए। आचार्य ज्ञानसागर जी ने कहा - विद्याधर नाम है विद्या अर्जन कर उड़ जाओगे विद्याधरों की तरह। आपके अन्तःकरण में गुरु के यह वाक्य अनुगूंजित होने लगा और आपने गुरु को विश्वास दिलाते हुए कहा - आज से आजीवन वाहन का त्याग। जब चलूँगा, जहाँ चलूंगा आपकी आज्ञा से आपके पीछे-पीछे पैदल

चलूँगा। गुरुवर आवाक् से विद्याधर को देखते रह गये। छोटी-सी बात पर इतना बड़ा त्याग। त्याग को देखकर गुरु ने बना लिया विद्याधर को अपना शिष्य। ब्रह्मचारी अवस्था से उनकी साधना दूज के चांद की तरह वृद्धि को प्राप्त होती गई। दो माह पश्चात् ही लवण का आजीवन त्याग कर दिया। लवणत्य के एक माह बाद ही मधुर रस का भी जीवन पर्यन्त के लिए त्याग कर दिया। मुनि अवस्था में फलों का त्याग, मेवों का त्याग, आजीवन चटाई प्रयोग का त्याग, जीव पर्यन्त के लिए एक चौके का वृत्तिपरिसंख्यान, आहार में हरी सब्जी का त्याग।

ब्रह्मचारी विद्याधर को बचपन से ही निर्ग्रन्थ पद की अभिलाषा थी। मुनि मुद्रा उन्हें बहुत भाती। फलस्वरूप उन्होंने गुरु के समक्ष निर्ग्रन्थ पद प्राप्ति की भावना रखी।

श्री ज्ञानगुरु ने विद्याधर को मुनि होने का शुभाशीष प्रदान किया। एक बहुत ही भव्य समारोह में विद्याधर जी की मुनि दीक्षा प्रारंभ हुई। घने चिक्कण घुंघराले केशों को उनकी मृदुल अंगुलियां ऐसे उखाड़-उखाड़ फेंक रही थी जैसे कोी कृषक तृण को उखाड़ फेंकता है। मस्तिष्क पर रक्त बूँदे छलकने लगी, सुकोमल अंगुलियां भी केश घर्षण से रक्त रंजित हागी। पर भेदविज्ञान में निष्णात तरुण साधक की शांत प्रशम मुद्रा से उनका अंतस् आनंद निर्झरित हो रहा था। राजस्थान की भीषण गर्मी, ज्येष्ठ की चिलचिलाती धूप देह को झुलसाती, प्रचण्ड लहरों के मध्य ज्यों ही विद्याधर जी ने वस्त्राभूषणों का परित्याग किया, त्यों ही एक क्षण को सब कुछ थम गया हो, सूर्य की गति, सरिता का प्रवाह, पवन का वेग। किन्तु तीव्र गति से गतिशील हो मुनिश्री विद्यासागरजी का वैराग्य-पथ। जो पिछले ५० वर्षों से अविरल-अविरल बढ़ रहा है। अपनी मंजिल की ओर।

आचार्यश्री के व्यक्तित्व को कुछ पन्नों में समेटना समुद्र के जल को चुल्लू में समेटने जैसा है। जिनकी संयम की ऊँचाी के समक्ष आकाश स्वयं

नतमाथ है। जिनकी साधना की गहराई के सम्मुख सागर स्वयं करबद्ध खड़ा है। जिनकी कठोर तपश्चर्या के सामने तपस्या स्वयं गर्व से शीश झुकाती है,जिनके व्यक्तित्व की तुलना में इस धारित्री की समस्त उपमाएं बौनी हैं, जिनके निर्दोष चारित्र के व्याख्यान में उद्भट से उद्भट विद्वान पराजित हो गए। जिनके गुणानुवाद हेतु विश्व के सम्पूर्ण शब्दकोश अपनी असमर्थता पर लज्जित है। ऐसे महा गुरु की महासाधना को सादर चरण वंदन..।

○○○

भाषा समिति साधक आचार्य श्री विद्यासागर जी

ब्र. विक्रम जैन, जबलपुर

वे शब्दों से परे हैं, अर्थ से भी परे हैं उन्हें शब्दों के बंधन में बांधना उनके सीमातीत विस्तार को समटने जैसा है जो असंभव है।

वैसे ये करने का प्रयास अनेकों ने किया, कर रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे, करना भी चाहिए।

क्योंकि वे समंदर हैं। तो हम भी उसी की बूँद है, वे आकाश हैं तो हममें भी उनका अंश है, वे हवा हैं तो हमसे अछूते नहीं है, वे निर्मल जल हैं तो उनसे ही हमारा जीवन है, वे पृथ्वी है तो हम उनके पुत्र हैं।

तात्पर्य है कि उनसे हमार बहुत गहरा सर्वांग संबंध है इसलिये उनके बारे में बोलने का, लिखने का, किसी को सुनाने तथा सुनने का अधिकार है हमें। हाँ अधिकार ही तो है, क्या भक्त को भगवान की भक्ति करने का कर्त्तव्य मात्र है ? नहीं वे हमसे हैं, हम उनमें हैं अतः हमें उनकी भक्ति, स्तुति, पूजन और भजन का अधिकार भी है।

जी हाँ ! बात उन महामना आचार्य श्री जी के बारे में हो रही है जिनका ''आचार्य श्री'' संबोधन सार्थक है क्योंकि वे आचार्य के ३६ मूलगुणों का निर्दोष, निरंतर पालन करते हैं। जब भी कोई ''आचार्य श्री'' इस शब्द का संबोधन करता है तो सुनने वाले को समझ में आ जाता है कि बात आचार्य

श्री विद्यासागर जी महाराज के संबंध में की जा रही है। वे साधु के २८ मूलगुणों के श्रेष्ठ परिपालक हैं, और ''**आचार्य शिरोमणि**'' उनके जीवन में चिंतन में समिति का क्या महत्व है यह समझने का प्रयास करेंगे, आचार्य श्री कहते हैं - सम्यक प्रवृत्ति या सम्यक क्रिया को समिति कहते हैं। समिति- सम अर्थात् सम्यक और इति अर्थात गति या प्रवृत्ति। समिति पाँच हैं - ईर्या, भाषा, एषणा, आदान, निक्षेपण और प्रतिष्ठापन। हम भाषा समिति के बारे में बात कर रहे हैं, भाषा समिति का अर्थ है अपनी भाषा में सम्यक् प्रवृत्ति होना अर्थात् चतुर पुरुष हँसी के वचन, कठोर वचन, चुगली के वचन, दूसरे की निंदा के वचन और अपनी प्रशंसा के वचनों को तथा विकथाओं को छोड़कर केवल धर्ममार्ग की प्रवृत्ति करने के लिए तथा अपना और दूसरों का हित करने के लिए सारभूत, परिमित और धर्म से अविरोधी जो वचन कहते हैं, इसको भाषा समिति कहते हैं।''

आचार्य श्री कहते हैं भाषा समिति की परिभाषा अद्वितीय है अर्थात् व्यभिचारी से व्यभिचारी, पापी से पापी कहना भी गलत है निंद्य भाषा से अहिंसा को धक्का लगता है।

भाषा समिति पूर्वक ही कर्मों के आश्रय को रोका जा सकता है, जो कि जिनधर्म का सार है, वचनों के कारण ही साधर्मी, विसंवाद, संघ विभाजन आदि अनेक विषमताएं उत्पन्न होती हैं वचनों का प्रयोग बहुत तोल कर करना चाहिए अर्थात् जब भी किसी से बात की जाए तो हमारी भाषा मधुर हो किसी को ठेस पहुँचाने वाली न हो।

किसी ने कहा भी - ''कुदरत को नापसंद है सख्ती जुबान में, इसीलिए नहीं दी हड्डी जबान में'' सज्जनों के शब्द, गंगा की कलकल ध्वनि के समान होते हैं और दुर्जनों के शब्द नाली के पानी की तरह।

आचार्य श्री जी के पास एक बार देश संबंधी चर्चा चल रही थी। किसी प्रसंग पर आचार्य श्री ने कहा सोने की चिड़िया..... नामक पुस्तक पढ़ लेना चाहिए। आचार्य श्री के मुख से पुस्तक का अधूरा नाम सुनकर इसे किसी

व्यक्ति ने पूरा किया और कहा - ''और लुटेरे अंग्रेज'' उन व्यक्ति को लगा कि शायद आचार्य श्री पुस्तक का पूरा नाम भूल गये हैं। चर्चा चलती रही, दूसरी बार भी फिर पुस्तक का नाम आया तो आचार्य श्री ने कहा - ''सोने की चिड़िया.....'' तो फिर किसी ने विनम्र भाव से पुस्तक का नाम पूरा कर दिया- ''और लुटेरे अंग्रेज'' सामान्य से फिर चर्चा चलती रही। फिर पुनः कोई अवसर आया तो आचार्य श्री ने पुस्तक का नाम फिर उतना ही लिया, और जब किसी ने उसे पूरा करने की कोशिश की तो आचार्य श्री ने उन्हें समझाने के भाव से कहा - ''अरे ! जब सोने की चिड़िया बोलने से काम चल रहा है तो फिर आगे के अपशब्दों का उच्चारण क्यों करना।'' ऐसे हैं हमारे आचार्य श्री जी की अर्थात् जो पुस्तक के नाम में ही क्यों न हो अपशब्दों के उच्चारण से सदा ही बचते हैं स्वयं की प्रशंसा और अन्यों की निंदा करने वाली मानी भाषा से दूर रहकर ''भाषा समिति'' का पालन करने वाले आचार्य श्री के आचरण के भगवान हैं आचरण के आदर्श हैं।

आचार्य श्री कहते हैं - लौकिक क्षेत्र में हम अच्छे से अच्छी वस्तु का चयन करते हैं तो बोलने में भी अच्छे-अच्छे शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। प्रासुक शब्द बोलें। प्रासुक वचनों का प्रयोग करें। जैसे प्रासुक भोजन लेते हैं, उसी तरह जिव्हा को प्रासुक रखें, ताकि वह अच्छे-अच्छे शब्दों का उच्चारण करे। प्रासुक वचन दिव्य ध्वनि के माध्यम से समवसरण के चहुँ और फैलते हैं। तो प्राणी जातिजगत बैर भी भूल जाते हैं।'' आप लोगों ने भी सुना होगा कि जब प्रवचन में आचार्य श्री जी बारिषेण मुनिराज वाली कथा सुनाते हैं तो उसमें पुष्प ढाल की कानी स्त्री को कानी संबोधित न करते हुए एकाक्षी उच्चारित करते हैं।

असंयमियों का नाम नहीं लेते, और ब्रह्मचारियों का नाम भी नहीं लेते वह उन्हें उनके गांव, नगर आदि के नाम से बुलाते हैं।

एक बार डोंगरगढ़ में प्रतिभास्थली की बहनों से चर्चा के दौरान आचार्य श्री ने कहा - ''आज अंग्रेजी में शिक्षा होने से बच्चे घरों में अंग्रेजी में ही बात

करते हैं, उनसे हिन्दी की कोई संख्या बतायी जाये तो वे नहीं समझ पाते फिर उन्हें वही संख्या अंग्रेजी में बतानी पड़ती है तब समझ पाते हैं।''

तभी एक शिक्षिका ब्र. बहन बोली - ''आचार्य श्री जी बच्चों को मातृभाषा का महत्व समझ में आ रहा है। बच्चे कहते हैं - हिन्दी हमारी माता है, और अंग्रेजी हमारी नौकरानी है। तब भाषा समिति साधक आचार्य श्री बोले - ''नहीं ऐसा नहीं कहते। किन्तु संस्कृत हमारी माँ है, हिन्दी मौसी है और अंग्रेजी धाय मां है।''

धन्य है गुरुवर की भाषा की समुज्वलता जो हर समय अपनी भाषा को उज्जवल और उन्नत बनाये रखते हैं।

भाषा समिति साधक ऐसे महान गुरु को पाकर हमारा जीवन धन्य हो गया। हम भी उन्हीं के समान अपनी भाषा को सुमधुर बना पायें, ऐसी भावना है। भाषा समिति साधक, भाषा समिति पालक आचार्य गुरुवर श्री १०८ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के चरणों में अनन्तों नमन।

भाषा समिति
पालक साधक, है
विद्यासागर
संयम ज्ञान
पे चढ़े विद्याधर बने
विद्यासागर

❍❍❍

आचार्य श्री विद्यासागर जी एवं उनका व्यापक दृष्टिकोण

ब्र. धीरज भैया, राहतगढ़

''**मुनिनां अलौकिकी वृत्ति**'' अर्थात् मुनियों की अलौकिक वृत्ति स्वभाव होता है इसी युक्ति के अनुसार आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज की वृत्ति है, यह युक्ति उनकी जीवन चर्या को देखकर/पाकर चरितार्थ हो उठती है। मुनिराज

मौन रहते हुए भी बहुत कुछ उपदेश दे देते हैं। उनकी दिगम्बर मुद्रा देखकर जगत की नश्वरता का भान हो जाता है। आचार्यश्री का जीवन तो उस इत्र की शीशी के समान है जो खाली भी हो तो उससे सुगन्ध मिलती रहती है। आचार्यश्री जी की मुद्रा देखकर साक्षात् वीतरागता के दर्शन हो जाते हैं। उनकी चर्या में मूलाचार का स्वाध्याय एवं उनकी ध्यान मुद्रा से समयसार के दर्शन हो जाते हैं। गुरुओं की महिमा अचिन्त्य हुआ करती है।

जिनकी दृष्टि में हमेशा तत्वज्ञान रहता है वह जिस पदार्थ को भी देखते है या उसे ध्यान का विषय बनाते हैं उसमें से तथ्य परख बात निकाल लेते हैं ऐसे अनगिनत प्रसंग है जिनमें आचार्य भगवन्त ने मुनिराज, संयमी एवं विद्वान श्रावकों को प्रसंग के अनुसार संसार से वैराग्य उत्पन्न कराने वाली शिक्षाएं प्रदान की। उन्हीं में से कुछ प्रसंग एवं शिक्षाएं इस लेख के माध्यम से उल्लेख कर रहा हूँ। एक पण्डित जी आचार्यश्री के पास आये और उन्होंने आचार्यश्री से कहा कि, आपकी वाणी सुनकर जो मुझे आगमिक शंकाएँ थी उनका स्थायी समाधान प्राप्त हो गया है मुझे लगा जैसे अरिहन्त प्रभु मिल गये हो, मेरा भ्रम टूट गया आज तक मैं गलत धारणाओं की कंटीली झाड़ियों में उलझा रहा आप जैसे पथ प्रदर्शक ने सत्य के उपवन में प्रवेश करा दिया। आज आपको पाकर मेरा जीवन सफल हो गया। मेरी चारित्र के प्रति आस्था दृढ़ हो गी। अब आप आदेश दे दीजिए मैं क्या करूँ ? तब आचार्य महाराज ने कहा - **अभी तक आपने सम्यक्त्व का डंका बजाया अब सम्यक्त्व चारित्र का डंका बजाओ।**

एक प्रसंग मुनिश्री कुन्थुसागर जी महाराज के जीवन से संबंधित है जो उन्हीं के शब्दों में लिख रहा हूँ। गर्मी का समय था, उन दिनों में मेरी शारीरिक अस्वस्थता बनी रहती थी। मैं आचार्य महाराज के पास गया और मैंने अपनी समस्या निवेदित करते हुए कहा - आचार्य श्री जी पेट में दर्द(जलन) हो रही है। आचार्य महाराज ने कहा - गर्मी बहुत पड़ रही है। गर्मी के कारण ऐसा होता है और तुम्हारा कल अंतराय हो गया था। इसलिए पानी की कमी हो गी होगी सो पेट में जलन हो रही है। कुछ रुककर गंभीर स्वर में बोले कि- क्या करे यह शरीर हमेशा सुविधा ही चाहता है लेकिन इस मोक्षमार्ग में शरीर की और मन की

मनमानी नहीं चल सकती। **''बहिर्दुःखेषु अचेतनः''** अर्थात् बाहरी दुःख के प्रति अचेतन हो जाओ उसका संवेदन नहीं करो, सब ठीक हो जायेगा।

आचार्यश्री के एक वाक्य में पूरा सार भरा हुआ है; हमें यह श्रद्धान कर लेना चाहिए कि-मोक्षमार्ग में मन और शरीर को सुविधा नहीं देनी है, बल्कि, मन और इन्द्रियों को नियंत्रण में रखकर समता भाव बनाये रखना है। वे हमेशा चाहे अनुकूल-प्रतिकूल कैसी भी परिस्थिति रही आवे, मन में समता का भाव बनाये रखते हैं और चेहरे पर कभी प्रतिकार जैसा भाव दिखाी नहीं देता।

ऐसे ही उनके जीवन की प्रत्येक क्रिया में या उनसे किसी भी विषय पर चर्चा करें तो उसमें गुरुवर कहीं न कहीं तो तत्त्व ही परोसते है। एक बार कि बात है किसी सज्जन ने कहा कि हे गुरुवर, आपको गौशाला खुलवाने की प्रेरणा नहीं देना चाहिए उसमें हिंसा होती है। आपको तो आत्म ध्यान की प्रेरणा एवं ध्यान करना चाहिए। यह बात सुनकर आचार्य श्रीजी ने कहा-गौशाला में हिंसा नहीं साक्षात् दया पलती है, करुणा के दर्शन होते हैं, गौशाला अहिंसा का आयतन है। सम्यग्दर्शन में अनुकम्पा गुण कहा है वह गौशाला में पशुओं के संरक्षण के प्रयोग में आता है। यह सक्रिय सम्यग्दर्शन माना जाता है। बच्चों को पालना मोह है किन्तु पशुओं को पालना दया अनुकम्पा है। ऐसे विशाल सोच के साथ अपने जीवन को आत्म तत्त्व में एवं परमार्थ तत्व में लगाये रहते हैं। कुछ बिन्दुओं की ओर वाक्य रूप में और बता रहा हूँ आप ध्यान दें-

■ ध्वजारोहण होते देखकर आचार्यश्री जी ने कहा - यह पताका विभाव से स्वभाव में आने की स्वतंत्रता का प्रतीक है।

■ पर निमित्त की ओर दृष्टि रखने वाला उपादान से कोी लाभ नहीं ले पाता मात्र आर्त्त रौद्र ध्यान ही उसके हाथ लगता है।

■ कोहरे को देखकर आचार्यश्री जी ने कहा- जैसे कोहरा छाया हो, तो पास की वस्तु भी नजर नहीं आती वैसे ही आत्मा पर मोह का कोहरा छाया हो तो आत्मा के गुण नजर नहीं आते।

■ ओ ego you can go, from my life.

■ आज सभी को धर्म की परिभाषा तो पता है पर जीवन में उस धर्म की

चर्या नहीं है।

■ आज मानी प्राणी का मान पानी-पानी नहीं हो रहा है, इसलिए पानी का स्तर नीचे हो रहा है।

■ किसी भी मत का खण्डन नहीं बल्कि अपने मत का मण्डन करना है।

■ जो करे देश का सुधार वही ही है सच्ची सरकार।

■ मंत्र एक कुंजी है जिससे चेतना के खजाने खुलते हैं ।

■ बन्ध क़ो ही काटना है तो संबध क्यों ?

■ संघर्षमय जीवन का अन्त नियम से हर समय होता है।

■ गुरु के वचन से भी अधिक रहस्य, गुरु की आँखों में होता है।

■ कहने की प्रकृति छोड़ों, करने का अभ्यास करो।

■ दिमाग को लाइब्रेरी मत बनाओ।

■ गुरु की बात बरसो की नहीं परसों की लगना चाहिए।

■ आलोचन से लोचन खुलते सो सुस्वागत है।

■ तर्क-वितर्क ही नहीं, सतर्क होने की आवश्यकता है।

■ बच्चों को गमले का पौधा नहीं जमीन का पौधा बनाये।

■ प्रकृति की रक्षा करने पर ही संस्कृति की रक्षा संभव है।

■ मृत्यु जीवन का अन्त नहीं हैं, वह तो मात्र ड्रेस व एड्रेस बदलना है।

■ उत्साह का जल, आलस्य के मल को बहाने में सक्षम है।

■ आत्मा का ज्ञान हलुआ जैसा है उसे हऊआ मत बनाओ।

■ गुरु का विस्मरण ही, शिष्य का मरण है।

■ बदला हमेशा तंग दिमाग की तुच्छ खुशी होती है।

■ औरों की पीड़ा अपनी करुणा की परीक्षा लेती है।

■ अपने उपयोग के रेडियों में ज्ञान चेतना का ही स्टेशन लगाओ।

■ जीवन में आर्डर सो वार्डर की तरह रहा करो।

इस तरह से अनेकों प्रकार का चिंतन, दार्शनिक दृष्टिकोण एवं जीवन के हर

पहलुओ का मर्मर्स्पशी ज्ञान गुरुजी के पास निरन्तर प्राप्त होता रहता है। ऐसी विशाल सोच को रख कर गुरुजी सामाजिक,पारिवारिक राष्ट्रीय एवं जन-जन के कल्याण में सुख शांति समृद्धि के विकास में, भी आत्म-चिंतन में भी निरंतर संलग्न रहते हैं। ऐसे गुरुवर के चरणों में रहकर हम सभी अपने आप को धन्य मानते हैं। और शत् शत् वंदन गुरुवर के चरणों में करते हैं।

नमोस्तु गुरुवर !

OOO

श्रेष्ठ संघ नायक आचार्य श्री विद्यासागर जी

पं. सुरेश जैन मारोरा, इन्दौर

पंचम युग के ऋषिराज संत शिरोमणि,महाकाव्य मूकमाटी के रचयिता एवं अध्यात्म सरोवर के राजहंस आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज श्रमण साधना के शिखर पुरूष हैं, उनकी ध्यान साधनाएँ समयसार के मर्म को जीती है। आप इस युग के ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ संघनायक हैं।

विश्व को भारत ने ही गुरू शिष्य परम्परा से अवगत कराया है। चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी दक्षिण की परम्परा में दीक्षित वयोवृद्ध, तपोवृद्ध बाल ब्रम्हचारी आचार्य श्री ज्ञान सागर जी से दीक्षित संत शिरोमणि श्री विद्यासागरजी के शिष्य समुदाय में ४१६ के आस-पास पिच्छीधारी शिष्य जिसमें सर्वाधिक मध्य प्रदेश के सागर जिले से हैं। १००० के आस-पास बह्मचारी भैया-बहनें प्रतिभा स्थली की बहनों के साथ-साथ हजारों श्रावक जिन्होंने अणुव्रत धारणकर सप्तव्यसन का त्याग कर प्रतिमाएँ ग्रहण की है। अहिंसा धर्म का यह कार्य अबाध रूप से वृद्धिंगत हो रहा है। आचार्य श्री की साधना, तपस्या अद्वितीय है। मूलाचार के अनुसार ३-४ घंटे की अल्प निद्रा, भीषण गर्मी-सर्दी में ना कोई कपड़ा कम्बल, चटाई, रजाई, पंखा, कूलर, सीमित आहार लेते हैं। आहार में नमक, शक्कर, गुड, साग-सब्जी, फल, सूखे मेवें आदि का त्याग है। उसी लकड़ी के तखत पर सुबह से शाम हो जाती है।

आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव के समयसार, बट्टकेर देव के मूलाचार व समंतभद्र की हुंकार की त्रिवेणी के साक्षात् दर्शन होते हैं। कर्नाटक में जन्में बाल विद्याधर ने १९६८ से आज तक ५० वर्षो के स्वर्णिम, सुदीर्घ, संयम पर्याय में अपनी वाणी व त्याग तपस्या से लाखों का, अनंतो जीवधारी प्राणियों को आदर्श मार्ग पर लगाकर अभयदान दिया है। सूर्य जैसे प्रखर तेजस्वी और चांद से भी अधिक सौम्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज अध्यात्म जगत के इतिहास पृष्ठों के एक जैसे दुर्लभ व्यक्तित्व हैं। जिनकी गाथा भारतीय चेतना का अभिनव उन्मेष है। आचार्यों की वर्णमाला से आलौकित एक महालेख है, जैनागम की समर्थ परम्परा के समर्थतम संवाहकों में से एक जिनकी चेतना में अध्यात्मसार प्रशिक्षण है, जो इस देह में रहकर विदेह की साधना की कला की ज्ञाता ही नहीं, मर्मज्ञ के रूप में आविर्भूत है।

आचार्य महाराज धीर-वीर-गंभीर तो है सत्य की भी तासीर है। समता की मंदाकिनी में गोते लगाते सरलता व सभ्यता के असीमित बिम्ब विस्तीर्ण करते हैं, उनका तेजोमय जीवन समता की हर सीमा को समाहित करता है और सहनशीलता की सारी नदियों को अपने साधनाशील जीवन के गंभीर रत्नाकर में समाहित कर लेता है। आचार्य श्री ने श्रमण संस्कृति के प्रशस्त इतिहास में एक स्वर्णिम अध्याय जोड़ दिया है। श्रमण संत के स्थिर योग को हमेशा रेखांकित करते हैं। श्रावकजन उनके आभावलय को देखकर असीम शांति, अद्भुत सुख और आलौकिक तृप्ति की अनुभूति करते हैं।

श्रमण साधना के अविराम पथिक आचार्य श्री ने सल्लेखना की सहज साधना कला सिखाई है। सिर्फ साधु-समुदाय को ही नहीं श्रावक-श्राविकाओं को भी अनासक्त निस्प्रहः भाव से आत्मा के परिणामों को शुभत्व के साथ जोड़ते हुए आत्मा के स्वरूप चिन्तन-मनन करते हुए निर्विकार भाव से संसार से विदा लेने की कला सिखाई है। ८० के आस-पास मोक्ष मार्गियों की (जिसमें ५० श्रावक एवं ३० अपने शिष्य श्रमण) सल्लेखना महोत्सव के माध्यम से समाधि कराई। जैन जगत के मूर्धन्य विद्वान प्रो. डॉ. दरबारीलाल कोठिया, डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य, पं. जगमोहनलाल शास्त्री सहित अनेकों श्रावक-

श्राविकाओं की सल्लेखना सामान्यजनों को साधना के दृश्य से परिचित कराकर, अंतिम सांसों के सदुपयोग से आत्मा की शुभता की प्राप्ति हेतु प्रेरणा दे रही है।

आचार्य श्री ने अनेक ग्रामों , नगरों महानगरों की पदयात्रा विहार करते हुए राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल आदि प्रान्तों में लगभग ५०,००० किलोमीटर से अधिक उबड़-खाबड़, कंकरीले-पथरीले मार्ग के श्रावकों को अपनी अमृतमयी वाणी से संबोधित कर कल्याणपथ पर लगाया है। पदयात्राएँ करते हुए अनेक मांगलिक संस्थाओं, विद्या केन्द्रों के लिए प्रेरणा व प्रोत्साहन का संचार किया है। वर्ष १९६८ से २०१७ तक ५० वर्षायोग, जिनमें १९६८ से १९७२ तक पॉच आचार्य श्री ज्ञानसागर जी के साथ राजस्थान प्रांत में १९७३ से १९७५ तक तीन आचार्य अवस्था में क्षुल्लक जी के साथ (२ राजस्थान, १ उत्तर प्रदेश) १९७६ से २०१७ तक आचार्य अवस्था में ससंघ (मध्यप्रदेश ३३, बिहार १. महाराष्ट्र ४, गुजरात में १, छत्तीसगढ़ में ३)

पंचकल्याणक महोत्सव- वर्ष १९७६ बुन्देलखण्ड प्रथम आगमन पर १९७७ में सिद्धक्षेत्र द्रोणागिरी में प्रथम पंच कल्याणक का आह्वान करते हुए मध्य प्रदेश में ५०, महाराष्ट्र३, छत्तीसगढ़ में ४, गुजरात १, राजस्थान में १ लगभग ६० पंचकल्याणक सम्पन्न कराते हुए मध्य प्रदेश व अन्य प्रान्तों में ३५० से अधिक पाठशालाएँ जिनमें २५,००० विद्यार्थियों को धार्मिक ज्ञान पाने हेतु आशीष प्राप्त है।

OOO

आचार्यश्री विद्यासागरजी और उनका वैरागी परिवार

ब्र. विमल भैया, इन्दौर

जैसे सूर्योदय होने के पूर्व लालिमा आ जाती है, वैसे ही महापुरुषों के आने से पूर्व शुभ संकेत हो जाया करते हैं , क्योंकि ''अचिन्त्यों हि महात्मनां प्रभावः'' अर्थात् महात्माओं का प्रभाव अचिन्त्य होताहै। इसी तरह संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराजका जीव जब गर्भ में आया तब उनके माता पिता को

भी स्वप्न के द्वारा शुभ संकेत हुये। माँ श्रीमंती जी ने एक के बाद एक तीन स्वप्न देखे। १. चक्र घूमता हुआ उनकी ओर आ रहा और उनके कक्ष में रुक गया। २. चक्र रूका ही था कि बादलों से दो तीर्थंकर भगवान चले आ रहे उनके भवन की ओर। ३. उनके पीछे दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराज चले आ रहे हैं जिन्हें मा श्रीमंती जी ने नवधा भक्ति पूर्वक पड़गाहन कर आहार दिया।

यह तीनों स्वप्न श्रीमंती जी ने मल्लप्पा जी को सुनाये वे मन ही मन झमने लगे और मल्लप्पा जी ने भी एक स्वप्न देखा था मैं आम के वृक्ष के नीचे खड़ा था आर एक सिंह झाड़ियों से दहाड़ता हुआ आया और मुख में प्रवेश कर गया। उन स्वप्नों को देखकर श्रीमंती जी अपने आप में खो गई। मल्लप्पा जी सोचने लगे कैसे -कैसे स्वप्न आते हैं , कहकर टालर दिया, पर जब बालक विद्याधर को श्रवण आचार्य श्री विद्यासागर के रूप में पाया तो स्पष्ट हो गया कि वो स्वप्न तो दिव्य भव्य पुरूष रूपी बीज के वपन की सूचनायें थी।

माता द्वारा देखे तीन स्वप्न का फल सूचित कर रहा था कि वह रत्नत्रय धारी होगा, चक्र देखने से धर्म का प्रवर्तन करने वाला होगा, तीर्थंकर की मुद्रा देखने से तीर्थंकर के मार्ग का अनुगामी होगा, चारण ऋद्धिधारी मुनि के आगमन को देखने से विशुद्ध चर्या का पालने वाला होगा, पिता के मुख में सिंह प्रवेश करने से उनके परिवार में आने वाला जीव आध्यात्मिक सिंह के रूप में सृष्टि पर विचरण करने वाला होगा।

इस तरह बालक के गर्भ में आ जाने के पूर्व माता पिता ने शुभ सूचक स्वप्न देखें। विद्यासागर जी जैसे जीव को गर्भ में धारण कर माँ की कोख मंदिर बन गई। अष्टगे परिवार की जीवित संतानों की अपेक्षा पहली संतान (महावीर) के जन्म के समय स्थिति बिगड़ गई थी उन्हें संभालना मुश्किल हो गया था। इससे निर्णय लिया कि इस बारसंतान का जन्म अस्पताल में ही करायेंगे। दूध का जला छाछ फूंक फूंक कर पीता है। अतः दूसरी संतान का जन्म सदलगा के पास चिक्कोड़ी ग्राम स्थित शासकीय चिकित्सालय में हुआ यह द्वितीय होकर भी अद्वितीय था। नर्स ने नवजात शिशु का वजन करा तो ७ पौंड का पाया तो

नर्स बोली यह निरोगता की निशानी है। अधिकारी बोला, कितना सुंदर बालक है किसे पता था कि जीवन पर्यन्त स्वस्थ अर्थात् अपने में स्थित रहेगा।

सच्चा धर्मी प्रभु पूजन से किसी प्रकार की आकांक्षा नहीं रखता पर जब संकट आता है तो प्रभु और गुरु को ही याद करता है। ऐसा ही श्रीमंती जी के साथ हुआ। उनके बड़े पुत्र महावीर दो वर्ष के होंगे तब बीमार हो गयें बचने की आशा नहीं थी ऐसे में श्रीमंती जी समाधिस्थल पर प्रार्थना करने गई प्रत्येक पांच अमावस्या को पांच नारियल चढ़ायेगी व शांति विधान व गरीबों को भोजन करायेगी उनकी प्रार्थना पूर्ण हुई। इसी दरम्यान श्रीमंती जी गर्भ में दूसरी संतान आ गई माता पिता ने संतान का नाम इन भट्टारक मुनि विद्यासागर की स्मृति में विद्याधर रखा।

विद्याधर के अपरनाम – विद्याधर, पीलू, गिनी, तोता और मरी जैसा चढ़ाया वैसा पाया। जिसके प्रति हमारी जितनी श्रद्धा होती है उसके प्रति श्रद्धा भक्ति के साथ समर्पण में अर्पण करने में कोई सीमा नहीं होती है। ऐसे ही संचित पुण्य के द्वारा क्या प्राप्त नहीं होता मल्लप्पा भी ऐसे ही समर्पित भक्त थे। वे पांच वर्ष तक संकल्प पूर्वक प्रत्येक अमावस्या के दिन २५ कि.मी.दूरी पर स्थित स्तवन विधि नामक क्षेत्र के दर्शन पूजन करने जाते थे उत्तम द्रव्य चढ़ाते थे इसका फल ही है कि उनके आंगन में तीर्थंकर बालक जैसे विद्याधर का जन्म हुआ। गांव के लोग कहा करते थे किउनकी प्रभु के प्रति भक्ति निराली है।

जो ध्याया वो पाया – एक बार के अनेक लोगों ने मां से पूछा भाई बहनों में विद्याधर इतने सुंदर क्यों हैं ? तो मां ने कहा जब विद्याधर गर्भ में आये थे तब मुझे भगवान बाहुबली के दर्शन पूजन की तीव्र इच्छा हुई थी और पूजन भक्ति से जो पुण्य का संचय हुआ उसके परिणाम स्वरूप ही सुंदर बालक का जन्म हुआ। भगवान बाहुबली जी कामदेव, कठोर तपस्वी एवं अपने भाई और पिता के पहले लक्ष्य प्राप्त करने वाले थे। उनकी आराधना से ही उनके समान सुंदर रूप वाला दृढ़ साधक एवं पिता और भाई से पहले लक्ष्य को जानने वाला पुत्र प्राप्त किया।

मां की लोरी त्वं शुद्धोऽसि – रूप लावण्य के धनी अद्वितीय लाड़ले विद्याधर की किलकारियों पर बलिहारी हो जाती उनके मधुर कंठ से स्वतः ही लोरी निकल पड़ती। तू शुद्ध है,तू बुद्ध है, तू निर्विकल्प है, तू अविनाशी है, निर्विकारी - मूलत चेतन में? माँ इन अध्यात्म से परिपूर्ण लोरियों भजनों ने विद्या के अंतस् में अध्यात्म का रस भर दिया। आज वह विद्या के सागर बन कर सबको अध्यात्म का मधुर गान सुनाकर वैराग्य पथ पर अग्रसर कर रहे हैं।

मुनि एवं पिच्छि देख होते आकर्षित – विद्याधर केजीव ने एक नहीं, कई जन्मों के पुण्य को संचित कर जन्म लिया होगा तभी उनके जीवन के अठखेलियाँ सामान्य बच्चों से कुछ अलग ही थी। जब गर्भ में आये तो माँ को मुनि दर्शन की चाह बनी रहती आसपास साधु होते तो स्वयं को जाने से रोक नहीं पाती। अबोध दशा में भी विद्याधर मुनियों की तरफ आकर्षित होते तथा उनकी पिच्छि अपने सिर पर रख लेते वापिस मांगने पर मचल जाते थे। आज आचार्यश्री को देखकर लगता है कि बचपन में मुनि एवं पिच्छि आकर्षण मोक्ष पथ के प्रति आकर्षण का ही द्योतक था बचपन के शुभ लक्षण लक्ष्य को पाने वाले विलक्षण व्यक्ति की ओर संकेत करते हैं।

भगवान जैसा सुंदर रूप – जहाँ पर पुण्य वास करता है वहां अनायास ही मनमोहकता आ जाती है वह सबको प्रिय व सुंदर लगता है। जब ढाई वर्ष के थे तब माता पिता के साथ गोम्मटेश यात्रा पर गये थे तो यात्रियों ने कहा तुम्हारा बेटा भगवान जैसा लगता है। इसे भगवान के पास बैठा दो ? इसी प्रकार आचार्य देशभूषण जी महाराज द्वारा जब विद्याधर का मूंजी बंधन संस्कार हो रहा था तब आचार्य अनंतकीर्ति महाराज से दीक्षित आर्यिका विमलमति माताजी ने कहा विद्याधर अब तुम सचमुच भगवान जैसे दिखने लगे। विद्याधर ने घर आकर मां को त्यों का त्यों सुना दिया। बचपन में लोगों के मुँह बोले आज के सचमुच के भगवान आचार्य बचपन सिंहासन परआरूढ़ होकर हमें बोधि प्रदान कर रहें।

विद्याधर का विद्यालय प्रवेश – अन्ना जी (पिताजी) ने पांच वर्ष की

उम्र में विद्यालय में दाखिला करवा दिया। विद्यालय का नाम कन्नड गन्डु मक्कड शालेय (कन्नड बालक प्राथमिक शाला) सदलगा था जो आधा कि.मी. दूर था जिसे अन्ना जी छोड़ने जाते थे स्कूल के नाम से कभी रोते नहीं थे। स्कूल दो भागों में लगता था। सुबह ७ से ११ एवं दोपहर में भोजन के बाद २ से ५ बजे तक बैठने के लिये बालक अपनी टाटपट्टी स्वयं साथ ले जाते थे। शिक्षक द्वारा पाठ रोज सुना जाता था। टोली बनाकर स्कूल की सफाई गोबर से लिपाई,पुताई आदि करना पड़ता था। जब कभी स्कूल के लिए देर हो जाते तो विद्याधर कच्चा दूध पीकर ही चले जाते थे समय के बड़े पक्के थे। हमेशा प्रथम स्थान लगता था।

स्कूल में अ आ बनाना सीखा – दिन भर में सीखकर स्लेट पर एक तरफ छोटा अ तथा दूसरी तरफ बड़ा आ् से भर कर घर आये और मां से कहा आज हमने छोटे से बड़ा बनना सीखा। उसके भोलेपन को देख माँ ने उसे गोदी में उठाकर दुलार करने लगी और कहा तू सचमुच एक दिन छोटे से बड़ा बनेगा। विद्याधर का लेखन अत्यंत सुंदर था मोती जैसे गोल मटोले स्पष्ट अक्षर रहते थे

कंचे पर कंचे जमाना – बचपन में विद्याधर कंचा के खेल खेला करते थे। खेल-खेल में कंचों पर हल्की धूल डालकर एक के ऊपर एक ९ कंचे जमा लेते थे जैन शास्त्रों में प्रसंग आता है कि आचार्य भद्रबाहु ने भी बचपन में एक के ऊपर एक चौदह कंचे जमाये थे।

प्रवचन सुन, वपन हुआ वैराग्य का नन्हा सा वटवृक्ष – जब विद्याधर ९वर्ष के थे उस समय उन्हें परिवार के साथ शेडवाल (वेलगांव, कर्नाटक) ग्राम मेंचारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर के दर्शन व प्रवचनों का सौभाग्य मिला। महाराज ने श्रद्धा के द्वारा आत्मा उत्थान को कैसे प्राप्त होती है। इसे दृष्टान्तों के द्वारा समझाया जिसका सार था जो जिसकी उपासना करता है वह उसे प्राप्त कर लेता है। अपनी श्रद्धा दृढ़ होनी चाहिये। इसका प्रभाव गीली माटी सम विद्याधर के चित्त पर अमिट रूप से पड़ गया। विद्याधर बालक की पूर्व से ही उपजाऊ आत्मभूमि में बीज वपन का कार्य किया। वैराग्य का एक नन्हा सा बटबीज लहलहराने लगा।

भक्तामर स्तोत्र कंठस्थ करना – जब चौथी कक्षा में थे तभी भक्तामर स्तोत्र कंठस्थ कर लिया था तथा सातवीं व आठवीं कक्षा में पढ़ते थे तब अन्ना महावीर भैया एवं विद्याधर को सहस्रनाम पढ़ाते थे। वह जितना पढ़ाते जाते विद्याधर उतना कंठस्थ करते जाते हैं। इस तरह बचपन से ही सहस्रनाम भी पढ़ लिया था।

ऐसा कौन सा गुण था जो विद्याधर के पास न हो, वे एक कुशल चित्रकार भी थे, ग्यारह-बारह वर्ष की उम्र में ही वे रेखाचित्र बनाने लगे थे विशेषकर महापुरुषों के चित्र बनाते थे। जैसे महावीर स्वामी, बाहुबली स्वामी, सुभाषचंद्र बोस, झांसी की रानी, स्वामी विवेकानंद आदि बालक की अभिरूचि से स्पष्ट संकेत हो रहे थे कि वह कोई सामान्य बालक नहीं है।

किसी कार्य को करने से पहले उन्हें सिखाना नहीं पड़ता था देख लिया और आ गया। घुड़सवारी करना भी उन्होंने देखकर ही सीखी थी। एक व्यक्ति उनके खेत पर घोड़ा लेकर आता था और घोड़े के पैर बांध कर काम करने लगता विद्याधर निर्भय होकर उस पर बैठ जाते थे। धीरे उसके बाल पकड़कर चलने लगे और सीख गये घुड़सवारी तब १३--१४ वर्ष के होंगे।

खेल में महारथी – विद्याधर की रूचि प्रायः सभी खेलों में थी जैसे गिल्ली डंडा, कंचा, बालीवाल, कबड्डी, कैरम, शतरंज आदि खेल खेला करते, शतरंज में तो जैसे महारथ हासिल थी शतरंज के श्रेष्ठखिलाडी लोकप्पा जी को भी हरा दिया था। आज वही विद्याधर मोक्षमार्ग के खेल में कर्मों को मात दे रहे हैं। कर्मों को मात देने वारी त्याग तपस्या रूप उनकी चाल निराली रहती है।

विद्याधर – मुंजी बंधन – इसमें व्रत नियम के प्रतीक रूप जनेऊ धारण किया जाता, बाल कटवाये जाते, पांच घरों में भिक्षाटन करके भुना धिान्य लाते। बटी शाम को खाते, दिन भर कुछ नहीं खाते, अन्नाजी ने सोने का तीन लरों वाला जनेऊ पहना दिया और मंदिर भेज दिया। देशभूषण जी अपने आप को रोक नहीं पाये और अगली पंक्ति मेंबैठ गये।आचार्य महाराज सम्यक् दर्शन,

ज्ञान,चारित्र रूपी प्रतीक के रूप में तीन लरों वाला सोने के जनेऊ से विद्याधर का मुंजी बंधन किया ।विद्याधर के जीवन में आरंभ हो गई गुरु हस्त कमलों से संस्कार पाने की श्रृंखला।

मंदिर जी में ध्यान लगाना, बावड़ी में ध्यान लगाना – विद्याधर ९ वर्ष के थे तभी से ध्यान करने लगे वह अकेले कर वसदि (छोटा जैन मंदिर) चले जाते शाम को ध्यान करते १४-१५ वर्ष की उम्र में वह दोड्ड वसदि (बड़ा जैन पंचायती में) जाकर ध्यान करते थे। कभी-कभी अपने मित्र मारूति के साथ रात २ बजे तक ध्यान करते रहते थे। विद्याधर ९ वर्ष की उम्र में तांबे का घड़ा लेकर नदी जाने ललगे जहां पानी कम होता तो घड़ा उल्टा करके तैरने की कोशिश करते कुछ ही दिनों में तैरना सीख गये। लगभग ११ वर्ष की उम्र में ज्वार के डंठलों का बंडल अपनी पीठ पर बांधकर लाते थे। घर के पास वाली बावड़ी में छलांग लगाने लगे १२-१३ वर्ष में तैराकी में निपुण हो गये। फिर घंटो जल के अन्दर रहकर फिर पानी के ऊपर आसमान की ओर मुख किये पद्मासन लगाये ध्यान मुद्रा में दिखाई देते थे। ग्रामवासियों को देखकर आश्चर्य के साथ भय भी लगता था माँ मना करती थी पर वह कहते थे मैं तैरने नहीं ध्यान लगाने जाता हूँ माँ को विश्वास नहीं होता था।

साधुसेवा में तत्पर सदलगा में – दिगम्बर साधु संतों का समागम मिलता रहता था। आचार्य देशभूषण जी ससंघ, आचार्य अनंतकीर्ति ससंघ, महाबल महाराज, सुबलसागर जी, पायसागर जी आदि मां चौका लगाती, विद्याधर से पानी लाने का चौका के काम हाथ बंटाते थे ? आचार्यश्री देशभूषण जी का चातुर्मास हुआ तो रोज आहार कराने जाते थे तथा किसी संघ के साधु के अस्वस्थ होने पर उनकी वैय्यावृत्ति करते थे। आचार्यश्री विद्याधर के वैराग्य बढ़ाने के लिये प्रोत्साहित करते थे।

विद्याधर परिवार के प्रति भी बहुत संवेदनशील थे। घर में कोई बीमार हो जाये तो दुखी हो जाते थे एक बार छोटे भाई अनंतनाथ को तीन वर्ष की उम्र में रीकेट्स रोग हो गया। इस रोग में हाथ पैर सूखते हैं तथा पेट बड़ा हो गया।

शरीर में हड्डी-हड्डी दिखने लगी। बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। सभी परिवार के लोग दुखी थे उस समय विद्याधर १३ वर्ष के होंगे। वे खेलना छोड़कर सेवा में लगे रहते थे। बाद में दूर गांव के वैद्य जी ने औषधी दी तथा एक वर्ष प्रतिदिन सुबह से १२ बजे तक धूप में बैठने को कहा इससे इनका रोग चला गया। चमड़ी काली पड़ गई आज वही अनंतनाथ भैया योगसागरजी के रूप में संघ में शोभा बढ़ा रहे हैं।

सदलगा से लगभग ७ कि.मी. की दूरी पर चांद शिरडवाड नामक गांव में क्षुल्लक सूरिसिंह महाराज से अपने मित्र मारूति के साथ दर्शन करने गये। दीपावली के दिन १९ अक्टूबर १९६० अनुराधा नक्षत्र में शादी तक ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहणकर लिया।

विद्याधर को रेडियो चलाने का शौक था। जब नया-नया प्रचलन था। मराठी, आकाशवाणी आल इंडिया, बी.बी.सी.आदि सुनते थे। ९ वी कक्षा तक पढ़ाई की। अन्ना जी ने पूछा आगे क्यों नहीं पढ़ना तो विद्याधर बोले मुझे लौकिक नहीं अलौकिक पढ़ना है। स्कूल की पढ़ाई से कल्याण नहीं होता। १९५८ में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा कर्नाटक शाखा के अंतर्गत मद्रास हिन्दी प्राथमिक प्रायवेट परीक्षा पास की थी।

एक दिन विद्याधर मित्रों के साथ गिल्ली डंडा खेल रहे थे। गिल्ली गुफा के सामने गिरी उसमें महाबल मुनि महाराज विराजमान थे। वे गिल्ली उठाकर आने लगे तब उनकी दृष्टि महाराज पर पड़ी तो नमोस्तु किया तो महाराज ने नाम पूछा - बालक ने अपना नाम बता दिया। महाराज बोले कौन-कौन सी विद्यायें हैं तुम्हारे पास। कुछ धर्म आता है कि बस खेलते रहोगे। विद्याधर ने कहा भक्तामर आता है तो महाराज ने कहा तत्वार्थसूत्र एवं सहस्रनाम याद करके सुनाना। उन्होंने सात दिन में तत्वार्थ सूत्र याद करके सुना दिया। महाराज ने खुशहोकर पिच्छि रखकर आशीर्वाद दिया और तू अच्छा विद्वान बनेगा।

ज्ञानसागर जी ने दशलक्षण में तत्वार्थ का पाठ करने को कहा तो विद्याधर ने बगैर पुस्तक उठाये वहीं के वहीं पाठ कर दिया। ज्ञानसागर जी ने सोचा अब

बीच में पुस्तक उठायेगा पर उसने नहीं उठाई पूरा पाठ हो गया। महाराज बहुत आनंदित हुये। १४- १५ वर्ष की उम्र में स्वाध्याय करने ललगे थे। मधुर कंठ से भक्तामर, सहस्रनाम, रत्नाकर वर्णी, रत्नाकर शतक आदि का मीठी सुरीली आवाज में पाठ करते थे। जिसकी प्रशंसा सभी करते थे। यह संस्कार उन्हें माँ से मिले।

वृद्ध साधुओं के केशलोंच करना, विद्याधर १६ वर्ष उम्र में १९६२ के लगभग सदलगा में वृद्ध नेमीसागर के तीन चार श्रावकों के साथ प्रथम बार केशलोंच करने का सौभाग्य मिला। १९६५ में महाबल के भी केशलोंच करे थे।

मुनि श्री आदिसागर (भोजगांव) एवं मुनि मल्लिसागर की समाधि वेडकीहाल में हुई थी। वे अपने मित्र मारूति के साथ देखने गये। जहां भी सल्लेखना हो वहां पहुंच जाते थे। बोरगांव में वृद्ध मुनि नेमीसागर ने सल्लेखना ग्रहण की थी। इस सूचना को सुनकर वहां उनकी बहुत सेवा की। वह मंत्र सुनाते थे। अंतिम क्षण तक मंत्र सुनाते रहे। लगभग ७ दिन लगे थे। मुनि की समाधि देखकर विद्याधर, मारूति और जिनगौड़ा तीनों ने निर्णय लिया था अब घर नहीं जायेंगे। अनंत व्रत करने की धार्मिक परम्परा है वसीयत की भांति अनंतकाल पिता के बाद पुत्र आदि विद्याधर ने लगभग १२ वर्ष की उम्र से दशलक्षण पर्व में एकाशन करना शुरुकर दिया था।

सामुद्रिक चिन्ह - विद्याधर के अनेक मित्रों में से एक शिवकुमार था जो हमेशा शतरंज खेलता था और हमेशा हार जाते थे। एक दिन उसने विद्याधर के हाथ देखे जिसमें अनामिका ऊंगली में त्रिशूल का चिन्ह देखा जो भगवान शिव का चिन्ह जिसके कारण ही हमेशा विद्याधर जीतते थे। फिर उसने विद्याधर के घर पर भी सबको बताया। विद्याधर की गतिविधियों को देखकर शिवकुमार की धारणा बन गई यह कोई महान आदमी बनेंगे। जब विद्याधर की दीक्षा का समाचार सदलगा में फैला । उसको सुनकर घर आये और मल्लप्पा जी के पास रोने लगे। बोले मैं कहता था कि महान आदमी बनेगा पर मै सोचता था कि कोई बड़ा नेता बनेगा,गांधी जी जैसा पर यह तो संन्यासी बन गया उन सबसे भी

ऊँचा, मोक्षमार्ग का नेता। मुझे उसके साथ शतरंज खेलने का सौभाग्य मिला।

आज्ञापालक - विद्याधर माता-पिता की आज्ञा को कभी टालते नहीं थे। माँ बात को कभी नहीं टालते थे।

अहिंसा के लहलहाते सागर - विद्याधर के अंदर दया करुणा का सागर बचपन से था वह घर पर मच्छर भगाने के लिए धुआं नहीं करते थे। खटमल भगाने की दवा नहीं छिड़कने देते, कहते इससे हिंसा होती है, पाप लगता है, खेत में फसल की रक्षा के लिये पावडर आदि नहीं डालने देते थे। केवल गन्ने की खेती करना चाहिये ऐसा बोलते थे।

दयालु विद्याधर - दया तो कूट-कूट कर भरी थी चाहे पशु हो अथवा मानव। एक बार किसान खेत जोत रहे थे तो एक बैल थक कर बैठ गया। किसान उसे मार-मार कर उठा रहे तो विद्याधर ने देखा और उसे मारने को मना कर दिया तथा स्वयं ने खेत जोत दिया। महावीर भैया ने खेत पर भेजा कितने मजदूर काम कर रहे तो देखकर आ गये बोले १२ मजदूर है। भैय्या ने पूछा - स्त्री पुरुष कितने मजदूरी अलग-अलग देनी पड़ती है। तो विद्याधर मेहनत तो दोनों बराबर करते हैं फिर मजदूरी अलग-अलग क्यों ? इतना बोलकर विद्याधर बाहर आ गये।

उपसंहार - अष्टगे वंश के वंशज ने आज तीर्थंकरों केवंश को दैदीप्यमान करने वाले पूर्वाचार्यों की परम्परा में श्रवणत्व को अंगीकार कर न केवल अपने को अपितु सारे परिवार को धन्य कर दिया। सौभाग्यशाली है पिता मल्लप्पा जी जिनके संरक्षण में पले बढ़े हुये। उन्हीं के कुलदीपक कहे जाने वाले पुत्र आज सम्यक्त्व रूपी पिता केसंरक्षण में आचार्यश्री ज्ञानसागरजी महाराज के विशाल गुरुकुल को संचालन कर रहे। क्या कहें श्रीमंती के पुण्य की बलिहारी जो उनकी गोद में क्रीड़ा करने वाला आज क्षमा रूपी माँ की छांव में रहकर महान परीषहजयी साधक बन गये। भाई महावीर, गांव और गलियों में ढूंढते हुए जिनका पीछा करते थे वही आज उनके पीछे (पदचिन्हों) चलने को आतुर

है। खेल खेल में अनंतनाथ,शांतिनाथ और मित्र को पराजित करने वाले आज सत्यरूपी मित्र और गुण रूपी सहोदरों के साथ कर्मों को पराजित कर रहें। धन्य हैं वह स्वर्णा, शांता की राखी जो ऐसे हाथ पर बंधी की वही हाथ आज अहिंसा रूपी बहन से दया की राखी बंधवा कर प्राणी मात्र को अभय दे रहे हैं।

बचपन की पाठशाला के बीज चाहे परिवार द्वारा रोपित हो या आचार्य ज्ञानसागर के विश्वविद्यालय द्वारा प्रत्यारोपित उन बीजों के लिये विद्याधर रूपी ऐसी उपजाऊ रही जिसमें कोई बीज (टर्रा निष्फल) नहीं रहा और तैयार हो गया जिन शासन का आचार्य श्री विद्यासागर रूपी खेत जिसे पाकर जैन संस्कृति गौरवान्वित है।

विक्रम संवत् २०२३ रेवती नक्षत्र, बुधवार २७ जुलाई १९६६ प्रातः काल १०.३० बजे घर पर ज्ञात न हो जायें इस कारण मार्ग व्यय हेतु ११२ रु. सिर्फ मारूति ने मजदूरी के उन्हें दे दिये वैराग्य के पथ पर आरुढ़ हो चूलगिरि जयपुर राजस्थान में विराजमान आचार्य श्री देशभूषण के पास और महाराज के चरणों में निवेदित कर दी। अपनी दृढ़ भावना एवं यहां तक आने का सारा वृत्तांत बता दिया। बिना परिवार की अनुमति के संघ में प्रवेश कैसे दे ? मित्र जिनगौड़ा और विद्याधर को बहुत आशीर्वाद दिया।

इधर माँ बेचैन सुबह से शाम तक भोजन के लिये इंतजार करती रही। सोचा मंदिर में होगा एवं सब दूर खोजा नहीं मिला। सब मित्रों से पूछा पर कोई जवाब नहीं। कुछ दिन आचार्य श्री देशभूषण महाराज के पास से संदेशा आया कि विद्याधर हमारे पास है चिंता की कोई बात नहीं है। बहुत होशियार, होनहार है। उसने हिन्दी पढ़ना शुरु कर दिया। पंडित नियुक्त किये हैं। पढ़ाने के लिये उसका विचार पूरे चौमासा पढ़ने का है। पत्र को पढ़कर अन्ना जी ने कहा देखो बेटा बड़ा हो गया। अब चार महा पढ़ के आयेगा।अन्ना जी ने सबसे पूछ, पैसे किससे लिये सबने मना कर दिया। आचार्यश्री ने आजीवन व्रत दे दिया। इधर महावीर भैया लेने के लिए पहुंच गये। परन्तु उन्होंने मना कर दिया, कहा

अभी चार माह और पढ़ाई करना है और मौन हो गये ''मौन से दुनिया हारी''। इधर महावीर भैया वापिस आ गये। विद्याधर ने संघ के अनुसार स्वयं को ढाल लिया था। साइकिल पर दूध लाना। वैयावृत्ति करना, रहने के स्थान की साफ सफाई करना। कमण्डलू में जल भरना आदि। ३० मार्च १९६७ को गोम्टेश बाहुबली का मस्तकाभिषेक करने का सौभाग्य प्राप्त किया। पर महावीर भैया के वापिस आने पर उन्हें डर था कि अन्ना जी आयेंगे जबरदस्ती ले जायेंगे घर। मुझे संसार में नहीं फंसना है। ऐसा कहकर वह आशीर्वाद लेकर उत्तर भारत चला गया। आप चिंता न करें उसे हिन्दी नहीं आती है वह वापिस आ जायेगा। उस समय उत्तर भारत में आचार्य शांतिसागर के शिष्य वीरसागर आचार्य इनके शिष्य आचार्य शिवसागर का संघ विराजमान था। इसे लक्ष्य बनाकर अजमेर जाने का निश्चय किया। विद्याधर स्तवनविधि से कोल्हापुर, बम्बई, अहमदाबाद होते हुये अजमेर पहुंचे। इस यात्रा में उन्हें तीन दिन लगे। मार्ग में २ उपवास हो गये। रात्रि ११-१२ बजे अजमेर पहुंचे थे। यात्रा के दौरान पैसे सब खर्च हो गये सिर्फ पांच रू. बचे थे। रिक्शे आदि में कम पड़ ग़ये। २४ मई १९६७ को अजमेर के ही एक ब्रह्मचारी के घर रात्रि रुके भूख और गर्मी व्याकुल उन्हें छत पर लगे नल से स्नान कर सो जाने पर नल में पानी नहीं आया। अतः कमण्डल के जल से दुपट्टा गीला कर ओढ़ कर सो गये। रात आंखों में निकल गई। सुबह जल पान ग्रहण कर पंडित श्री विद्याकुमार जी सेठी के पास गये और ज्ञानार्जन के साथ आत्मसाधना करना चाहते है। पंडित जी ने झिड़कते हुये कहा हिन्दी तो आती नहीं संस्कृत पढ़ने चले। ब्र. सौगनचंद ने आचार्य ज्ञानसागर के पास जाने की सलाह दी तुम्हारी दीक्षा और शिक्षा की प्यास आचार्य ज्ञानसागरजी की शरण में पूरी हो सकती है और वे सहर्ष तैयार हो गये।

अतः ब्र. सौगनचंद ने श्रावक श्रेष्ठी कजोड़ीमल जी अजमेरा से सम्पर्क करवाया। दूसरे दिन कजोडीमल के यहां प्रातः उठ भोजन आदि से निवृत्त होकर कजोडीमल,श्री चेतनमल एवं मिलापचंद अजमेर के साथ मदनगंज-

किशनगढ़ की ओर प्रस्थान किया। इस तरह एक अनगढ़ पत्थर को मूर्ति बनाने के लिए एक अलौकिक शिल्पी को सौंपने का सौभाग्य मिल गया। यह यात्रा शुरु होती विद्याधर की यात्रा ज्ञान के सागर में डुबकी लगाकर स्वयं विद्याधर बन गये। आचार्यश्री ने पूछा क्या नाम है ? ब्र.विद्याधर। दक्षिण भारत से आपके पास ज्ञानार्जन करने आये तो आचार्यश्री बोले ऐसे तो कई आते हैं तो ब्र. जी ने कहा, मैं जाने के लिये नहीं आया। मुनिश्री नजर उठाकर देखा क्या नाम है विद्याधर। नाम सुनकर हंसी आ गई तो विद्या लेकर उड़ जाओगे। विद्याधर बोले विश्वास कीजिए मैं विद्या लेकर भागूंगा नहीं, मुझे अपनी शरण में ले लीजिये। कजोडीमल से पूछ ले इसके पहले ही विद्याधर बोले विश्वास नहीं है तो आज से गुरुवर इसी समय से सवारी का आजीवन त्याग करता हूँ। छोटी सी बात पर इतना बड़ा त्याग देख अचंभित हो गये। आचार्य ज्ञानसागर जी और आप संकल्पी है तो तुम्हें विद्यानंदी बनाऊंगा। इस तरह वर्तमान युग के गुरु शिष्य की निर्मल अनूठी परम्परा का सूत्रपात होता है। एक अनदेखे अपूर्व त्याग के साथ कुछ दिन बाद विद्याधर ने नमक और मीठा का त्याग कर दिया। आचार्य ज्ञानसागर जी ने बहुत पढ़ाया। जितना पढ़ाते उतना उसी दिन तैयार कर लेते थे। ज्ञानसागर जी पहुचने के पच्चीसवें दिन जून १९६७ को केशलोंच करने का सौभाग्य मिला गुरु जी के। इसके बाद गुरु चरण सेवक बन गये। एक दिन विद्याधर को बिच्छू ने काट लिया परन्तु उन्होंने किसी को नहीं बताया। असहनीय पीड़ा सहते रहे। विद्याधर की चर्या, साधना, लगन, निष्ठा,समर्पण, सेवा भावना, आज्ञा पालन आदि जनसम्पर्क से विमुख देख आचार्यश्री बहुत प्रभावित हुये कभी भी सोये पर प्रातः चार बजे उठ जाते हैं। प्रत्येक परीक्षा में खरे उतरे। आचार्यश्री को भावी मुनि की योग्यता नजर आने लगी और उन्होंने ३० जून १९६८ के दिन मुनि दीक्षा प्रदान की जायेगी। सबने विरोध किया पर गुरुजी नहीं माने सबने विद्याधर की परीक्षा की। हर बार १००% अंक आये। ९ हाथी, ११ घोड़े, ११ बग्घियां, ५ ऊंट, ७ बैण्ड आदि के साथ पांच दिन बिनोली निकली। बिनोली में भेंट स्वरूप २५०० रु. आये थे जिससे शास्त्र

प्रकाशन करने का निर्णय लिया। जब दीक्षा हुई बहुत गर्मी थी पर दीक्षा के उपरांत वर्षा हुई थी। आसपास गर्मी थी पर वहां ठंडक हो गई थी। विद्याधर को सोने चांदी के मुकुट,हार और तिलक से सजाया गया था। धोती दुपट्टे पहने हुए सूट नहीं पहना था।

पिता श्री मल्लप्पा जी – यूं तो बचपन से ही उन धार्मिक संस्कारों का प्रभाव था विवाह के ६ माह पूर्व मुनि बनने की भावना से वे घर से निकल गये थे। लेकिन पिता परिसप्पा जी उन्हें ढूंढ कर ले आये और उनका विवाह कर दिया। गृहस्थावस्था में रहते हुये भी विषयों के प्रति उदासीनही रहे। सन् १९५२-१९५३ में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर जी के चरणों में मुनि बनने की भावना रखी पर उन्होंने मना कर दिया। कहा पहले छोटे-छोटे बच्चों का दायित्व संभालों फिर देखना। मल्लप्पा जी ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत के लिये कहा तो स्वदार संतोष व्रत दे दिया। अपने ही पुत्र विद्याधर की दीक्षा के बीस दिन बाद लगभग २० जुलाई १९६८ को सपरिवार अजमेर पहुंचे और आचार्य जी के आहार चौके में हुये मल्लप्पा जी ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया। विद्याधर के मुनि बनने के बाद उन्होंने भी निर्ग्रन्थ पद को प्राप्त कर लिया। आचार्य शांतिसागर जी महाराज की परम्परा के तृतीय पट्टाचार्य आचार्य धर्मसागर जी माघ शुक्ल पंचमी रेवती नक्षत्र वीर निर्वाण सं. २५०३। ५ फरवरी १९७६ को मुजफ्फरनगर (उ.प्र.) मुनि दीक्षा धारण कर ली। नाम मुनि मल्लिसागर जी रखा गया। दीक्षा के बाद गुरु से नियम मांगा। गुरु जी ने ८ दिन का नमक त्याग का नियम दिया परन्तु उसके बाद उन्होंने आजीवन पर्यन्त नमक नहीं लिया, रसों में एकाध ही रस लेते। फलों में सिर्फ केला लेते थे। वैय्यावृत्ति भी नहीं करवाते थे। ईसरी में विहार में सन् १९८३ में आचार्यश्री विद्यासागर जी से १२३४ चारित्र शुद्धि व्रत ले एक उपवास एक आहार करते हुये लगभग सात आठ वर्ष में व्रत पूर्ण कर लिये। उन्होंने कर्मदहन के १५६ उपवास भी किये। भव्य जीव तीर्थ क्षेत्रों की वंदना स्वयं तीर्थ बनने के लिये करते हैं। जीवन के अंत में मुनिचर्या का निर्दोष पालन करते हुये ९ दिसम्बर १९९४ को

नेमीनाथ दिगम्बर जैन मंदिर कोल्हापुर महाराष्ट्र में आपकी समाधि हुई।

श्रीमति मंती जी – जिस प्रकार सभी वनों में गोशीष चंदन नहीं होता, सभी खदानों में हीरा नहीं होता, सभी दिशाओं में सूरज नहीं निकलता उसी प्रकार सभी माताएँ महापुरुषों को जन्म नहीं देती। कोई विरली ही माँ होती है जो महापुरुषों को जन्म देती है। वो माँ श्रीमंती जी थी। आपका जन्म १ फरवरी १९१९ में अक्कोल चिक्कोड़ी में हुआ था। उनके घर में ही कुआं था। पड़ोस में बावड़ी थी और थोड़ी ही दूरी पर नदी भी थी वह अपने हाथ से चक्की चलाकर आटा तैयार करती थी सिर पर घड़े रखकर पानी लाती थी और बच्चों को अच्छे से अच्छे संस्कार देने में निपुण थी। श्रीमंती जी वात्सल्य की देवी और सदगुणों से परिपूर्ण गृहलक्ष्मी थी दया निष्ठ, कलाकुशल, धर्मपरायणा शीलवती एवं शांत स्वभावी महिला थी। मुनिराजों के चौका लगाती थी तो महाराज के आहार के बाद ही बच्चों को भोजन मिलता था बच्चे कितने भी आकुलित हो। कच्ची माटी के घट रूप देने उन्हें अच्छी तरह आता था। प्रतिकूल परिस्थिति में सहनशील बनने की शिक्षा भी देती थी।

माँ की दी शिक्षा का फल है कि आचार्यश्री जी हर प्रकार के सुख-दुख में एवं रोगादि में २२ परीषहों को समता से सहन करते हैं।

श्रीमंतीजी ने अपनी दोनों पुत्रियों शांता-सुवर्णा एवं पति श्री मल्लप्पा के साथ विक्रम संवत् २०३३ सन् ५ फरवरी १९७६ को आचार्य श्री धर्मसागर जी से मुजफ्फरनगर उ.प्र. में आर्यिका दीक्षा ली। आपका नाम आर्यिका समयमति जी रखा गया। दोनों पुत्रियों का नाम क्रमशः आर्यिका नियममति, आर्यिका प्रवचनमति जी रखा गया एवं पति का नाम मुनि मल्लिसागर जी हुआ। उस दिन कुल ग्यारह दीक्षा हुई जिसमें ४ तो एक ही परिवार (अष्टगे परिवार) थे। दीक्षा के इरादे दूसरे दिन से ही नमक का आजीवन त्याग कर दिया था। आपने उपवास पूर्वक जिनगुण सम्पत्ति, कर्म दहन, णमोकार मंत्र, सम्यकत्व पच्चीसी, सहस्रनाम, तत्त्वार्थ सूत्र आदि के व्रत किये। गृहस्थ अवस्था में अष्टमी चतुर्दशी को उपवास करती थी। ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी ३ जून १९८४ प्रातः ९.३० पर ग्राम

कोछोर जिला सीकर राजस्थान में लगभग ६५ साल की उम्र में संयम जीवन को सफल करतेहुये समाधिमरण किया। आपने समाधिमरण के १५ दिन पूर्व ही स्वेच्छा से अन्न का त्याग कर दिया था। मुनि विजयसागर के चरण सान्निध्य में पूर्णतः: जागृति के साथ समाधि की।

महावीर जी अष्टगे – महावीर जी परिवार के इकलौते ऐसे सदस्य हैं जिन्होंने सातिशय पुण्यशाली परिवार के वंश की परम्परा को आगे बढ़ाया। अष्टगे परिवार के ८ सदस्यों में से सिर्फ आपने ही सद्गृहस्थ होने की भूमिका निभाई। शेष सभी सदस्य मोक्ष पथ के अनुगामी हो गये। आपका जन्म १ जून १९४३ को हुआ। आपने स्नातक (बी.ए.) तक शिक्षा प्राप्त की। आपका विवाह समनेवाड़ी ग्राम जिला बेलगाम की सुसंस्कारित कन्या से सन् २० दिसम्बर १९७५ को हुआ। आपकी दो संतान है दीपिका, अक्षय अष्टगे कृषि और ज्वेलरी का व्यापार होता है।

शांता जी - बाल ब्रह्मचारिणी शांता जी - दीक्षा ५ फरवरी १९७६ में

जन्म सन् १९४९, वीर निर्वाण संवत २४७६, विक्रम संवत २००६

शिक्षा - सातवीं, ब्रह्मचर्य व्रत - सन् १९७५ अप्रैल ८, आचार्यश्री विद्यासागरजी

वर्तमान में श्राविका आश्रम तुकोगंज, इन्दौर में

एक दिन घर पर चल रहे सामूहिक स्वाध्याय के दौरान विद्याधर भैया इतने सारे ग्रंथ कहां रखोगे तो भैय्या ने हृदय पर हाथ रखकर कहा हृदय में रखेंगे। ग्रंथों कों ग्रंथालय की शोभा नहीं हृदय की शोभा बनाना चाहिये।

बहनों ने बताया, विद्याधर भैया रात्रि में हम लोगों को तत्वार्थ सूत्र सिखाते थे। यदि उन्हें किसी दिन मंदिर से आने में देर हो जाय तो हम लोग सो जाते तो मां से पूछते थे कि पाठ सुनाया कि नहीं। यदि नहीं तो उसी समय उठा कर बैठा देते थे। वे उस दिन का पाठ उसी दिन तैयार करवाते थे।

पथानुगामी - सुवर्णा जी अष्टगे

जन्म - विक्रम संवत सं. २००९ सन् १९५२

शिक्षा - दसवीं माध्यम मराठी

ब्रह्मचर्य व्रत - सवाई माधोपुर (राजस्थान) ८ अप्रैल १९७५ आचार्य श्री विद्यासागरजी

सातवीं प्रतिमा - आचार्य धर्मसागर जी आर्यिका दीक्षा ५ फरवरी १९७६ में

वर्तमान - श्राविका आश्रम तुकोगंज इन्दौर साधना रत

बहन सुवर्णा के जन्म से दस दिन पूर्व पिताजी ने २१ तोला सोना खरीदा था। अतःआपका नाम सुवर्णा रखा गया। दोनों बहनें उम्र में छोटी थी। ब्र. शांता की उम्र १२ वर्ष एवं ब्र. सुवर्णा जी की उम्र ९ वर्ष थी। व्रत करने की जिद करने लगी। तब मां ने कहा उपवास नहीं बनेंगे, एकासन कर लिया करो। मां ने अपने ममता भरे भावों से समझाया कि एकासन का मतलब भरपेट भोजन करलो शाम को बूंदी जलेबी आदि तले पदार्थ ले लिया करो। एक दिन विद्याधर ने देख लिया तो ऐसा कोई एकासन होता है क्या ? ऐसा तो हम हमेशा कर सकते हैं। एक बार भोजन करना शाम को कुछ भी नहीं लेना वही एकाशन है इसके बाद दोनों बहनों ने सही एकाशन शुरु कर दिया।

अनंतनाथ - नाम बाल ब्र.अनंतनाथ, जन्म विक्रम संवत् २०१३ सन् १९५६, १३ सितम्बर

शिक्षा - हाईस्कूल, ब्रह्मचर्य व्रत - महावीर जी, सन् १९७५, २ मई, सांतवी प्रतिमा-धोलपुर (राज.)

क्षुल्लक दीक्षा - सिद्ध क्षेत्र सोनागिर जी, १८ दिसम्बर १९७५

एलक दीक्षा सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर, सन् १९ नवम्बर १९७७

मुनि दीक्षा वर्णी भवन मोराजी, सागर, १५ अप्रैल १९८०

नामकरण योगसागर - आचार्यश्री विद्यासागर जी दीक्षा गुरु विद्याधर ने अपने छोटे भाई बहनों को बचपन में णमोकार मंत्र एवं भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल के चौबीस तीर्थंकरों के नाम विदेह क्षेत्र के तीर्थं करों के नाम याद

करा दिये थे। मुनि योगसागर कहते हैं बचपन से ही वे हमारे गुरु हैं और आज भी हैं।

बाल ब्र. शांतिनाथ जी - जन्म शरद पूर्णिमा सन् १७ अक्टूबर १९५८

ब्रह्मचर्य व्रत - महावीर जी राजस्थान सन् २ मई १९७५, सांतवी प्रतिमा - सवाई माधोपुर

क्षुल्लक दीक्षा - सिद्धक्षेत्र सोनागिर सन् १८ दिसम्बर १९७५, एलक दीक्षा - नैनागिर सिद्धक्षेत्र सन् ३१ अक्टूबर १९७८, मुनि दीक्षा - सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरी जी सन् ८ मार्च १९८०

नामकरण मुनि समयसागर जी - दीक्षा गुरु आचार्य श्री विद्यासागर जी एक दिन शांतिनाथ खड़े-खड़े,मूंगफली छिल रहे थे। उसके दानों के लाल छिलकों को मीडते हुये फूंक मारकर उड़ा रहे थे। सफेद दाना हाथ में लिये हुये थे तभी विद्याधर ने पूछा - क्या कर रहे हो ? शांतिनाथ ने कहा - शरीर और आत्मा अलग कर रहे हैं भैया। फिर सफेद दाना दिखाकर बोले देखो भैय्या यह आत्मा है।

बाल सखा मारूति लिंगायत - विद्याधर केबचपन के अनन्य मित्र मारूति है जिसका जन्म सन् १९४० सदलगा गाम जिला बेलगांव में हुआ। इनका परिवार अष्टगे परिवार के खेत में बटिया से काम करते थे। वे अष्टगे परिवार के सदस्य की भांति थे। विद्याधर से बड़े होने के बावजूद देर से स्कूल में प्रवेश लेने के कारण १ से ९ तक विद्याधर के साथ पढ़े बचपन से लेकर आज तक रिश्ता बैरागी भावों की गोद से जुड़ा हुआ है वे जाति से नहीं, कर्म से जैन है। दोनों ने १४ वर्ष में शादी तक ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था। विद्याधर के घर छोड़ने से लेकर सहभागिता से लेकर दीक्षा पर्यन्त तक सारी गतिविधियों के जानकर मारूति ही रहे। ब्र. विद्याधर अपने भावों के उर्ध्वगमन करने से लेकर चारित्र के आरोहण तक सारी जानकारी पत्रों के माध्यम से उन्हें भेजते थे। स्वर्णिम इतिहास को रचने वाले लगभग २०० पत्र आज इस युग के स्वर्णिम

दस्तावेज बन गये। विद्याधर की मुनि दीक्षा के बाद वे दर्शन करने हमेशा जाते रहते हैं।

उपसंहार - परिवार एक ऐसा उपवनहै जिसमें विविध रंग, रूप और गंध वाले पुष्प खिलते हैं। परन्तु घर का मुखिया उन्हें माली की भांति सजाकर तराशकर रखता है। त्याग, क्षमा, दया, सामंजस्य और सहानुभूति के सूत्रों के साथ अपनी संस्कृति को संस्कारों को पीढ़ी दर पीढ़ी रसास्वादन करता है।

संस्कारों की ऐसी कौन सी मिट्टी और कौन सा खाद पानी होगा जिस कारण यह महिमाशाली पूरा का पूरा परिवार धार्मिकता के रंग में रंगा हुआ है। तभी परिवार के सात भव्यात्माओं में मोक्ष पथ आरुढ़ हो गये हैं।

OOO

चतुर्थकाल के मुनि आचार्य श्री विद्यासागर जी

पं. कैलाश चन्द्र शास्त्री (बनारस)

ऐलाचार्य मुनि विद्यानन्द जी ने अपने भाषण में कहा था कि चतुर्थ काल के मुनि विद्यासागर जी हैं। उनका यह कथन यथार्थ हैं। रत्नकाण्ड श्रावकाचार में समन्तभद्राचार्य ने कहा है-

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रह
ज्ञानध्यान तपोरक्त स्तपस्वी सः प्रशस्यते।

अर्थ- जो विषयों की आशा के वश के रहित है, आरम्भ ओर परिग्रह से रहित है तथा ज्ञान ध्यान और तप में लीन रहता है वह साधु प्रशंसनीय है। आचार्य विद्यासागर जी में ये सभी बातें घठित होती है। उन्हें किसी भी लौकिक प्रतिष्ठा आदि की चाह नहीं है, वे किसी भी प्रकार का प्रारम्भ नहीं करते। उनके पास पीछी कमण्डलु के सिवाय कोई परिग्रह नहीं है न मोटर है और न एक पैसा है। उनके संघ के सब मुनि बाल ब्रह्मचारी युवा हैं। वे अपने संघ के साथ अनियत बिहार करते हैं। वे कब विहार करेंगे और कहां जायेंगे यह कभी भी किसी को मालूम नहीं होता। फिरोजाबाद मे हमे मालूम हुआ कि यहां उनसे

किसी ने प्रश्न किया कि महाराज अतिथि किसे कहते हैं। उन्होंने कहा कि इसका उत्तर कल देंगे। और दूसरे दिन पीछी कमण्डलु लेकर विहार कर गये।

पुराने दिगम्बर जैन साधु तो वनों में रहते थे। आज तो प्रायः नगरों में रहते हैं। मगर आचार्य विद्यासागर जी नगर में निवास न करके प्रायः वाहर में ही निवास करते हैं। जबलपुर में चातुर्मास किया तो नगर में न रहकर मढिया जो में रहे। सागर में भी वर्णी भवन में ही रहे। खुरई में तो पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर ही उनके संघ का आवास था। आगम में कहा है- जिस घर में गृहस्थों का आवास हो गया उनके और साधु के आने जाने का मार्ग एक हो, साधु को वहाँ नही रहना चाहिए। जहां स्त्रियों का, पशुओं आदि का आना जाना हो ऐसे स्थान भी साधु निवास के लिए वर्जित है। प्राचीन काल में साधु नगर के बाहर बन गुफा आदि में रहा करते थे।

प्रवचन सार में कहा कि आगम में दो प्रकार के मुनि कहे हैं - एक शुभोपयोगी और एक शुद्धोपयोगी। इसकी टीका में आचार्य अमृतचन्द्र ने यह प्रश्न किया है मुनिपद धारण करके भी जो कषाय का लक्ष होने से शुद्धोपयोगी की भुमिका पर आरोहण करने में असमर्थ है उन्हें साधु माना जाये या नहीं ? इसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा है कि आचार्य कुन्द कुन्द धम्मेण परिणद्मा दव्यादि गाथा से स्वयं ही कहा है कि शुभोपयोग का धर्म के साथ एकार्थ समभाग है। अतः शुभोपयोगी के भी धर्म का सद्भाव होने से शुभापयोगी भी साधु होते है, किन्तु ये शुद्धोपयोगियों के समकक्ष नहीं होते। आचार्य कुन्दकुन्द ने श्रमणों की प्रवृत्ति इस प्रकार कही है - शुभोपयागी मुनि शुद्धात्मा के अनुरागी होते हैं। अतः वे शुद्धात्मपयोगी श्रमणों का वन्दन उनके आने पर उनके लिए उठना, उनके पीछे-पीछे जाना, उनकी वैयावृत्त आदि करते हैं। दूसरों के अनुग्रह की भावना से दर्शन ज्ञान के उपदेश तथा जिन पूजा के उपदेश में प्रवृत्ति शुभापयोगी मुनि करते हैं। किन्तु जो शुभोपयागी मुनि ऐसा करते हुए अपने संयम की विराधना करता है यह गृहस्थ धर्म में प्रवेश करने के कारण मुनिपद से च्युत हो जाता है। इस लिए प्रत्येक प्रवृत्ति संयम के अनुकूल ही होना चाहिए क्योंकि प्रवृत्ति संयम की सिद्धि के लिए की जाती है। किन्तु जो निश्चय व्यवहार रूप मोक्ष मार्ग को नहीं जानते और पुण्य को ही मोक्ष का कारण मानते हैं। उनके साथ संसर्ग करने से हानि ही होती है।

अतः शुभोपयोगी भी साधु लौकिक जनों के साथ संपर्क से बचते हैं ।

आज तो साधुगण शुभोपयोगी ही है आचार्य विद्यासागर जी शुभोपयोगी श्रमणों का कर्तव्य पालन करते है अतः लौकिक जनों से संपर्क से बचते हैं । आज के साधु तो प्रातः जिन पूजा के उपदेश में ही प्रवृत्ति न करके जिन पूजा में भी प्रवृत्ति करते हैं।

प्रतिदिन देवदर्शन, देवपूजा, जिनमन्दिर व मूर्तियों के निर्माण में श्रावकों का कर्तव्य श्रावकाचार में कहा है, किन्तु आज तो यह सब साधुगण भी करते हैं। उनका उपयोग आत्मोत्मुख न होकर वर्हिमुखी होता है।

किन्तु आचार्य विद्यासागर जी पूजा-पाठ के प्रबंध में नहीं है। ये तो अपने शिष्यों को पढ़ाते है स्वयं पढ़ते है और श्रावकों को दर्शन और ज्ञान का सदुपदेश देते हैं।

उन्हें प. सुमेर चन्द्र जी दिवाकर ने लिखा था आपके द्वारा जैनाजैनों में धर्म की प्रभावना हो रही है। लोग पूछते है आचार्य शांति सागर जी महाराज बाहर जाते समय अपना प्रोग्राम कहा दिया करते थे। उनके संघ में चलने वाले श्रावक समूह जिन प्रतिमा को लेकर चलते थे। जिससे मुनिराज और गृहस्थ दोनों कल्याण करते थे।लोग आपसे सविनय यह जानना चाहते है कि आप बिना बताये विहार कर जाते हैं तथा बता देने से महाव्रत में क्षति होगीं।

महाराज ने इसका कोई उत्तर नही दिया क्योंकि प्रोग्राम बताकर श्रावक प्रतिमा से कुछ साथ में चले यह तो इसी गुण की प्रवृत्ति है। आज मुनिगण स्वयं स्वर्ण अपने साथ मूर्तिया रखते हैं, जबकि आगम में इस तरह का कोई उल्लेख नहीं है। मुनि स्वयं आत्म स्वरूप के जानने के लिए ही श्रावक देव दर्शन करते हैं । जब साधुगण जंगलों मे रहकर विहार करते थे तब यह राम प्रवृत्ति नहीं थी। आज तो साधुगण मात्र शरीर से नग्न होते हैं किन्तु उनके अन्तरंग में अपनी पूजा प्रतिष्ठा की भावना रहती है। आचार्य विद्यासागर जी ने ऐसी भावना नहीं है, इसी से वे चतुर्थकाल के मुनि तुल्य हैं ।

❍❍❍

एक नये नक्षत्र का उदय

पं. कैलाश चन्द्र शास्त्री (बनारस)

हमे अपने कुछ स्नेही मित्रों के अनुरोधवश मदनगंज किशनगढ़ जाना पड़ा। हमारे साथ डा. दरवारी लाल कोठिया भी थे। हम लोग ५ दिन वहां रहे। आचार्य विद्यासागर भी अपने संघ के साथ विराजमाने थे। ५ वर्ष पूर्व अजमेर में उन्हें प्रथम बार अपने गुरु आचार्य ज्ञानसागर जी के साथ नवमुनि के रूप में देखा था। एक छोटा-सा प्रवचन भी सुना था। उस समय यह सम्भावना भी सम्भव नहीं थी कि यह मुनि कुमार आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होकर एक सुवक्ता और सुमुनि के रूप में सामने आयेगा।

हमने ५ दिन दोनों समय उनके प्रवचन बड़ी रूचि और प्रसन्नता के साथ सुने। हमें किसी दिगम्बर मुनि या आचार्य के मुख से आचार्य कुन्दकुन्द समन्तभद्र, वीरसेन आदि की कृतियों के उद्धरण के साथ इतना सुसंगत भाषण सुनने का प्रथम अवसर था। उनकी शैली हृदयग्राही है, वाणी में रस है, मुद्रा आकर्षक है। उच्चारण शुद्ध और स्पष्ट है। प्राकृत गाथाएँ, संस्कृत के श्लोक और स्वरचित हिन्दी पद्य बड़े मधुर कण्ठ से पढ़ते हैं। समझाने का ढंग इतना उत्तम है। कि साधरण श्रोता भी समझ सकता है । भाषण में व्यंग और विनोद की भी पुट रहती है। कहीं का ईंट, कही का रोड़ा जैसी बात नहीं है और न किस्से कहानी की ही बहार रहती है। आदि से अन्त तक पूरा भाषण जैन सिद्धान्त और जैन अध्यात्म के साथ चारित्र की त्रिवेणी को लेते हुए प्रवाहित होता है। हमने उनके किसी भी भाषण में पिष्टपेषण नहीं देखा। उन्हें कुन्द कुन्द और समन्तभद्र के ग्रन्थ प्रायः कण्ठस्थ जैसे है। गाथा और श्लोक बोलकर अन्वयार्थ सहित उपस्थित करते हैं। वे संस्कृत के तो विद्वान है ही प्राकृत के भी ज्ञाता है। अंग्रेजी भी जानते हैं । अंग्रेजी उच्चारण भी उतना ही स्पष्ट है जितना ग्रन्थ भाषाओं का।

आठ वर्ष पूर्व वह बेलगांव जिले से उत्तर भारत में आये थे। उस समय केवल अपनी मातृ भाषा कन्नड़ जानते थे। उनके गुरु आचार्य ज्ञानसागर जी बनारस के स्याद्वाद महाविद्यालय में पढ़े थे। उन्होंने अपने शिष्य को भी संस्कृत

के माध्यम से पढ़ाकर न केवल संस्कृत भाषा का ही, किन्तु जैन सिद्धान्त, आगम और न्याय का भी ज्ञाता बना दिया। आज तो वह संस्कृत में कठिन पद्यात्मक ग्रन्थों की रचना करते हैं। और हिन्दी मे भी पद्य रचना करते हैं।

यह तो हुई उनकी ज्ञानविषयक योग्यता मुनिधर्म को दृष्टि से भी हमें उनमें कुछ वैशिष्ट्य प्रतीत हुआ। अभी उनकी अवस्था केवल अठ्ठाईस वर्ष है। शरीर दुबला-पतला है। सदा नीची दृष्टि किये ही बैठते है सभा में भी जब बोलते हैं तभी दृष्टि ऊपर उठाते हैं अन्यथा मौनपूर्वक नीची दृष्टि किये बैठे रहते हैं। न किसी से वार्तालाप करते है और न किसी आने जाने वाले की अपेक्षा करते हैं। अपने निवास स्थान पर भी हमने उन्हें सदा पद्मासन से नीची दृष्टि किये ही बैठे देखा। रात्रि में भी ऐसे ही बैठे रहते हैं। संकेत तक नहीं करते। कठोर सर्दी में घास तक का उपयोग नहीं करते। उनके दो क्षुल्लक शिष्य भी अपने गुरु का ही अनुकरण करते हैं। हम लोग गये तो उनके मुख पर कोई हर्ष या विवाद नहीं देखा। नमस्कार किया तो आशीर्वाद के लिए हाथ भर उठा दिया। विदा होते समय हमने कहा-आज हम लोग जा रहे तो बोले जाना आना तो लगा हुआ है।

हमारे सामने ही उनके गांव के दो नवयुवक आये जो उनके पास ही अध्ययन करेंगे। किन्तु उन्हें कोई उत्सुकता नहीं कि ये हमारे गांव से आये हैं हम इनसे उधर के समाचर जाने। हमने उन्हें कभी किसी से स्वंय बतियाते नहीं देखा। दिगम्बर युवा मुनि का यह निस्पृह औदासीन्य भाव सचमुच में हमारे लिए विस्मय कारक था। आज के कुछ आचार्य और मुनियों की प्रवृत्ति को देखकर हमारे मन में एक वितृण्णा का भाव आ गया था वह न केवल दूर हुआ किन्तु हमारी इस श्रद्धा को बल मिला कि इस युग मे भी सच्चे मुनि के रूप में रहा जा सकता है। भोजन में नमक, चीनी और घी का भी प्रश्न नहीं रहा। जिस दिन हम लोग मदनगंज से अजमेर आये उसके दूसरे दिन ही वे बिना किसी से कहे अपनी शिष्यमंडली के साथ विहार कर गये।

आज हमने उनके पास कुछ भी परिग्रह नहीं पाया उन्हें सदा ध्यान और अध्ययन से ही संलग्न पाया। किन्तु कल क्या होगा यह हम नहीं कह सकते। जैन

समाज रूपी कूप में जो भांग पड़ी हुई है। उससे ये कब तक वचे रहेंगे यही चिन्त्य है। उनके गुरु का आचार्य पद कुछ लोगों की आलोचना का विषय रहा। और उन्होंने ही इन्हें अपना आचार्य पद दिया है अतः वह भी किन्ही के लिये आलोच्य हो सकता है। किन्तु आज के कई एक आचार्यों और मुनियों से आचार्य विद्यासागर हमें तो श्रेष्ठ ही प्रतीत हुए हैं। अभी तो वे किसी भी प्रपच्च मे नहीं है किन्तु भक्तगणों के प्रवच्चों में वे कब तक अपने को बचाये रहते हैं, यही देखना है। हम तो सब से यही प्रार्थना करते हैं कि वे इन्हें अपने सुपय पर चलने दें तथा किसी प्रकार की मृग मरीचिका में फँसाने की चेष्टा न करें। साधु और आचार्यों से भी प्रार्थना है कि वे उन्हें आशीर्वाद दें कि यह नया नक्षत्र आदर्श मार्ग का सच्चा प्रतीक बनकर हमारे जैसे मुनि आलोचकों को श्रद्धा का भी भाजन बने। किसी को भी उनसे किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए और उनकी निरीह वृत्ति को प्रोत्साहन देना चाहिए। उनके पास जाने पर उन्हें नमस्कारादि करने पर भी यदि वे उदासीन रहते हैं। तो इसे उनका अहंकार और अपना अपमान नहीं मानना चाहिए। सच्चे निस्पृही दिगम्बर साधु की यही वृत्ति होती है। आत्मकल्याण इसी वृत्ति से होता है। संसार के प्रपच्च में फसने के लिए गृहत्याग बृद्धिमानी नहीं है। यह तो वैसा ही है जैसे अपनी पत्नी को त्याग कर पत्नी के पोषण में जीवन बिताना। पुराने समय में इसी प्रपच्च से बचने के लिए साधुजन बन में निवास करते थे और वे सांसरिक प्रपच्च से बचे रहते थे। परिस्थिति बदलने से वह स्थिति कायम नहीं रही और बनवास आ स्थान नगरावास ने ले लिया। इससे ऐसी स्थिति आती जाती है कि साधु अपनी परिग्रह त्याग कर पराई परिग्रह के चक्कर में पडता जाता है। वह शरीर से नग्न अवश्य होता है किन्तु मन से नग्न नहीं रह पाता। रहना भी चाहे तो भक्त रहने नहीं देते। बहुत से भक्त उन्हें घेर लेते हैं। और साधु उनके चक्र में फँस जाता है।

यह नही भूलना चाहिए कि आज के वाता वरण में मोक्ष को भावना से साधु के पास कदाचित ही कोई जाता है। किन्तु साधु के पास आने जाने से अनायास हीं धर्मात्मा का पद प्राप्त हो जाता है। यह ख्याति भी लाभ ही है। फिर

आज का युग अर्थयुग है। अर्थ ने सबको अपना दास बना लिया है । इसी अर्थ की आकांक्षा से धनी भी साधु की सेवा करके और भी धनी बनना चाहता है। इसके लिए वह साधु के निमित्त धन भी खर्च करता है। अब यदि साधु ने भी अपना व्यय भार बढ़ा लिया है संघ के नाम पर मोटर आदि इकट्ठी कर ली है। या कहीं कोई मंदिर मूर्ति या अपने नाम की संस्था आदि खोलली है या अपनी ख्याति, लाभ पूजा आदि की भावना रखता है तो वह धन के चक्र में फंसे बिना नहीं रहता। ऐसा साधू शरीर से नग्न रहता है किन्तु मन से नग्न नहीं रहता।

ooo

साधना के सुमेरु आचार्य श्री विद्यासागर महाराज

डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत (अध्यक्ष-शास्त्री परिषद्)

आचार्य श्री विद्यासागर महाराज की साधना और त्याग तपस्या इतनी उत्कृष्ट है कि वह शुभोपयोग और शुद्धोपयोग की साधिका है। इन जैसे साधक ही सच्चे सुख के भाक्ता होते हैं । पञ्चाध्यायी में भी कहा गया है-

शक्र-चक्र-धरादीनां केवलं पुण्य-शालिनाम्।

तृष्णाबीजं रतिस्तेषां सुखावाप्तिः कुतस्तनी ॥

महान् पुण्यशाली इन्द्र चक्रवर्ती आदि का सुख तृष्णा का बीज है, इनको सच्चे सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? सच्चा सुख शुद्धोपयोगी परमवीतराग यथाख्यातचारित्रधारी मुनीश्वर को प्राप्त होता है।

आचार्य श्री ज्ञान-विद्या के सागर हैं , इन्होंने साहित्य समृद्धि में अकल्पनीय योगदान किया है। आचार्य श्री की प्रज्ञा प्रतिभा और अपूर्व मेधा का ही सुफल मूकमाटी, नर्मदा के नरम कंकर, डूबो मत डुबकी, तोता क्यों रोता है, निजानुभवशतक, मुक्तशतक, दोहाशतक, पूर्णोदयशतक, सर्वोदयशतक, विविध स्तुतियों एवं भजन आदि रचनाएँ हैं। इनमें आचार्य श्री की कारयित्री और

भावयित्री दोनों प्रतिभाएँ स्पष्ट ज्ञात होती है। इन स्वतंत्र रचनाओं के साथ पद्यानुवाद रूप जैनगीता, कुन्दकुन्द का कुन्दन, निजामृतपान, द्रव्यसंग्रह, अष्टपाहुड़, नियमसार, द्वादशानुप्रेक्षा, समन्तभद्र की भद्रता, गुणोदय, रयणमंजूषा, आप्तमीमांसा, गोमटेश, अष्टक, कल्याण मन्दिर स्त्रोत, नन्दीश्वर भक्ति, समाधि सुधा शतकम, योगसागर, एकीभावस्तोत्र, आदि कृतियाँ लोक विश्रुत हैं। जिनमें मूल की सरंक्षा के साथ अदभुत लालित्य प्रदान किया है। काव्य के सघः परानिवृति रूप प्रयोजन की सिद्धि होती है। संस्कृत शतकों में सिद्धान्त की गहराई के साथ-साथ काव्य का अपूर्व सौष्ठव है। इनके कृतित्व और व्यक्तित्व से सम्पूर्ण राष्ट्र और समाज प्रभावित है। ये जैनधर्म, समाज और राष्ट्र की अनुपम निधि हैं । सांसारिक वैभव और सुख इन्हें किंचित भी ईष्ट नहीं है और इन्द्रिय जनित सुख रूप विभाव परणति से भी सर्वथा दूर हैं। सांसारिक सुखों के प्रति सदैव अनासक्त रहने वाले हैं। मात्र आत्मानन्द के भोक्ता हैं, वही सच्चा सुख है। जैसे तिल में तैल व्याप्त है उसी प्रकार शरीर में आत्मा व्याप्त है। निज की आत्मा निज का अवश्य मिलेगी, इसी लक्ष्य को बनाकर निरन्तर आत्मसाधना में संलग्न हैं। उन्हें प्रबोध है कि आत्मोत्थान और आध्यात्मिक शान्ति के अनुपमस्रोत जिनमन्दिर, जिनाचार्या, स्वाध्याय और मंत्रोच्चार हैं। इन साधनों का आलम्बन ही जीवन को सुख शान्तिपूर्वक बना सकता है।

सिद्धि लक्ष्मी अनके अधीन होगी क्योंकि जो विविध तपरत्न भूषण धारी, पवित्र ज्ञान वाले शीलरूप वस्त्र को धारणकर सौम्य शरीर वाले होते हैं सुर लक्ष्मी तथा सिद्धि लक्ष्मी भी उनके अधीन रहती है। आचार्य प्रवर को संसार भोगोपभोग बाल्यकाल से ही नहीं लुभा पाये तृणवत उनका परित्याग कर साधना के पथ पर आरूढ़ हुए। तप साधना ज्ञान आराधना जो महानता के द्योतक हैं । इनका आश्रय लेकर आध्यात्मिकता से ओतप्रोत हैं। आध्यात्मिक प्रभाव की विशेषता यही है कि अध्यात्मवादी आन्तरिक दृष्टि से कठोर और तपस्वी होता है। तथा बाह्यतः नम्र और क्षमाशील होता है। आचार्य श्री का व्यक्तित्व उक्त आध्यात्मिक प्रभाव से पूर्णतया प्रभावित है और आचार्य परमेष्ठी के छत्तीस मूलगुणों का सम्यक् रूपेण पालन करते हुए अपने शिष्यों को अट्ठाईस मूलगुणों का पालन कराते हैं। सतत ज्ञान दर्शनादि में प्रतिबद्ध रहते हैं। अतः पूर्ण श्रामण्यवान् हैं। ऐसे साधकों के विषय में ही आचार्य श्री कुन्द कुन्द स्वामी का कथन सार्थक है -

चरदि णिवद्धो णिच्चं समणो णाणम्मि दंसणमुहम्मि।

पयदो मूलगुणेसु य जो सो पडिपुण्ण सामण्णो ॥ प्रवचनसार १४

आचार्य विद्यासागर जी की चर्या व एकांत में केशलोंच

ऐलक सिद्धांतसागर महाराज

अप्रैल शनिवार सन् १९७८ की घटना है जब मैंने आचार्य विद्यासागर जी महाराज को पहली बार केशलोंच करते हुए देखा था। पटेरिया जी का छोटा सा कक्ष जिसमें वे केशलोंच कर रहे थे। नगर में केशलोंच की बात आग की तरह फैली, लोग दोड़ते- दोड़ते केशलोंच देखने के लिए एकत्रित होने लगे तथा छोटा कक्ष होने के कारण सभी को केशलोंच देखने में असुविधा हो रही थी, तभी पटेरिया अतिशय क्षेत्र के मंत्री बालचंद जी से लोग उलाहना देकर कह रहे थे सेठी जी हर साधुका केशलोंच समारोह पूर्वक होता है। आपने इतने बड़े आचार्य का केशलोंच समारोह का आयोजन क्यों नही कराया ?

सेठ बालचंद जी ने सबको एक ही समाधान दिया कि ऐसा नहीं जानते थे कि केशलोंच आज ही होगा। वैसे मैंने दिनेश शाह को कह रखा था कि भैया पूज्य आचार्य श्री से चर्चा कर लेना कि वे केशलोंच कब करेंगे ? और क्या व्यवस्था करना पड़ेगी ? दिनेश ने आचार्य श्री से चर्चा थी, परन्तु उन्होंने एक वाक्य में जबाव दिया, देखो क्या होता है ? और आज उन्होंने अपना केशलोंच कर लिया। किसी को हवा तक नहीं लगने दी। इस ऊहा पोह आत्मिक चर्चा का कोई निष्कर्ष नहीं निकला परन्तु यह बात जरूर सबके मस्तिष्क में तैरती रही कि केशलोंच समारोह पूर्वक होना चाहिए था। आचार्य श्री ने एकांत कक्ष में केशलोंच किया है इसका कोई न कोई कारण अवश्य होगा। दूसरे दिन दो अप्रैल रविवार को पूज्य आचार्य श्री ने बिना बतायें ही बांसा तारखेड़ा की ओर संघ सहित बिहार कर दिया। इस घटना के बाद पुनः मुझे एक झटका सा लगा, परन्तु एकांत केशलोंच कि बात हमेशा ही मेरे मन में घूमती रही, किसी से भी मैंने प्रश्न किया तो विद्वानों ने

एक उत्तर दिया कि भैया अभी तक जितने भी साधु केशलोंच करते है, वे सब मंच पर बैठकर समारोह पूर्वक ही करते हैं और यहाँ इससे जैनधर्म की बहुत बड़ी प्रभावना होती है। अजैन लोग भी जैन साधु का केशलोंच देखकर उनकी महिमा गाते हुए थकते नहीं है तथा केशलोंच उपरांत जैन साधु के प्रवचन का लाभ भी मिलता है।

दिन बीतते गये मैं भी २० सितम्बर से आचार्य श्री विद्यासागर जी के संघ में रहने लगा मुझे आचार्य श्री ने संघ में रहने की अनुमति दे दी। सिद्ध क्षेत्र रेसन्धिगिरी से कुण्डलपुर की ओर विहार हो गया। आचार्य श्री ने कुण्डलपुर में शीत योग धारण किया और सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ की पाँचवे अध्याय से वाचना प्रारंभ कर दी। नौवें अध्याय के नौवें सूत्र पर पहुँचे तो एक शंका उत्पन्न की गई कि केशलोंच को परिषह क्यों नही माना जाता है तब आचार्य श्री ने मूलग्रंथ का पाठ करते हुए कहा -

केशलुन्च संस्काराभ्य मुतपन्नखेदसहनं मलसामा-
न्यसहनेऽन्तर्भवतीति न पृथगुक्तम। सर्वाथसिद्धि ९/९

केशलोंच या केशों का संस्कार न करने से उत्पन्न खेद को सहना होता है, यह मल परिषह सामान्य में ही अन्तरभूत होता है, अतः उसको पृथक से नहीं गिनाया है। आचार्य श्री ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा कि इसलिए मैं एकान्त में केशलोंच करता हूँ क्योंकि किसी मल त्याग की क्रिया समारोह पूर्वक तो नहीं की जा सकती है इसलिए केशलोंच सार्वजनिक तौर पर नहीं दृढ़ अविमत है।केशलोंच क्रिया प्रदर्शन का विषय नहींबन सकती है और न ही इसे प्रदर्शन का विषय बनाना चाहिए।मुझे मेरी बहुत दिनों कि शंका का समाधान मिला तथा यह भी बात मेरे हृदय में बैठ गई कि आचार्य श्री का एकान्त केशलोंच करना आगम अनुकूल है।

❍❍❍

आचार्य विद्यासागर जी के चिन्तन में मोक्षमार्ग में साधक शुभोपयोग

ब्र. विनोद जैन, छतरपुर

पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने शुभोपयोग के सम्बन्ध में एक सूत्र वाक्य उद्भूत किया है कि-शुभोपयोग के माध्यम से मोक्ष भले ही प्राप्त न हो किन्तु मोक्षमार्ग अवश्य प्राप्त होता है, क्योंकि शुभापयोग में विशुद्धि परिणाम का बाहुल्य होने से और कषायों की मन्दता होने से और मिथ्यात्व का अभाव होने से शुभोपयोग में मोक्षमार्ग की गारन्टी होती है एवं शुभोपयोग में लेश्यायों के परिवर्तन होने से कभी-कभी ऐसा लगता है कि शुभोपयोगी जीव ऐसे कार्य कैसे कर सकता है किन्तु लेश्याओं का परिणमन अलग चीज है और शुभोपयोग का परिणाम अलग विषय है। शुभोपयोग का निर्णय दर्शन मोहनीय के उपशम, क्षय, क्षयोपशम से होता है और लेश्यायों का परिणाम कषाय से अनुरञ्जित योग से होता है।

शुभयोग और शुभोपयोग में जो अन्तर नहीं समझ पाये हैं वे शुभापयोग को मोक्षमार्ग में बाधक मानने लगते हैं किन्तु शुभोपयोग मोह के क्षयोपशम का परिणाम है जबकि शुभयोग मन-वचन-काय की शुभप्रवृत्ति का नाम है इसका सम्बन्ध मिथ्यात्व, सम्यक्तव से नहीं है जबकि अशुभोपयोग, और शुभोपयोग का सम्बन्ध मिथ्यात्व सम्यक्तव से है। इस विषय से सम्बन्धित दो आर्याछन्द वृहद् संग्रह ग्रन्थ की टीका में मुख्यता से उपलब्ध होते है-

उद्वम मिथ्यात्वविषं भावय दृष्टिं च कुरु परां भक्तिम्।
भावनमस्काररतो ज्ञाने युक्तो भव सदापि ॥१॥
पञ्चमहाव्रतरक्षां कोपचतुष्कस्य निग्रहं परमम्।
दुर्दान्तेन्द्रिय विजयं तपः सिद्धि विद्यौ कुरुद्योगम् ॥२॥

मिथ्यात्व रूपी विष का वमन जिसने कर दिया है, सम्यग्दर्शन की भावना प्राप्त कर ली है और उत्कृष्ट भक्ति के रूप में तत्पर हो गया है तथा भाव नमस्कार करने में तत्पर हैं, पांच महाव्रतों का पालन करता है, एवं क्रोधादि

चार कषायों का निग्रह करता है, प्रवल इन्द्रिय शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेता है, बाह्य और अन्तरङ्ग तप को करने में उद्यमशील है वही शुभोपयोग रूप परिणाम से युक्त होता हैं। इससे विपरीत अशुभोपयोगी होता है।

शुभोपयोग और सरागचारित्र की स्थिति एक समान होती है। चरणानुयोग के शास्त्रों में कहे अनुसार पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति रूप अपहृत चारित्र या संयम नामक शुभोपयोग लक्षण से सराग चारित्र वाला होता है। इस आशय का द्रव्य संग्रह की ४५वी गाथा की टीका में सन्दर्भ उपलब्ध होता है वह इस प्रकार है।

तद्याराधनादि चरण शास्त्रोक्तप्रकारेण पञ्चमहाव्रतपञ्चसमिति त्रिगुप्ति रूपमव्यपहृतसंयमाख्यं शुभोपयोगलक्षणं सराग चारित्राभि घानं भवति।

तथा अष्टपाहुड़ के भावपाहुड़ की गाथा १५३ में आचार्य कुन्द कुन्द देव ने इस आशय का कथन किया है कि जो पुरुष परम भक्ति अनुराग से जिनवर के चरण कमलों को नमस्कार करते हैं वे श्रेष्ठ भाव रूप शस्त्र से जन्म अर्थात् संसार रूपी बेल के मूल जो मिथ्यात्वादि कर्म हैं , उन्हें नष्ट कर देते हैं। जिणवरचरणंबुरुहं णमंति जे परमत्ति राएण।

ते जम्मवेलिमूलं खणंति बरभावसत्थेण ॥१५३॥ भाव.पाहुड़

इससे यह सिद्ध होता है कि मोक्षमार्ग का प्रारम्भ शुभोपयोग से होता है और शुभोपयोग मोक्ष प्राप्ति में विपरीत रूप माना जा सकता है किन्तु मोक्षमार्ग में शुभोपयोग कभी बाधक नहीं होता है अतः आचार्य व्रहम देव सूरि जी ने स्वयं शुभोपयोग को शुद्धोपयोग का साधक कहा है तथा शुभोपयोगात्मक सराग चारित्र साक्षात् मोक्षप्राप्ति का कारण तो नहीं है किन्तु परम्परा से मोक्ष का कारण है। प्रवचनसार की ६वीं गाथा की टीका में आचार्य जयसेन जी ने कहा- सरागचारित्रात्पुनर्देवासुर मनुष्यराजविभूतिजनको मुख्य वृत्त्या विशिष्ट पुण्य बन्धो भवति, परम्परया निर्वाणं चेति। इस कथन से यह धारणा दृढ़ होती है कि शुभोपयोग परम्परा से मोक्ष तक ले जाने में सक्षम है। इसी प्रकार प्रवचनसार की ११वी गाथा की टीका मे आचार्य जयसेन जी ने शुभोपयोग

कोआकुलता उत्पन्न कराने वाले स्वर्ग फल को प्रतिपादित किया है पश्चात् इसी शुभोपयोग के आधार पर मोक्ष को प्राप्त करता है।

निर्विकल्पसमाधिरूप शुद्धोपयोग शक्तयभावे सति यदा शुभोपयोगरूप सरागचारित्रेण परिणमति तदा पूर्वमानाकुत्वलक्षण पारमार्थिक सुख विपरीत माकुलत्वोपादकं स्वर्ग सुख लभते। पश्चात् परमसमाधि सामग्री सद्भावे मोक्षं च लभते इति सूत्रार्थः।

इसी तरह परमात्म प्रकाश में पहिले अध्याय के ६२वें दोहे की टीका करते हुए आचार्य ब्रह्मदेव सूरि जी ने लिखा है कि ''आहारभयभैषज्य शास्त्रदानेन सम्यक्वरहितेन भोगो लभ्यते। सम्यक्तवसहिते न तु यद्यपि परम्परा निर्वाणं लभ्यते।'' आहार, अभय, औषध, और शास्त्र दान के माध्यम से यदि सम्यक्त्व रहित होकर है तो भोगभूमि को प्राप्त करता है तथा सम्यक्त्व सहित दानादि करने वाला परम्परा से मोक्ष को प्राप्त करता है। इस प्रकरण में शुभोपयोग प्रासंगिक है। इसलिए शुभापयोग को परम्परा से मोक्ष का साधक मानना कहीं से कहीं तक अनुचित नहीं है।

शुभोपयोग विषय,कषाय,और अशुभ योग की प्रवृत्ति से बचने का श्रेष्ठ उपाय है तथा आर्त्तरौद्र ध्यान से मुक्ति दिलाने वाला शुभोपयोग ही है। अतः शुभोपयोगी श्रावक या साधु दानादि वैय्यावृत्ति आदि के माध्यम से सत्संगति को प्राप्त होता है इसी सत्संगति के बाद ऐसा शुभोपयोगी श्रावक अथवा श्रमण परम्परा से मोक्ष को प्राप्त करता है। इस धारणा को संपोषित करते हुए आचार्य जयसेन जी ने प्रवचन सार की गाथा ५४ वीं तात्पर्यवृत्ति टीका मे लिखा है विषयकषायनिमित्तोत्पन्नो नार्त्तरौद्रध्यानठयेन परिणतानां गृहस्थानामात्माश्रित निश्चय धर्मस्यावकाशो नास्ति वैयावृत्यादिधर्मेण दुर्ध्यानवञ्चना भवति तपोधन संसर्गेण निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गोपदेशलाओ भवति। ततश्च परंपरया निर्वाणं लभत इत्यभिप्रायः ॥५४॥

चूंकि शुभोपयोग सम्यक्व सहित ही होता है तथा मुख्यवृत्ति से पुण्य बंध का कारण होता है और परम्परा से मोक्ष का कारण होता है प्रवचन सार गाथा

५५ तात्पर्य टीका में सम्यक्तवपूर्वकः शुभोपयोग भवति तदा मुख्यवृत्या पुण्यबन्धो भवति परम्परया निर्वाणं च। नो चेत् पुण्य बन्ध मात्रमेव ॥५५॥

अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु के गुण स्मरण, दान पूजादि शुभोपयोग से संसार स्थिति का छेद करने वाला तीर्थंकर कर्म आदि का विशिष्ट पुण्य शुभोपयोग के माध्यम से बंधता है। इसलिए शुभापयोग मोक्षमार्ग में बाधक नहीं है इस आशय का कथन आचार्य ब्रह्मदेव जी ने परमात्म प्रकाश के अध्याय दूसरे में दोहा ६१ वीं टीका में लिखा है - अर्हत्सिद्धा चार्योपाध्याय साधुगुणस्मरणदानपूजादिना संसारस्थितिच्छेद पूर्वकं तीर्थंकरनाम कर्मादि विशिष्टगुणपुण्य मनीहित वृत्त्या बहनाति।

अतः पूर्वोक्त प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि शुभोपयोग साक्षात् मोक्ष का कारण तो नहीं है किन्तु परम्परा मोक्ष एवं साक्षात् मोक्षमार्ग में बाधक नहीं है। तथा संवर और निर्जरा का भी कारण है।

❍❍❍

आचार्य विद्यासागर जी के चिन्तन में ''पुण्य'' हेय कब ? और क्यों ?

एलक सिद्धांत सागर महाराज

जो आत्मा को पवित्र करता है या जिससे आत्मा पवित्र होता है वह पुण्य है। पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम्। सवार्थ सिद्धि एवं राज वार्तिक ६/३१४।

आचार्य जयसेन जी के शब्दों में दान पूजा षडावश्यकादि रूप जीव के शुभ परिणाम भाव पुण्य हैं तथा प्रवचन सार की १८१ वी. गाथा में शुभ परिणामो पुण्णं शुभ परिणाम को पुण्य कहा है। धर्म परीक्षा के ११४ श्लोक में पूजा, भक्ति, दया, दानादि शुभ क्रिया रूप व्यवहार धर्म पुण्य है। इन सभी ग्रन्थों में पुण्य का लक्षण, पूजा, दान आदि षड्कर्मों को सुनिश्चित किया है इनके माध्यम से जीव शुभ भाव को प्राप्त होकर भाव पुण्य की ओर अग्रसर होता है। परमार्थ की दृष्टि से पुण्य और पाप समान हैं क्योंकि इन दोनों में राग

भाव प्रशस्त और अप्रशस्त रूप से होता है, दोनों की समानता बताने के लिए आचार्य कुन्द कुन्द देव ने पुण्य को सोने की बेड़ी और पाप को लोहे की बेड़ी कहा है।

सोवण्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पिजह पुरिसं।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं ॥१४६॥ समयसार

इसी आशय का प्रकरण योगसागर की ७२ वी. गाथा और प्रवचन सार की ७७ वी. गाथा में प्राप्त होता है तथा पुण्य और पाप दोनों से ही कर्म का बन्ध शुभाशुभ के रूप में होता है तथा दोनों का हेय मानने का कारण राग परिणाम है, परन्तु श्रमण और श्रावक की निचली अवस्था में आर्त्त रौद्र ध्यान से बचने के लिए एवं विषय कषायों से विरक्ति पाने के लिए पुण्य का अनुसरण करना कथञ्चित् इष्ट होता है। पुण्य के लिए कथञ्चित् इष्ट मानते हुए कई आचार्यों ने पुरुषार्थ पूर्वक पुण्यार्जन की प्रेरणा दी है।

पुण्यार्जन की प्रेरणा जिन आचार्यों ने दी है उनमें स्वामी कार्तिकेय, शिवकोटि आर्य, जयसेनाचार्य, ब्रह्मदेव सूरि, आचार्य पद्मनन्दि, आचार्य गुणभद्र, मुख्य रूप से हैं। कुरलकाव्य में भी पुण्य की प्रेरणा देने का सफल प्रयास किया है। आत्मानुशासन के २३,३१, ३७ इन तीन काव्यों के माध्यम से कहा गया है कि विद्वान् मनुष्य आत्म परिणाम को ही पुण्य और पाप का कारण बतलाते हैं , इसलिए अपने निर्मल परिणाम के द्वारा पूर्वोपार्जित पाप की निर्जरा, नवीन पाप का निरोध और पुण्य का उपार्जन करना चाहिए। हे भव्य जीव ! तू पुण्य कार्य को कर क्योंकि पुण्यवान् प्राणी के ऊपर असाधारण उपद्रव भी कोई प्रभाव नहीं डाल सकता है। उल्टा ही वह उपद्रव उसके लिए सम्पत्ति का साधन बन जाता है। इसलिए योग्य अयोग्य कार्य का विचार करने वाले श्रेष्ठ जन भले प्रकार से विचार करके इस लोक सम्बन्धी कार्य के विषय में विशेष प्रयत्न नहीं करते हैं किन्तु आगामी भवों को सुन्दर बनाने के लिए ही वे निरन्तर प्रीति पूर्वक अतिशय प्रयत्न करते हैं।

स्वामी कार्तिकेय अनुप्रेक्षा में (४३७ गाथा) कहा है प्राणियों में धर्म और अधर्म का अनेक प्रकार का माहात्म्य प्रत्यक्ष देखकर धर्म का आचरण करो और पाप से दूर ही रहा-

इय पच्चक्खं पेच्छइ धम्माहम्माण विविहमाहप्पं।
धम्मं आयरह सया पावं दूरेण परिहरई ॥ ४३७॥

भोग मूलक पुण्य का निषेध आचार्य श्री ने किया है किन्तु योग मूलक पुण्य का निषेध पूज्य श्री ने कभी नहीं किया हैं। एकान्त से क्योंकि पुण्य का निषेध करने वालों को एक बार पुनः विचार करना होगा कि सातावेदनीय का निषेध १३वें गुणस्थानवर्ती केवलज्ञानी के भी नहीं होता है। सातिशय पुण्य प्रशस्त राग वाले जीवों को ही प्राप्त होता है। इस पुण्य के कारण जीव इन्द्र चक्रवर्ती आदि का वैभव प्राप्त करके योग के साथ महाव्रत धारण करके मोक्ष को प्राप्त करता है। इसलिए पुण्य मोक्षमार्ग में एकान्त से बाधक नहीं है अपितु मोक्षमार्ग में साधक ही बनता है यह बात अलग है कि सम्पूर्ण कर्म क्षय -रूप मोक्ष प्राप्त करने में पुण्य बाधक है।

पुण्य चार प्रकार का होता है १. पुण्य कर्म प्रकृति २. पुण्य का फल ३. आवश्यक क्रिया रूप पुण्य ४. भाव पुण्य (प्रशस्त राग रूप पुण्य)

प्रकृति रूप पुण्य का आश्रव १३ वें गुणस्थान तक होता है तथा सातिशय पुण्य का आस्रव तो चतुर्थ गुणस्थान से प्रारम्भ होता है। इस पुण्यास्रव को बुद्धि पूर्वक गुणस्थान क्रम से कोई भी रोकने में सक्षम नहीं है , किन्तु शुद्धापयोगी जीवों के भी सातिशय पुण्य का बंध चतुस्थानीय रूप होता है।

पुण्य का फल भोग रूप होता है। मोह के साथ जो पुण्य के फल को भोगता है , वह मोक्षमार्ग से च्युत होता है किन्तु जो पुण्य का फल योगरूप होता है , वह अरहन्त अवस्था को प्राप्त करता है। इसलिए आचार्य कुन्द कुन्द देव प्रवचन सार ग्रन्थ में गाथा ४५ में पुण्यफला अरहन्ता कहा है। आचार्य जयसेन जी ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है। पंच महाकल्याणक पूजा जनकं त्रैलोक्यविजयकरं थत्तीर्थकरनाम पुण्यकर्म तत्फलभूता अर्हन्तो भवन्ति। पंचमहाकल्याणक पूजा के जनक तीन लोक के विजय करने वाली तीर्थं कर नाम जो पुण्यकर्म है उसका फल अरहन्त होता है।

देवपूजा आदि आवश्यक कर्म सम्यक्त्व वर्धिनी क्रिया के अन्तर्गत आते हैं। इनसे सम्यक्त्व की उत्पत्ति एवं वृद्धि होती है और इससे ही मोक्षमार्ग का प्रारम्भ होता है। नियमसार में कुन्दकुन्द देव ने कहा है जो आवश्यकों की

उपेक्षा करता है वह बहिरात्मा होता है कहा है-

आवासएण जुत्तो समणो सो होदि अंतरंगप्पा।
आवासयपरिहीणो समणो सो होदि बहिरप्पा ।। १४९।।

जो आवश्यकों से युक्त होता है, वह श्रमण अन्तरात्मा होता है तथा आवश्यक से रहित श्रमण बहिरात्मा होता है। श्स गा. के आधार पर यह कहा जा सकता है कि क्रियारूप पुण्य या पुण्य की क्रिया हो हेय नहीं कहा जा सकता है।

प्रशस्त राग रूप पुण्य निचली भूमिका में बुद्धि पूर्वक त्याग नहीं किया जा सकता है। प्रशस्त राग रूप पुण्य का त्याग किया नहीं जाता है, अपितु शुद्धोपयोग में पहुँचने के बाद स्वयमेव ही छूट जाता है।

अब इन चार प्रकार के पुण्यों की निष्पक्ष समीक्षा करने के बाद हम इस निर्णय पर स्थिर होते हैं कि पुण्य फल का त्याग करने वाला आवश्यक कर्म अर्थात् क्रिया रूप पुण्य में लीन हो जाता है तथा ज्ञान और वैराग्य के पथ पर चल पड़ता है और वह पीछे मुड़कर नहीं देखता है कि कौन सी पुण्य प्रकृति का बंध हो रहा है और कौन सी पुण्य प्रकृति का बंध नहीं हो रहा है। अपितु वह तो निर्विकल्प समाधि में लीन होकर भावपुण्य रूप प्रशस्त राग से अपना नाता तोड़ लेता है।

पुण्य हेय की मीमांसा करते समय हमें यह याद रखना होगा कि प्रशस्त राग रूप भाव पुण्य एवं फल के भोगने की आकांक्षा को सर्वज्ञ प्रथम हेय जानकर उनसे नाता तोड़ना होगा। किन्तु क्रियारूप पुण्य एवं पुण्य प्रकृति रूप, द्रव्य पुण्य के प्रति माध्यस्थता बनानी होगी। मैत्री, प्रेम, करूणा, और समता रूप पुण्य के भाव को सदैव अपनाना होगा। यदि हम इससे विपरीत क्रिया रूप पुण्य और पुण्य की भावना को हेय मानेंगे तो निश्चित तौर पर मोक्षमार्ग से विपरीत चले जायेगें।

अतः हम कह सकते है कि पुण्य हेय के विषय में सर्वप्रथम पुण्य के फल को हेय मानना होगा तथा साधना के क्रम में आगे बढ़ते हुए प्रशस्त राग को रूचि पूर्वक, निर्वाहित करना होगा। यह प्रशस्त राग स्वतः ही साधना के स्तर बढ़ने पर हेय हो जायेगा।

OOO

आचार्य विद्यासागर जी के चिंतन मे सम्यग्दर्शन विषयक चिन्तन

डॉ. मुकेश जैन 'विमल', दिल्ली

जैन दर्शन में मोक्षमार्ग का प्राथमिक आधार सम्यक् दर्शन हैं। सम्यक् दर्शन के विषय में विभिन्न पारम्परिक विचार धारायें परस्पर विरोध को प्राप्त होती रही हैं। अनेक आचार्यों के द्वारा दिये गये सम्यक् दर्शन के लक्षण, भाषा, और प्रवाह की दृष्टि से साधकों में सदैव चर्चा का विषय बनते रहे हैं। सम्यक् दर्शन के लक्षणों में एक विचार धारा ने शुद्धात्म श्रद्धान को सम्यक् दर्शन कहा है किन्तु तत्त्वार्थ सूत्र के प्रणेता आचार्य उमास्वामी जी ने तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यक्दर्शन का लक्षण स्थिरता पूर्वक प्रस्तुत किया हैं। सम्यग्दर्शनों के लक्षणों में कही उलझाव नहीं है किन्तु नयों की विबिक्षा को समझे बिना एकान्त पक्ष को प्रस्तुत करना सदैव उलझाव का कारण बना हैं।

उलझती-सुलझती विचार धाराओं के बीच आचार्य श्री विद्यासागर जी ने अपने चिन्तन की गहराई सहआगम की पृष्ठभूमि से इस युग में प्रस्तुत सम्यग्दृष्टि की हैं और उनका चिन्तन आगमनिष्ठ होने से बिलकुल स्पष्ट और एकान्त के सघन कोहरे को छांटते हुए आगम धारा का सूर्य प्रकाश साधकों तक पहुँचा है। पूज्य श्री ने सम्यग्दर्शन के लक्षण को शुद्ध और अशुद्ध नय की अपेक्षा से समन्वित करते हुए प्रश्रम संवेग अनुकम्पा और आस्तिक्य की प्रगटता ही लक्षण मानते हुए सराग सम्यग्दर्शन कहा है तथा तत्त्वार्थ श्रद्धान में सम्यग्दर्शनं इसका अर्थ यह है कि आप्त, आगम और पदार्थ को तत्त्वार्थ कहते हैं और इनके विषय में श्रद्धान या अनुरक्ति को सम्यग्दर्शन कहते हैं। यहां सम्यग्दर्शन लक्ष्य है और आप्त, आगम और पदार्थ का श्रद्धान लक्षण है। इसलिये तत्वार्थ श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। तत्त्वार्थ के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन शुद्ध निश्चय नय के आश्रय करने के कारण तत्त्वार्थ को सत्य कहा जाता है और सत्य का श्रद्धान सम्यग्दर्शन होता हैं।इसीलिए प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य रूप सम्यग्दर्शन लक्षण के साथ तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शन लक्षण के साथ ''तत्त्वार्थ

श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'' लक्षण का विरोध नहीं आता हैं क्योंकि शुद्ध और अशुद्ध की अपेक्षा से दोनों लक्षण कहे गये हैं।

सम्यग्दर्शनों के लक्षणों में ''तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं'' और प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य अभिव्यक्ति लक्षण दोनों का आधार आत्मा हैं किन्तु लक्षण में आधेय की प्रधानता होती है और आधार की गौणता। यद्यपि आधार के विना आधेय नहीं होता है किन्तु पहिचानने में लिङ्ग/हेतु कार्य करता है। अतः सम्यग्दर्शन का लक्षण आत्म श्रद्धान न कहते हुए ''तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शनं''और प्रशम, संवेग, अनुकम्पा अस्तिक्य अभिव्यक्ति लक्षण सम्यक्त्वं को ही लक्षण के रूप में स्वीकार किया गया है। अतः आत्म श्रद्धान सम्यग्दर्शनं अध्यात्म की दृष्टि से जिन्होंने मान्य किया है, उन्हें सम्यग्दर्शन के लक्षण पर पुनः विचार करना होगा क्योंकि आचार्य कुन्द कुन्द देव ने मोक्ष पाहुड की ९०.वीं. गाथा में सम्यग्दर्शन को इस प्रकार कहा है-

हिंसारहिए धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे।

णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होई सम्मत्तं ॥ ९०॥

हिंसादि से रहित धर्म, अट्ठारह दोष रहित देव और निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थात मोक्षमार्ग वा गुरु इनमें श्रद्धा होना सम्यग्दर्शन है।

इसी प्रकार आचार्य स्वामी कार्तिकेय जी ने -

णिज्जिय दोसं सव्व जिणाणं दयावरं धम्मं।

वज्जियगंथं च गुरुं जो मण्णदि सो हु सद्दिट्ठी ॥३१७॥ कार्ति. अनुकानुदीक्षा

जो वीतराग अर्हन्त को देव, दया को उत्कृष्ट धर्म और निर्ग्रन्थ को गुरु मानता है वही सम्यग्दृष्टि है।

इसी तरह से नियमसार ग्रन्थ में आचार्य कुन्द कुन्द देव ने सम्यग्दर्शन का स्वरूप बतलाते हुए कहा है-

अत्तागमतच्चाणं सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं।

आप्त आगम और तत्त्वों की श्रद्धा से सम्यक्त्व होता है एवं इसी आशय से वसुनन्दि श्रावकाचार में गा. ६ एवं धवलाटीका १/१.१.४/१५१/४॥

पंचास्तिकाय की १०७ गा. में भी काल सहित पंचास्तिकाय के भेद रूप नौ पदार्थ यथार्थ में भाव हैं उन भावों के श्रद्धान करने का नाम सम्यग्दर्शन है।

सम्मत्तं सद्दहणं भावाणं तेसिमधिगमो णाणं।

चारित्तं समभावो विसयेसु विरूढमग्गाणं ॥१०७॥

तत्त्वप्रदीपिकावृत्तिः में आचार्य अमृतचन्द्र जी ने इसी गाथा में ''भावाः खलु काल कलित पञ्चास्तिकाय विकल्परूपा नव पदार्थाः तेषां मिथ्यादर्शनो दयापादिता महान भाव स्वभावं भावांतरं श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं''

मोक्ष पाहुड की ३८वी गा. में ''तच्च रूई सम्मत'' तत्त्व की रूचि का नाम सम्यग्दर्शन है। दर्शन पाहुड में गा. १९ में छह द्रव्य नव पदार्थ पंच अस्तिकाय सप्त तत्त्व ये जिन वचन में कहे गये हैं इनके स्वरूप का जो श्रद्धान करता है वो सम्यग्दृष्टि हैं।

छह दव्व णव पयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।

सद्दहइताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो ॥१९॥

परमात्म प्रकार के दूसरे अधिकार की १५वी. गाथा में लिखा है जो द्रव्यों को जैसा उनका स्वरूप है वैसा जाने और उसी तरह से इस जगत् में श्रद्धान करे वही आत्मा का अविचल, निश्चल भाव है। वह आत्मभाव सम्यग्दर्शन हैं।

दव्वइँ जाणइ जह ठियइँ तह जगि मण्णई जो जि।

अप्पहं करेउ भावडउ अविचलु दंसणु सो जि ॥१५॥

जिन एकान्त पक्ष वालों ने आत्म श्रद्धान को ही सम्यग्दर्शन का लक्षण बनाने का प्रयास किया है उन्हें पूज्य आचार्य श्री करूणाभाव से निर्देशन देते हुए कहते हैं कि आगम के परिपेक्ष्य में तत्त्वरूचि ही सम्यग्दर्शन का अधार है अतः तत्त्वार्थ श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहना श्रेयस्कर है। प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य को असत्यार्थ सम्यग्दर्शन का आधार बताना एवं इन्हें पर द्रव्य का केन्द्र मानकर सम्यक्तव के बाहर बताना एक गम्भीर भूल है ऐसी स्थिति में मोक्षार्थी साधक को पर तत्त्व या पर द्रव्य रूप सच्चे देव शास्त्र गुरु की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन के बाहर का विषय मानना महान बड़ी भूल होगी।

❍❍❍

आचार्य विद्यासागर जी के चिन्तन में दर्शन शब्द का अर्थ जिनलिङ्ग

ब्र. प्रदीप 'पीयूष', श्रवणबेलगोल

आचार्य परम्परा में दर्शन शब्द की अनेक व्याख्यायें उपलब्ध होती हैं किन्तु दर्शन शब्द के अर्थ, श्रद्धा, देखना, मत और जिनलिङ्ग जैसे अनेक अर्थ उपलब्ध हैं। पूज्य आचार्य कुन्दकुन्द देव ने अष्टपाहुड़ ग्रन्थ के दर्शन पाहुड़ में गाथा ३ में एक घोषणा की है कि दर्शन से भ्रष्ट होता है एवं दर्शन भ्रष्ट जो होता है उसको मोक्ष की निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती है। इस अर्थ में एक भ्रामक प्रचार हुआ है और कुछ लोगों ने आपके पक्षपात के चलते दर्शन शब्द का अर्थ सम्यग्दर्शन ग्रहण करते हुए यह घोषणा की है कि आचार्य कुन्दकुन्द देव ने दर्शन पाहुड की ३ गाथा में दर्शन का अर्थ सम्यग्दर्शन ग्रहण किया है और जो सम्यक् दर्शन से भ्रष्ट होता है, वह मोक्ष से निर्वाण से वञ्चित रहता है। हमें यह स्वीकार है कि सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट कभी मोक्षमार्गी नहीं हो सकता है, परन्तु गाथा ३ में दर्शन शब्द का अर्थ सम्यग्दर्शन ग्रहण करना युक्ति संगत नहीं है।

परम पूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज इस गाथा मे सम्बन्ध में अपना चिन्तन प्रस्तुत करते हुए कहते है कि प्रस्तुत गाथा में दर्शन से भ्रष्ट शब्द का अर्थ सम्यग्दर्शन नही अपितु जिनलिङ्ग से भ्रष्ट होना लेना चाहिए। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि पूज्य कुन्द कुन्द देव ने ४ गाथा में स्वयं लिखते है -

सम्मत्तरयणमद्वा जाणंता वहुविहाइं सत्थाइं।
आराहणाविरहिया भमंति तत्थेव तत्थेव ।।४।।

इस गाथा से आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव यदि पुनरोक्ति दोष की उलझन से तब ही बच पायेंगे व तीसरी गाथा के दर्शन शब्द का अर्थ दिगम्बर मुद्रा रूप जिनदर्शन यथाजात रूप लिङ्ग को स्वीकार किया जायेगा। पण्डित जयचन्द्र जी छाबडा जी ने बाह्यदर्शन व्रत, समित, गुप्ति रूप चारित्र और तप सहित अट्ठाईस मूलगुण सहित नग्न दिगम्बर मुद्रा उसकी मूर्ति है उसे जिनदर्शन कहते

है। इस कथन से यह सिद्ध होता है कि बाह्यदर्शन दिगम्बर मुद्रा है इस दिगम्बर मुद्रा से भ्रष्ट होने वाला जिनलिङ्ग से भ्रष्ट माना जायेगा और जो जिनलिङ्ग से भ्रष्ट हो जाता है उसे द्रव्यलिङ्ग से भ्रष्ट कहा जायेगा और जो द्रव्यलिङ्ग से भ्रष्ट होता है वह भावलिङ्ग से भी भ्रष्ट होता है क्योंकि द्रव्यलिङ्ग से रहित किसी भी साधक को भावलिङ्ग की प्राप्ति नही होती है। अतः आचार्य कुन्द कुन्द देव ने सम्यक्त्वरत्न से भ्रष्ट होने की बात अगले क्रम में कही है।किन्तु तीसरी गाथा में दर्शन भ्रष्ट का अर्थ सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट लेने पर पुनरूक्ति दोष इस ग्रन्थ में अवश्य आ जायेगा। आचार्य कुन्द कुन्द देव निर्दोष रचनाकार और प्रौढ़ साहित्यकार हैं। वे ऐसे पुनरूक्ति दोष को कभी भी मान्य नहीं कर सकते है। अतः दर्शन शब्द का अर्थ जिन नग्न मुद्रा ही है

प्रस्तुत अष्टपाहुड़ ग्रन्थ में दर्शन पाहुड की १४वी. गाथा का भावार्थ करते हुए पं. जयचन्द्र छाबडा जी ने लिखा है- यहां दर्शन का अर्थ मत है,जहां बाह्य वेष शुद्धि दिखाई दे वह दर्शन/वही उसके अन्तरङ्ग भाव को बतलाता है इस प्रकार दर्शन की मूर्ति है , वह जिनदेव का मत है। वही वन्दन/पूजन योग्य है अन्य पाखण्ड वेष वन्दना पूजा योग्य नही है। पं. जयचन्द्र छाबडा जी के प्रस्तुत लेखन से यह ध्वनि निकलती है कि दर्शन का अर्थ जिनलिङ्ग है और उससे भ्रष्ट होने वाला कभी मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है। बाह्यवेष की शुद्धि के बिना अन्तरङ्ग भाव की शुद्धि कभी सम्भव नहीं होती है।

बोध पाहुड ग्रन्थ में दर्शन आयतन के अन्तर्गत आचार्य कुन्दकुन्द देव ने यह कहा है जो मोक्षमार्ग दिखाता है वह दर्शन है। इसी को स्पष्ट करते हुए इस प्रकार मुनि के रूप को जिनमार्ग में दर्शन कहा है अर्थात् यह गाथा ध्वनित कर रही है कि दर्शन शब्द का अर्थ जिनमार्ग में मुनिरूप ही स्वीकार हैं-

दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मतं संयमं सुधम्मं च।
णिग्गथं णाणमयं जिणमग्गे दंसध भणियं ।।१४।।

इस आशय को पुष्ट करते हुए प्रस्तुत गाथा का भावार्थ पं. जयचन्द्र छाबडा जी ने इस प्रकार लिखा है- परमार्थ रूप अन्तरङ्ग दर्शन तो सम्यक्त्व है और बाह्य उसकी मूर्ति ज्ञान सहित ग्रहण किया निर्ग्रन्थ रूप इस प्रकार मुनि का रूप है सो दर्शन है क्योंकि मत की मूर्ति को दर्शन कहना लोक में प्रसिद्ध है। इसी

क्रम में आचार्य कुन्द कुन्द देव ने १५वी. गाथा में यह स्पष्ट किया है कि मुनि का रूप दर्शन है।जिस तरह फूल गंधमयी हे, दूध घृतमयी है, वैसे ही दर्शन अर्थात् मत मे सम्यक्त्व है। कैसा है दर्शन ? अन्तरङ्ग तो ज्ञानमयी है और बाह्य रूपस्थ है, मुनि का रूप है तथा उत्कृष्ट श्रावक, आर्यिका का रूप है। यहाँ पर दर्शन नाम मत का प्रसिद्ध है। यहाँ जिनदर्शन में मुनि, श्रावक, और आर्यिका का जैसा बाह्यवेष कहा है सो दर्शन जानना और इसकी श्रद्धा सो अन्तरङ्ग दर्शन जानना....। अन्तमत में तथा कालदोष से जिनमत में जैनाभास वेषी अनेक प्रकार अन्यथा कहते है कल्याण रूप नहीं है। संसार का कारण है।

इस प्रकरण से स्पष्ट है कि जो बाह्य वेष से जिनलिङ्ग रूप धारण नहीं किये हैं उन्हें दर्शन से भ्रष्ट कहा जाता है ऐसे दर्शन से भ्रष्ट वस्त्रधारी परिग्रहधारी, कभी भी जिनमत के दर्शन नहीं हो सकते हैं। इस कारण जिनमत से बाहर, द्रव्यलिङ्ग से भ्रष्ट को आचार्य कुन्दकुन्द देव ने दर्शन से भ्रष्ट कहा है और ऐसे दर्शन से भ्रष्ट साधकों को आगाह करते हुए कहते है कि

दंसणभद्रा भद्रा दंसण भद्रास्स णात्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चारित्रभद्रा दंसणभद्रा ण सिज्झंति ।।३।। द.पा.।।

दर्शन से भ्रष्ट अर्थात् जैनाभास रूप धारण किये श्वेताम्बर मुनि आदि दर्शन के अन्तर्गत नहीं आते हैं वे दर्शन के अनुकूल नहीं है और ना ही वे जिनमत में यथाजात रूप को दर्शन कहा गया है। उसे वे प्रस्तुत भी नहीं कर पाते है। इसीलिए पूज्य कुन्दकुन्द देव ने दर्शन को जिनलिङ्ग रूप प्रस्तुत करते हुए उससे भ्रष्ट साधकों को निर्वाण प्राप्ति मे असम्भवता व्यक्त की है तथा उन्हें सावधान किया है कि एक बार चारित्र से भ्रष्ट साधक को मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है किन्तु जिनलिङ्ग रूप दर्शन से भ्रष्ट साधक को कभी निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

अब हमें अष्टपाहुड़ के दर्शन पाहुड़ की तीसरी गाथा मे आये हुए दर्शन शब्द का अर्थ सम्यग्दर्शन लेने से पूर्व खूब विचार करना होगा एवं कुन्दकुन्दाचार्य के भावों को समझकर दर्शन शब्द का अर्थ यहाँ पर जिनलिङ्ग या मुनि मुद्रा ही लेना होगा।

❍❍❍

स्वरूपाचरण चारित्र और परम पूज्य आचार्य

ऐलक श्री सिद्धांतसागर

भारतीय दर्शन में जैन दर्शन अध्यात्म पूर्ण वैज्ञानिक और क्रमबद्ध है। आत्मानुभूति स्वरूपाचरण चारित्र जैन अध्यात्म की रीढ़ है। इसी स्वरूपाचरण चारित्र का विवेचन कभी कभी भ्रामक बन जाता है। प्रायः अठारहवीं शताब्दी में विद्वानों ने सम्यक्त्वाचरण चारित्र और स्वरूपाचरण चारित्र की भेद रेखा को स्पष्ट नहीं किया। आचार्य कुन्दकुन्द देव ने अष्टपाहुड ग्रन्थ में सम्यक्त्वाचरण चारित्र और संयमाचरण चारित्र दो भेद ही चारित्र के किये हैं।

संयमचारण चारित्र के अंतर्गत अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच महाव्रतों एवं वीर्या समिति, भाषा समिति, ऐषणा समिति, आदान-निक्षेपण-समिति, प्रतिष्ठापन समिति, इस पांच समितियों सहित मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति, इन तीन गुप्तियों के साथ तेरह प्रकार का चारित्र तथा साधु परमेष्ठी के २८ मूलगुण संयमाचरण चारित्र माना गया है। यह संयमाचरण चारित्र दीक्षा धारण दिगम्बर स्वरूप को प्राप्त कर लेने वाले साधक के ही पाया जाता है।

निशंकित, निकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य, प्रभावना इन सम्यक्त्व के आठ गुणों से युक्त तथा जातिमद, कुलमद, धनमद, ज्ञानमद, तपमद, ऋद्धिमद, बलमद, पूजामद, इन आठ मदों का त्याग करके छः अनायतनों अर्थात् कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु के शिष्य, कुदेव के मंदिर, कुशास्त्र के वाचक प्रकार से बचके रहना एवं लोकमूढ़ता, गुरुमूढ़ता, देवमूढ़ता के त्याग कर देने के बाद जो चारित्र होता है वह सम्यक्त्वा चरण चारित्र है। इस तरह का सम्यक्त्वाचरण चारित्र का लक्षण आचार्य कुन्दकुन्द देव ने चारित्र पाहुड़ में अभिव्यक्त किया है।

छहढालाकार ने छठवी ढाल में स्पष्ट किया है कि -

यो है सकल संयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरण अब
जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब ।

इन पंक्तियों से यह सिद्ध होता है कि पंडित दौलतमराम की दृष्टि में पहले संयमाचरण चारित्र होता है। इसके उपरांत स्वरूपाचरण चारित्र होता है । पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के चिंतन में जब यह विषय आया तब उन्होंने चारित्र पाहुड़ की आठवीं गाथा के अनुवाद पर ध्यान दिया और वे एक निष्कर्ष पर पहुँचे, कि सम्यक्त्वाचरण चारित्र का अनुवाद करने वालों ने स्वरूपाचरण चारित्र अर्थ लिया है जो उचित प्रतीत नहीं होता है, गाथा के विपरीत अर्थ निकालना अनुवाद कैसे माना जायेगा। यह संदर्भ दृष्टव्य है -

तं चैव गुर्णावसुद्धं जिण समत्तं ममुक्खठाणाय
जं चरइ णाणजुत्तं पढमं सम्मत चरणचारित्तं ।।

निःशंकित आदि गुणों से विशुद्ध अरहंत जिनदेव की श्रद्धा होकर यथार्थ ज्ञान सहित आचरण करें सो प्रथम स्वरूपाचरण चारित्र है सो यह मोक्ष मार्ग का कारण है (चारित्र पाहुड़ गाथा नं. ८)

तत्त्वार्थ सूत्र में चारित्र के पाँच भेद किये गये हैं । सामायिक, छेदोस्थापना, परिहार-विशुद्धि, सूक्ष्मराय यथाख्यात, इनमें स्वरूपाचरण चारित्र का विधान नहीं किया गया है । स्वरूपाचरण चारित्र शब्द अभ्युदय एवं विकास कब और कैसे हुआ इस पर भी चिंतन करने की आवश्यकता है । आचार्य कुन्द कुन्द देव, आचार्य उमास्वामी एवं आचार्य समन्तभद्र स्वामी के साहित्य में स्वरूपाचरण शब्द का उल्लेख कहीं प्राप्त नहीं होता और सम्यक्त्वाचरण चारित्र को स्वरूपाचरण के रूप में अनुवादित करना अनुवादक की स्वयं की बुद्धि है । आचार्यों का ऐसा कोी भी अभिप्राय दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है । विषय को खींचकर के अनुवाद करना आचार्यों के मूलभावना के विपरीत है । पंचाध्यायी के संदर्भों को आचार्य प्रणीत

संदर्भ नहीं माना जा सकता है क्योंकि यह ग्रन्थ पंडित राजमल जी के द्वारा रचित अधूरा ही ग्रंथ है ।

जैन सिद्धांत प्रवेशिका में जो स्वरूपाचरण चारित्र की परिभाषा दी गई है, वह पंचाध्यायी को आधार बनाकर दी गी है । स्वरूपाचरणं चारित्रं स्वसमप्रवृत्तिरित्यर्थः । तदेव वस्तुस्वभावत्वाद्धर्मः ।

स्वरूप में (आचरण) करना चारित्र है । स्वसमय में प्रवृत्ति करना इसका अर्थ है । यही वस्तु का (आत्मा) का स्वभाव होने से धर्म है ।

किन्हीं अनुवादकों की कृपा से धवल के १/१, १, १०/१६५, १ आचार्य वीरसेन जी ने अनंतानुबंधी कषाय को सम्यक्त्व और चारित्र दोनों को घातक बताने के लिए लिखा है -

अनंतानुबंधाना द्विस्वभावत्वप्रतिपादनफलत्वात् । यस्माश्च विपरीताभिनिवेशोऽभूदनन्तानु-बन्धनो, न तद्दर्शन मोहनीयं तस्य चारित्रा-वरणत्वात् । तस्योभयप्रतिबन्धक्त्वादुभयव्यपदेशोन्याय्थ इति चैत्र, इष्टत्वात् ।

अनंतानुबंधी प्रकृतियों की द्विस्भावता का कथन सिद्ध हो जाता है, तथा जिस अनंतानुबंधी के उदय से दूसरे गुणस्थान में विपरीतभिनिवेश होता है, वह अनंतानुबंधी दर्शन मोहनीय का भेद न होकर चारित्र का आवरण करने वाला होने से चारित्र मोहनीय का भेद है ।

प्रश्न - अनंतानुबंधी सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनों का प्रतिबन्धक होने से उसे उभयरूप संज्ञा देना न्याय संगत है।

उत्तर - यह आरोप ठीक नहीं है क्योंकि यह तो हमें इष्ट ही है। अर्थात् अनंतानुबंधी को सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनों का प्रतिबन्धक माना ही है । अनुवादकों ने धवला के प्रथम संस्करण में चारित्र के साथ स्वरूपाचरण शब्द जोड़ दिया था जिसे बाद में संशोधित किया गया । स्वरूपाचारण चारित्र, शुद्धोपयोग से अनुबंधित है शुद्धोपयोग के अभाव में स्वरूपाचरण चारित्र हो नहीं सकता है । जैसा कि पंडित दौलतराम जी ने छहढाला में स्पष्ट किया है ।

तीनों अभिन्न अखिन्न शुध, उपयोग की निश्चल दशा।
प्रगटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत, ये तीनधा एकै लसा ।।

इन पंक्तियों से यह ध्वनि निकलती है कि स्वरूपाचरण चारित्र शुद्धोपयोग के साथ होने पर अभेद रत्नत्रय के होने पर होता है। शुद्धोपयोग और अभेद रत्नत्रय की उपलब्धि मुनि दशा में ही संभव है। जिन विद्वानों ने ग्रहस्थ अवस्था में शुद्धोपयोग और स्वरूपाचरण चारित्र की सिद्धि करने का प्रयास किया है उन्होंने सचमुच में गधे की सींग की कल्पना की है।

पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज जी ने स्वरूपाचरण के विषय में यह भी कहा कि गृहस्थ अवस्था में स्वरूपाचरण चारित्र होता है। इस विषय में कोंी प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। यदि कोंी ऐसा आगम प्रमाण उपलब्ध करा दे तो मैं उसका आभारी रहूँगा। मात्र युक्ति से सिद्ध करना पर्याप्त नहीं माना जा सकता है।

फिर भी यदि कोंी युक्ति को आधार बनाकर असंयत गृहस्थ अवस्था में अथवा संयता संयत की अवस्था में स्वरूपाचरण चारित्र को सिद्ध करने का दुस्साहस करता भी है, तो उसे यह नहीं भूलना चाहिए कि श्वेताम्बर परम्परा के समान गृहस्थ अवस्था में केवलज्ञान की उपलब्धि रोकी नहीं जा सकती है एवं चौदह गुण स्थानों की व्यवस्था भी भंग हुए बिना नहीं रहती है गृहस्थ अवस्था में यदि केवलज्ञान होने लगे तो संयम धारण करने की भी आवश्यकता नहीं रह जाती है, फिर स्त्री मुक्ति को अबाधित स्वीकार करना पड़ेगा तथा सवस्त्र मोक्ष की मान्यता को अस्वीकार कैसे किया जा सकेगा ? इन सभी बाधाओं को देखते हुए चतुर्थ गुणस्थान में स्वरूपाचरण की सत्ता स्वीकार करना आगम प्रमाण के अपलाप करने के सिवाय और कुछ भी नहीं हैं। अतः स्वरूपाचरण चारित्र शुद्धोपयोगी ज्ञानी मुनि के ही होता है। इसे स्वीकार किये बिना कोई भी निश्चयाभाषी मिथ्यादृष्टि होने से बच नहीं सकता है।

❍❍❍

श्रमण शतक में ध्यान

ब्र. सुनील सांधेलीय, जबलपुर

जैन आगम में ध्यान का दर्शन भारतीय पाश्चात्य दर्शनों से कुछ अलग ही है। भारतीय दर्शनों में एकाग्रचित्त को ध्यान कहा गया है। लेकिन जैन शास्त्र ग्रन्थ तत्त्वार्थ सूत्र में (उत्तम संहननस्यैकात चित्वा निरोधोध्यानमान्तर्मुहूर्तात्) ध्यान को सबसे पहले संहनन से जोड़ा गया है। उत्तम संहनन वाले साधकों को भी ध्यान का काल अर्न्तमुर्हूत अवधि ४८ मिनिट के भीतर होता है। एकाग्र चिन्ता उपयोग की वह पद्धति है जो एक ही विषय में केन्द्रित हो जाती है तो वह ध्यान कहा जाता है। जैन दर्शन में ध्यान को आचार्यो ने ४ भेदों में विभाजित किया है-आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल ध्यान क्लेश का पर्यायवाची आर्त ध्यान है एवं क्रूरता से गहरा सम्बन्ध रौद्र ध्यान रखता है। कषायों की मन्दता और उपशमन से धर्मध्यान होता है तथा आत्मा की निर्मल अनुश्रुति से बढ़कर अर्न्तशक्तियों पर उपयोग केन्द्रित हो जाता है तो वह शुक्ल ध्यान कहा जाता है।

आर्त और रौद्र ध्यान संसार परिभ्रमण के लिये त्वरित होते हैं तथा धर्म और शुक्ल ध्यान साधक को मोक्ष की ओर ले जाते हैं। भविष्य पुराण में भी ध्यान के भेद करते हुये सर्वप्रथम आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्म और शुक्ल ध्यान के गम उल्लेखित किये गये हैं। इनमें जैन दर्शन व अदिव्य पुराण के बीच में आर्त और आद्य ध्यान का अन्तर स्पष्ट दिखाई दे रहा है हो सकता है कि इन दोनों के बीच में सिर्फ अंतर हो और महर्षि पतंजलि ने अपने योग के ग्रन्थ में योग का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहै है कि क्लेश और क्रूरता को समाप्त कर देने पर ही योग के उद्देश्य की इति होती है। क्रूरता और क्लेश वैचारिक पतन की राह खोलते है और हम यह भी कह सकते हैं कि किसी भी व्यक्ति के अंदर अब नकारात्मक सोच पनपाना हो तब वह अपने चित्त की गति क्रूरता और क्लेश की ओर मोड़ देता है। चाहे वह इष्ट वियोग का अनिष्ट संयोग या पीड़ा चिंतन का भोग आकांक्षा निधन के रूप में क्यों न हो। ये सभी नकारात्मक

सोच आर्तध्यान की सीमा में आ जाते हैं और ये मन को क्लेशित करते रहते हैं। इसी तरह हिंसा में आनंद, झूठ में आनंद, चोरी में आनंद और परिग्रह संरक्षण में आनंद भी नकारात्मक सोच का परिणाम है। धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान, सकारात्मक सोच को ही प्राप्त होते हैं।

परम पूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज ने श्रमण शतक ग्रन्थ में दो प्रकार के ध्यान पाठकों के सामने प्रस्तुत किये हैं । उन्होंने सर्वप्रथम सद् ध्यान का कार्य करते हुये कहा कि जिस तरीके से सरोवर में पुष्कर या कमल होते जो उसकी शोभा होती है मुनिश्री मछली या मीन ध्यान रूपी जल से शोभित होते हैं। कोमलता पुष्कर कमल में शोभित होती है। मनुष्य में नहीं यह पुष्कर अम्बार में भी नहीं होता है। कवि आचार्य श्री का कहना भेंट ही गृहस्थ के सद्ध्यान होना सम्भव नहीं है। ज्ञानार्णव ग्रन्थ में पूज्य आचार्य शुभचंद्र जी ने कहा है कि एक बार मैं मान सकता हूँ कि आकाश में फूल हो सकते हैं, अथवा गधे के सींग भी हो सकते हैं पर मैं यह नहीं मान सकता हूँ कि गृहस्थ अवस्था में रहते हुए किसी के भी प्रमाद जीत कर ध्यान हो सकता है। ध्यान तो सचमुच में मुनि को ही सिद्ध होता है। आचार्य विद्यासागर जी ने इन्हीं भावों को सामने रखकर श्रमण शतक ग्रंथ में मुनि की सरवर की मीन बताया, ध्यान को जल बताया है जिस तरह जल के बिना मछली तड़फकर मर जाती है उसी प्रकार ध्यान के मुनिपना भी समाप्त हो जाता है। इसी भाव को लेकर आचार्यश्री अधोलिखित छंद का समावेश अपनी कृति श्रमण शतक में किया है -

सरस्तत् पुष्करेण यतितिमिर्भातु ध्यान पुष्करेण ।
मृदुता च पुष्करेन नरेऽविरते गी पुष्करे न ।।३९।।

शोभे सरोज दल से सर ठीक जैसा,
सद् ध्यान रूप जल से मुनि मीन वैसा ।।
हो कंज में मृदुपना, न असंयमी में
ना शब्द व्योम गुण, कहते यमी है ।।३९।।

आगे ध्यान की व्याख्या करते हुए पूज्यश्री कहते हैं कि आर्तरौद्र ध्यान मुझे रुचिकर नहीं लगते हैं क्योंकि वे आर्त रौद्र ध्यान संसार के प्रमुख कारण है और पापमय है। भगवान रामचंद्र की सीता हरण का प्रमुख कारण स्पष्ट करते हुए आचार्य श्री कहते हैं। भगवान श्री रामचंद्र जी भी स्वर्ण मृग की चमक भ्रांति में भूल गये थे जो उस मृग के पीछे दौड़कर माँ जानकी सीता की रक्षा करने से भटक गये थे। आर्त रौद्र ध्यान का परिणाम जहाँ भटकना होता है। कहीं लौकिक कार्य सिद्धि में भी भटकाव पैदा करता है। इस सम्बन्ध में पूज्य श्री ने निम्न छन्द प्रस्तुत करते हुए अपनी ध्यान सम्बन्धी पृष्ठभूमि प्रस्तुत की है। अतः यह अवलोकनीय है।

संसार मूलमेन आर्त रौद्रद्वयं रोचते मे न ।
हेममयः कथमेणीटि सतस्तेन रामेण ।।

ये आर्तरौद्र मुझ को रूचते नहीं हैं,
संसार के प्रमुख कारण पाप वे हैं।
श्री रामचन्द्र फिर भी मृग भ्रान्ति भूले ?
जो देख कांचन-मृगी इस भांति फूले ।।

श्रमण शतक ग्रन्थ में पूज्य आचार्यश्री ने ध्यान की व्याख्या का विस्तार न देते हुए केवल दुर्ध्यान व सद्ध्यान के ससंघ में अपनी बात स्पष्ट की है। सद्ध्यान की आवश्यकता और दुर्ध्यान के दुष्परिणाम को श्रमण और श्रावकों के समक्ष प्रस्तुत करके ध्यान का मूल्यांकन स्पष्ट किया है। यह परम पूज्य आचार्यश्री का महान उपकार हैं जो आज आर्त रौद्र ध्यान की बाहुल्यता में भी सद्ध्यान की ओर श्रमणों का ध्यान आकर्षित किया है। जल के बिना श्रमण का श्रमणत्व तड़प उठता है। वर्तमान में श्रमणचर्या के साधक भव्य आत्माओं सद् ध्यान के मार्ग से कुछ भटकती सी नजर आ रही है और लोक वृत्ति अथवा ख्याति लाभ आदि चाह की ओर आकर्षित होकर नग्न दिगम्बर भेष धारण करने के बाद भी वे धर्मध्यान से अपना नाता तोड़ रही है। ऐसे श्रमणों लिये सद्ध्यान की प्रेरणा अनिवार्य और प्रशंसनीय है।

❍❍❍

आचार्य विद्यासागर के चिन्तन में सम्यक्त्व के साथ चारित्र की भजनीयता

ब्र. जयकुमार निशांत टीकमगढ़

सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र नहीं होता है यह विषय सर्वमान्य स्वीकृत होने के बाद यह प्रश्न हमेशा के लिए उपस्थित होता है कि सम्यग्दर्शन के उपरान्त चारित्र स्वतः होता है या उसे प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ करना पड़ता है। पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज का अभिमत आगम के परिप्रेक्ष्य में बहुत स्पष्ट होकर सामने आता है कि सम्यग्दर्शन के उपरान्त चारित्र पुरुषार्थ के द्वारा उपलब्ध होता है एवं आगम के प्रमाणों से तथा युक्तियों के आधार पर पूज्य आचार्यश्री यह बात सिद्ध करने में सफल हो जाते हैं कि सम्यग्दर्शन के उपरान्त चारित्र भजनीय होता है। तत्त्वार्थ राजवार्तिक ग्रन्थ में यह प्रसंग बहुत स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है प्रथम सूत्र वार्तिक ६९ से लेकर ७५ तक की वार्तिकों में पूज्य अकलंक देव ने अत्यंत आलोडन-विलोडन करने के बाद निष्कर्ष यह दिया है कि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान युगपद होते हैं किन्तु चारित्र भजनीय होता है। भजनीय का अर्थ सम्यग्दर्शन होने के उपरान्त चारित्र हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है।

इसी आधार पर अनेक जैन आचार्यो ने अपने ग्रन्थ की रचना करते हुए यह स्पष्ट करने की कोशिश की है कि चारित्र सहित ही सम्यक्त्व, ज्ञान और तप सार्थक होता है। पूज्य आचार्य कुन्दकुन्द देव ने शील पाहुड़ की पाँचवी गाथा में

णाणं चरित्तहीणं लिंगगहणं च दंसणविहूणं।
संजयहीणो य तवो तइ चरइ णिरत्थयं सव्वं ।।५।।

चारित्ररहित ज्ञान और सम्यक्त्व रहित लिंग तथा संयमहीन तप ऐसे

सर्व का आचरण निरर्थक है। इसी भाव को लेकर मोक्ष पाहुड़ की ५७,५९,६७ वी गांथा यहाँ प्रासंगिक है। इन सभी गाथाओं में यह कहा गया कि सम्यक्त्व हो जाने के बाद यदि चारित्र नहीं होता है तो सम्यक्त्व निरर्थक हो जाता है तथा मूलाराधना में भी इस आशय का एक प्रसंग ८९७ वीं गाथा में उपलब्ध होता है।

थोवम्मि सिक्खिदे जिणइ बहुसुदं जो चारित्तं।
संपुण्णो जो पुण चरित्तहीण किं तस्स सुदेण बहुएण ।।८९७।।

जो मुनि चारित्र से पूर्ण है वह थोड़ा भी पढ़ा हुआ हो तो भी दश पूर्व के पाठी को जीत लेता है। भगवती आराधना में भी यही मन्तव्य स्पष्ट करते हुए गाथा ५२ प्राप्त होती है। जिसमें कहा गया है कि नेत्र अर्थात् सम्यग्दर्शन प्राप्त हो के बाद भी यदि कोी सर्प आदि दोषों से दुःखों का सम्यग्दर्शन निरर्थक होता है। जो ग ` आदि को देखकर भी ग ` में गिरते है उसके नेत्र व्यर्थ होते हैं इसी तरह से सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के उपरान्त भी यदि चारित्र को पुरुषार्थ से प्राप्त नहीं करता है तो उसका वह सम्यक्त्व और ज्ञान सार्थक नहीं होता है।

चक्खुस्स दंसणतस्य य सारो सप्पादिदोस परिहरणं।
चक्खू होइ णिरत्थं दटठूण बिले पंडतस्स ।।५२।।

चारित्र को धारण करना ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का फल है। मात्र भेद विज्ञान होने से कोी भी कार्य सिद्ध नहीं होता है यदि रागादि का भेद विज्ञान तो हो जाता है पर रागादि का त्याग नहीं करता है तो भेद विज्ञान फल शून्य रहता है। वृहद् द्रव्य संग्रह की ३६ वीं गाथा की टीका करते हुए आचार्य ब्रह्मदेव सूरि ने लिखा है कि जो रागादिक का भेदविज्ञान हो जाने पर रागादिक का त्याग करता है। उसे भेदविज्ञान का फल प्राप्त होता है। अतः दृष्टव्य है।

धवला के प्रथम भाग में ज्ञान का कार्य क्या है इस प्रश्न का उत्तर देते

हुए पूज्य आचार्य वीरसने जी ने कहा है कि तत्त्वार्थ में रुचि, निश्चय श्रद्धा और चारित्र का धारण करना सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का कार्य है।

किं तद् ज्ञान कार्यसमिति चेत्तत्त्वार्थे रुचिः प्रत्ययः श्रद्धा-चारित्र-स्पर्शनं च। इस प्रकार से स्पष्ट होता है कि सम्यग्दर्शन के उपरान्त चारित्र धारण महान पुरुषार्थ का परिणाम है। सम्यक्त्व के बाद चारित्र अपने आप नहीं होता है। आचार्य अमृतचन्द्र जी ने अपने अमृत कलश में कहा है कि जिस तरह से बीज में फल देने की शक्ति होती है किन्तु उसे यदि उचित भूमि या खेत में न डाला जा तो उसका कभी अंकुरण नहीं होता है इसी तरह से सम्यक्त्व बीज होने के बाद यदि वह चारित्र भूमि पर न डाला जाए तो सम्यक्त्व का फल प्राप्त नहीं होता है। इन सभी आगम प्रमाणों को पाठकों के समक्ष रखते हुए एक ही निष्कर्ष पर हम पहुँच जाते हैं कि चारित्र सदैव पुरुषार्थ से उपलब्ध किया जा सकता है तथा चारित्र का पुरुषार्थ एक मोक्ष भागी साधक सदैव ही करना पड़ता है।यदि वह चारित्र की साधना इसीलिए नहीं करता है कि सम्यग्दर्शन होने के उपरान्त उसे चारित्र की योग्यता प्राप्त हो गी है अतः उसे चारित्र स्वतः ही प्राप्त हो जाएगा उसका यह मानना अपने आप में बहुत बड़ी भूल है।

कुछ एकान्तवादी मोक्षमार्ग के साधकों ने चारित्र के सम्बन्ध में यह धारणा बना रखी है कि सम्यग्दर्शन होने के उपरान्त चारित्र के लिए भटकना अपने आप में बहुत बड़ी भूल है क्योंकि उपादान प्राप्त होने के बाद निमित्त तो अपने आप मिल जाते हैं इसीलिए चारित्र के लिए आशावादी बन जाते हैं जैसे कोई भी व्यक्ति समुद्र के किनारे रेत में अपनी नाव रखकर बैठ जाता है कि जब समुद्र में पानी है तो लहर जरूर आयेगी वह हमारी नाव को समुद्र तक ले जायेगी किन्तु यह सोच अकर्मण्यता की सूचना देता है और यह कर्मण्यता अवसर चूकने के लिए पर्याप्ति होती है तथा ऐसा सोच वाला व्यक्ति चारित्र के अभाव में मोक्षमार्ग से कोसों दूर रह जाता है क्योंकि रत्नत्रय की पूर्णता हुए बिन मोक्षमार्ग नहीं हो सकता है। अतः रत्नत्रय प्राप्त

करने के लिए जो पुरुषार्थी जेल में पकड़े हुए चोर के समान निरन्तर बाहर निकलने के लिए तड़फता है इसी तरह अविरत सम्यग्दृष्टि निरन्तर चारित्र को धारण करने के लिए तड़फता है। यही सम्यक्त्व की पहचान है इस आशय का कथन आचार्य ब्रह्मदेव जी ने वृहद द्रव्य संग्रह की गाथा १३ की टीका लिखते हुए लिखा है कि **मारण निमित्तं तलवर गृहीत तस्कर वद् आत्मनिन्दादि सहितः सन्निन्द्रिय सुखअनुभवव्यविरत सम्यगदृष्टे लक्षणम्।**

इस प्रसंग में अब हम यह कह सकते हैं कि चारित्र सम्यग्दृष्टि के लिए सदैव पुरुषार्थ पूर्वक उपासनीय होता है। काकताली न्याय से चरित्र नहीं मिलता है।

❍❍❍

आचार्य श्री विद्यासागर के चिंतन में सर्वज्ञता

ऐलक श्री सिद्धांतसागर

सर्वज्ञता को माने बिना धर्म के प्रति आस्था का निर्माण होना संभव नहीं हैं। सर्वज्ञता प्रत्येक भारतीय दर्शन और पाश्चात्य दर्शन ने स्वीकार की है। मात्र दो दर्शन ऐसे हैं जो सर्वज्ञता को स्वीकार नहीं करते हैं जिनमें चार्वाक दर्शन और मीमांसक दर्शन सर्वज्ञता नहीं मानने वाले दर्शनों में चार बार दर्शन अब तो सिर्फ दर्शन की किताबें रह गई हैं। उसके मानने वाले स्पष्टता इस पृथ्वी पर नहीं हैं। पुराण साहित्य में ईश्वर को नित्य व्यापक सर्वज्ञ माना गया है। श्रीमद् भगवद गीता में भी सर्वज्ञता के संदर्भ उपलब्ध होते हैं।

सर्वज्ञ शब्द का निर्माण दो शब्दों से हुआ है। सर्व+ज्ञ, सर्व शब्द का अर्थ सामान्यतः सभी लिया जाता है। किन्तु आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज ने अपने चिंतन के माध्यम से सर्व शब्द का अर्थ एक अलग और विशिष्ट रूप में प्रस्तुत किया सर्व शब्द का अर्थ अनन्त ग्रहण किया है।

अनन्त शब्द कहने से सर्वज्ञ शब्द की व्यापकता और अधिक बढ़ जाती है तथा आगम से अनन्त शब्द ग्रहण करने में कोी भी व्यवधान नहीं आता है।

सर्वज्ञ से तात्पर्य केवल ज्ञान होना चाहिए। केवलज्ञान का विषय सर्व द्रव्य व सर्व पर्यायों में होता है क्योंकि पहले असर्वपर्यायेषु कहा गया था। इसीलिए सर्व द्रव्यों और सर्व पर्यायों में इस प्रकार संबंध जोड़ देना चाहिए। जीव द्रव्य अनंतानंत है। उससे भी अनन्तानन्त गुणे पुद्‌गल द्रव्य है।

एक-एक जीव के द्रव्य के प्रदेश पर अनंतानन्त पुद्गल परमाणु का जमाव है और ऐसे अनंतानन्त जीव है इसीलिए संसार का सारा का सारा व्यवहार चल रहा है। कभी भी घाटा नहीं होता है। एक-एक आत्मप्रदेश पर एक समय में अनंतानन्त पुद्गल परमाणु एक समय में आ रहे हैं, जा रहे हैं, सविपाक निर्जरा भी हो रही है अविपाक निर्जरा भी हो रही है और बन्ध भी एक साथ हो रहा है। तेरहवें गुणस्थान में भी यही स्थिति है। प्रथम गुणस्थान में भी यही स्थिति है। निगोद में भी यही स्थिति है। राधोमच्छ में भी यही स्थिति है। बड़ा वैचित्र्य है।

चाहे शुद्ध पर्याय निकले, चाहे अशुद्ध पर्याय उसके लिए हेतु द्रव्य अविष्कृत होना अनिवार्य है। काल के संयोग से प्रत्येक द्रव्य प्रत्येक समय परिणमन करते हैं । अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार उसमें से पर्याय निकलती है उसे कोी रोक नहीं सकता।

जैसे मतिज्ञान उत्पन्न हुआ यह काल की देन नहीं है मतिज्ञान यदि ज्ञान के रूप में उत्पन्न हो जाता है। ज्ञान गुण तो वह होते रहना चाहिए क्योंकि काल का सद्‌भाव हमेशा रहता है। लेकिन होता नहीं है, क्यों नहीं होता ? मतिज्ञानावरण कर्म और क्या काम करता है ? मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम में ही मतिज्ञान होगा। यह नियत है काल के उदय में नियत नहीं है। काल के उदय में पर्याय होगी, यह नियत है लेकिन मतिज्ञान के रूप में जो पर्याय की उत्पत्ति होगी उसके लिए मतिज्ञानावरण का क्षयोपशम होना अनिवार्य

है। उसमें यदि कमोवेशी हो जाये तो, कमोवेशी हो गी क्या ऐसा नहीं मान सकते। काल तो असंख्यात प्रदेशी है, जहाँ है वहीं रहता खिसक नहीं सकता। कभी किसी को गुस्सा कर दे ऐसा नहीं हो सकता। सर्वज्ञ ने सभी द्रव्यों की सभी पर्यायों को जान लिया काल द्रव्य की अतीत अनागत सर्व पर्यायों को जान लिया अतीत की पर्यायें अनन्त हैं, तो अनन्त एक छोर को जान लिया तो सीमित हो जाएगा। तो सर्व का अर्थ क्या है शेष न रहे ये सर्व का अर्थ होता है। अब उन्हों ने किस रूप में जाना क्या जाना यह जब सर्वज्ञ को ही स्वयं विकल्प के रूप में सिद्ध किया जा रहा है। उसका अस्तित्व नहीं ऐसा नहीं, क्योंकि बाधक प्रमाण का अभाव है, इसलिये सर्वज्ञ है। लेकिन सर्वज्ञ का शब्द सिद्ध है। सर्वज्ञ कैसे जान रहे हैं, क्या जान रहे हैं आदि बातें हम बाद में करेंगे, क्योंकि अस्तित्व में है। विकल्प सिद्ध में केवल सत्ता रूप का या असत्ता रूप धर्मी का ही हम बोध करते हैं। ग्रहण कर सकते हैं इसलिए यह हमेशा ध्यान रखने योग्य बात है कि उन्होंने (सर्वज्ञ ने) जो भी प्राप्त किया विश्वास करने योग्य है।

अर्थ तो अनन्तात्मक होता है एवं शब्द संख्यात होते हैं। अनन्त को हम शब्दों में कहना चाहते हैं, समझ में नहीं आता, ये तो भाव श्रद्धा का विषय है। महान दुर्लभ है। प्रत्येक व्यक्ति को इसके ऊपर श्रद्धा होता नहीं है।

उदाहरण - नीतिकारों ने कहा कि जब बरसात का समय आ जाता तो ठण्डी हवा के कार ण पानी की बूँदा-बांदी होने लगती है, उस समय बरसाती मेंढक टर्राने लगते हैं, तो मानसरोवर में रहने वाले हंस वगैरह भागने लगते हैं जब मेंढक टर्राने लगे तो मेंढक का बोलना किसी काम का नहीं।

❍❍❍

आचार्य विद्यासागर जी के चिंतन में नय

- ऐलक श्री सिद्धांतसागर

जैन दर्शन में वस्तु तत्त्व का प्रतिपादन करने की शैली में दो विधाओं का महत्त्व सर्वाधिक है उनमें प्रथम प्रमाण विधा है । और दूसरी नय विधा है प्रमाण खुली आंख के समान वस्तु तत्त्व को अनुभूत है प्रतिपादित करता है नय बंद आंख के समान वस्तु तत्व के एक ही पक्ष को प्रस्तुत करता है नय जैन दर्शन की पहचान है, इस नय का विवचेन और प्रयोग करने में की विद्वान चूक जाते है, वे न चूंके इसलिए आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के नय विषयक चिंतन में को प्रस्तुत लेख में निबद्ध किया जा रहा है।

सात प्रकार के नय माने गये है-नैगमनय, संग्रहनय, व्यवहार नय, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढ, एवंभूतनय हैं। वैसे दो प्रकार के नय होते हैं -अर्थनय और शब्दनय तथा द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नय। सामान्य और विशेष नय इसी के पर्यायवाची निश्चय नय व व्यवहार नय दुनिया में दो नय-एक अपना नय और पराया नय निश्चय नय अपना है और व्यवहार नय तुम्हारा हैं। इसीलिए अपने-अपने नयों में लीन होना चाहिये ।

ये व्यवहार की नीति है, अपना दही कभी खट्टा नहीं होता। दही खट्टा हो या मीठा नवनीत तो मीठा ही होगा।

नयों का सामान्य और विशेष लक्षण कहने चाहिए सामान्य लक्षण अनेकांतात्मक वस्तु में विरोध के बिना हेतु की मुख्यता से साध्य विशेष की यथार्थता के प्राप्त कराने में समर्थ प्रयोग को नय कहते हैं। इसके दो भेद हैं।

द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक । द्रव्य कहो, सामान्य कहो, उत्सर्ग कहो, अनुवृति कहो ये सब एकार्थ वाचक हैं। पर्याय कहो, विशेष कहो, अपवाद कहो, अनुवृत्ति कहो ये सब एकार्थ वाचक हैं। नैगम, संग्रह और व्यवहार ये तीन नय द्रव्यार्थिक नय माने जाते है एवं ऋजु सूत्र, शब्द, समभिरूढ़, एवं भूतनय ये पर्यायार्थिक नय माने जाते हैं अथवा नैगम संग्रह, व्यवहार और

ऋजु सूत्र ये अर्थनय माने जाते हैं तथा शब्द समभिरूढ और एवंभूतनय ये शब्द नय माने जाते है। अनुवृत्ति यानी साथ-साथ चलना, व्यावृत्ति यानी हटना। गुण साथ साथ चलते हैं पर्याय हटती है।

नय शब्द से व्याकरण से सिद्धि- नी एक धातु है, जो प्राणे अर्थ में या ले जाने अर्थ में आती हैं, उसके लिए कारिक संज्ञक बना लो। कारिक संज्ञक बनाने से प्राप्णे अर्थ में एक धातु है। उसके साथ नी का गुण कर दो ने बन गया। अय का विकरण होकर नय बन जाता है। न+अय+ति+नयति बन जायेगा नी के माध्यम से नेता बनता है। नेता कौन होते हैं ? जो आगे होते हैं और पीछे वालों को अपनी मंजिल तक पहुँचा देते हैं। नय के माध्यम नयन बनता है। 'नय' में 'वि' उपसर्ग लगा दो तो विनय बन जाता है और 'प्र' उपसर्ग लगा तो प्रणय बन जाता है वो प्रेम का वाचक बन जाता है।

'सु' उपसर्ग लगा तो सुनय बन जाता है। निः उपसग लगा दो तो निर्णय बन जाता है। नयन, उपनयन भी है, उपनयन यानी चश्मा हो जाता है। तत्त्वों का निर्णय करने के लिए नय होता, जब तक रहेंगे तब तक नयन प्राप्त नहीं होगा। नयन यानी आँख और आँख यानी दर्शन। जब तक नय रहेंगे तब तक दर्शन प्राप्त नहीं होगा। किसका दर्शन नहीं होगा-किसी का नहीं -दर्शन मात्र रह जाना। जहाँ पर आना जाना नहीं होता-वहाँ पर दर्शन होता है और नय का अर्थ प्रापण होता है।

अब नयों का विशेष लक्षण कहते हैं। अनिष्पन्न अर्थ में संकल्पमात्र को ग्रहण करने वाला नैगमनय है। कार्य पूर्ण नहीं हुआ पूर्ण करने का जो संकल्प किया गया उसे नैगमनय कहते हैं। जैसे किसी पुरुष के हाथ में फरसा लेकर जाते हुए किसी पुरुष ने देखा फिर उससे पूंछ लिया तुम कहा जा रहे हो ? उसने कहा मैं प्रस्थ लेने के लिए जा रहा हूँ। प्रस्थ यानी अनाज को मापने का साधन जिसको सेर सवा सेर या अपनी भाषा में जो कुछ बोलते हों। मानोन्मान शब्द तत्त्वार्थ सूत्र के सातवें अध्याय में आया है। मान यानी जिससे वस्तुओं को तौला जाता है। वर्तमान में मान की पद्धति चली गी बस उन्मान रह गया।

सुनते है आज गिलकी, लौकी, परवल भी तुलकर मिलते हैं। कपड़ो में धोती-कमीज, टोपी सब तुलकर के आ जाते हैं, इसलिए सूत्र का एक शब्द अर्थ रहित जैसा लगता है।

प्रस्थ पर्याय उसके पास सन्निहित नहीं है फिर भी संकल्प मात्र ग्रहण करने से प्रस्थ का व्यवहार हो जाता है।

इसी प्रकार ईंधन और उदक कोई उसे इकट्ठे कर रहा उसे देखकर सामने वाले ने पूछा- आप क्या कर रहे हो? उसने कहा- मैं बात बना रहा हूँ। सामने वाला सोचता लकड़ी पानी तो इकट्ठा कर रहा समझ में नहीं आता कि भात बना रहा या बात बना रहा। इस समय भात पर्याय संनिहित नहीं हैं, केवल भात के लिए किये गये व्यापार में भात का प्रयोग हो रहा है।

इसी प्रकार किसी ने कहा खिचड़ी पका रहा हूँ तो उत्तर देने वाला भी बहुत होशियारी से उत्तर देता है- हाथ पैर तो हिला भी नहीं और खिचड़ी पक रही है खिचड़ी तुम बना रहे हो या अपने आप बनती है, यह व्यवहार बहुत स्थूल हुआ करता है। आप प्रसन्नता से उत्तर देते हो। इसी प्रकार मोक्षमार्ग की बात है किसी ने पूछा क्या कर रहे हो तो सामने वाले ने उत्तर दिया - सामायिक कर रहे हैं । ऐसा नहीं सामायिक हो रही है। यानी करने की क्रिया को छोड़कर होने की क्रिया भी देखा करो। कर्ता से हटकर जो हो रहा है उसकी ओर दृष्टि पात करना चाहिए। इसी से अध्यात्म सामने आ सकता है। जहाँ तक हमारा पुरुषार्थ है वहाँ तक करने की क्रिया लागू कर देना चाहिए। पहले कुछ करना होता है फिर बाद में करना नहीं होता है। केवल होता है। इस प्रकार किसी कार्य को प्रारम्भ किया गया किन्तु सम्पन्न नहीं हुआ यानी संकल्प मात्र को विषय बनाने के कारण, उसको नैगमनय कहते हैं।कुछ लोग द्रव्यार्थिक नय कहते हैं।

नय प्रमाण नहीं होते हुए भी प्रमाण तक पहुँचाने में कारण है। यद्यपि इस अपेक्षा से असत्य जैसा लगता है पर असत्य होते हुए भी दुनिया के कार्य इसी सत्य पर चल रहे हैं सामने वाला भी समझ लेता हैं कि झूठे नहीं है, कहने में

आता है कि आटा पीस रहा है, जबकि गेहूँ पीसता है। बदन में कमीज डाल लो तो क्या बदन के अन्दर डालते हैं नहीं। कमीज में बदन को डाल लो। कमीज मेंआप हैं या आप में कमीज है। तो व्यवहार ऐसे ही चलता है। इसी के द्वारा काम चलते हैं । ये जनपद सत्य है, शब्द नय। भले ही इसको मंजूर करे या ना करें, लेकिन व्यवहार पूरा का पूरा समझ लेता है।

हमारे आचार्यो ने कहा जिन वचनों के द्वारा आश्वासन मिल जाता है उन वचनों को कभी नहीं भूलना चाहिए। निश्चित बात है आप मुक्ति दिला नहीं सकते। मुक्ति दिखा नहीं सकते फिर भी कहेंगे मोक्षमार्ग यही हैं। आप विश्वास रखिए और आगे बढ़िये।

संग्रह नय - अपनी जाति का विरोध किये बिना एकत्व रूप संग्रह करके जो नाना पर्याय अनेक भेदों को लिए हुए हैं। उनको अविशेष रूप से ग्रहण करना संग्रहनय है। यथा, सत द्रव्य और घट आदि। सत् ऐसा कहने पर सत् इस प्रकार के वचन और विज्ञान की अनुवृत्ति रूप लिङ्ग से अनुमित सत्ता के आधार भूत सब पदार्थों का सामान्य रूप से संग्रह हो जाता है। घट भी सत् है, पट भी सत् है, गुण भी सत् है, द्रव्य भी सत् है, पर्याय भी सत है, भवन सत है, दुनिया भी सत् है।

इस प्रकार सत् एक शब्द हुआ और सत् की ओर जाने वाली बुद्धि के माध्यम पूरा का पूरा ग्रहण कर लेता है। सत माने प्रशस्त वाची। संग्रहनय में नाना संग्रह है अनेक प्रकार भेद-भिन्नता कुछ भी नहीं होती। मान लो द्रव्य कहा तो द्रव्य में जीव, अजीव, धर्म-अधर्म, आकाश और काल सब द्रव्य आ गये। शुद्ध द्रव्य भी आ गये। अशुद्ध द्रव्य भी आ गया। द्रव्य कहने से जो द्रवीभूत होता है। अपनी-अपनी पर्यायों के माध्यम से उपलक्षित हैं वे जीवादि द्रव्यों को संग्रहनय ग्रहण कर लेता है।

घट कहने से चांदी का भी घट हो सकता। सोने का, पीतल का और मिट्टी का भी हो सकता है, इस प्रकार अन्य भी संग्रहनय के विषय होते चले जाते हैं ।

जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य भी जब तक संग्रह नय के विषय रहते हैं। तब तक वे व्यवहार कराने में वे असमर्थ हैं। इसलिए व्यवहार से जीव द्रव्य के देव, नारकी आदि रूप और अजीव द्रव्य के घटादि भेदों का आश्रय लिया जाता है। इस प्रकार नय की प्रवृत्ति वहीं तक होती है। जहाँ तक वस्तु में फिर कोई विभाग करना संभव नहीं रहता है।

संग्रह नय द्वारा ग्रहीत पदार्थों में विधि पूर्वक भेद डाल देना व्यवहार नय है। अभेद में भी भेद की कल्पना की जाती है। व्यवहार का नाम भेद भी है और असत्य भी कहा है लेकिन ऐसा एकान्त नहीं। यद्यपि दर्शन, ज्ञान, चारित्र के रूप में चिंतन करने वाला ज्ञान व्यवहार ज्ञान माना जाता है। जो भेद में भी भेद परिकल्पना कर रहा है। इसीलिए कथंचित् वह निश्चय के द्वारा निषिद्ध माना गया। लेकिन वह मिथ्याज्ञान नहीं माना गया। चूँकि उसमें विकल्प है इसीलिए उसे अज्ञान कहा है।

संग्रहनय के द्वारा गृहीत पदार्थ की अपेक्षा किये बिना हम व्यवहार करने लग जाए तो वह व्यवहार कभी भी नहीं बन सकता।

उदाहरण - कुछ लोग केशलोंच करने में फेल हो जाते हैं क्यों ? जो संग्रहनय के द्वारा गृहीत पदार्थ वह व्यवहार नय के द्वारा विधिवत् अवग्रहीत नहीं हुआ है इसीलिए फेल हो जाते हैं। विधिवत् संग्रहनय के द्वारा सिर में स्पर्शन इन्द्रिय के द्वारा जिस स्थान के बाल एक बार अंगुली से निकाले उसी स्थान पर आपकी पुनः अंगुली जाना चाहिए यदि वहां से अंगुली हट गी तो बाल छूट जाते हैं। दुबारा पकड़ में ऩहीं आते और दो घंटे की जगह पाँच घंटे लग जाते हैं कुछ लोग आनुपूर्वी क्रम से करते हैं तो जल्दी हो जाते हैं। और यदि करने से अंगुली भी कट जाती है तो फिर किसी दूसरे को बुलाना पड़ता है। अपनी विधि बिगड़ने से दूसरे की विधि विधान की व्यवस्था करनी पड़ती है।

इसीलिए संग्रहनय के द्वारा गृहीत पदार्थ का विभाजन करना बहुत कठिन होता है। और एक उदाहरण दे रहे हैं -

एक व्यक्ति ने बहुत कमाया-बहुत कमाया उसके घर में पाँच-छः बच्चे थे। शहर में सबसे बड़ा मकान, सबसे बड़ी दुकान और पांच छह में विभाजन की बात आी तो बुलाया-पूछा तुम्हें क्या चाहिए वो बोला हमें यह नहीं चाहिए हमें तो वही चाहिए, सब ऐसा ही कहने लगे तो विधिवत वितरण करना बहुत कठिन होता है। संग्रह करके व्यवहार को अपनाना पड़ता है।

इसीलिए जब तक हम विशेषता का आलम्बन नहीं लेंगे तब तक व्यवहार नहीं होता। जीव द्रव्य में भी भेद करेंगे। कि ये देवगति वाला है ये मनुष्य गति वाला है। ये तिर्यंच गति वाला है... आदि। इसीलिए व्यवहार नय में जब तक दूसरा भेद ग्रहीत प्रासंगिक पदार्थ मे नहीं बनता। तब तक वह काम करता जाता है और अनंत भेद बदल जायेंगे। एक ही द्रव्य में अनंत गुण हो जायेंगे और अनंतों का विभाजन एक-एक समय में करते चले जाएं तो अनंत काल में नहीं होगा, इसीलिए व्यवहार को छोड़कर निश्चय का आधार लेना होता है।

जिज्ञासा विधि क्या हैं ?

समाधान- जो संग्रहनय के द्वारा गृहीत अर्थ है उसी के आनुपूर्वी क्रम से व्यवहार प्रवृत्त होता है, यह विधि है। यथा-सर्व संग्रह नय के द्वारा जो वस्तु ग्रहण की गी है वह अपने उत्तर भेदों के बिना व्यवहार कराने में असमर्थ है, इसलिए व्यवहार नय का आश्रय लिया जाता है यथा- जो सत् है वह या तो द्रव्य हैं या गुण/द्रव्य के माध्यम से सत् कहा तो कौन सा द्रव्य है- जीव द्रव्य है या अजीव द्रव्य है या काल द्रव्य है अथवा आकाश द्रव्य है। इसकी कोी विशेषता नहीं करने के कारण वह व्यवहार के लिए शक्य नहीं हैं। संग्रहनय के द्वारा जो द्रव्य था वह छह द्रव्यों में बंट गया। वहाँ जीव की भी कल्पना नहीं कर सकते हैं। इसीलिए व्यवहार के लिए पुनः व्यवहार का सहारा लेना पड़ता है। यदि व्यवहार की आवश्यकता नहीं है तो निश्चय का सहारा ले लेना चाहिए। सुनने के लिए कोई आ जाता है तो बोल दीजिये आपका कर्तव्य बनता है और सुनने के लिए कोई नहीं आता तो बोलने की कोी आवश्यकता नहीं यह निश्चय हो जाता है।

इस प्रकार इस नय की प्रवृत्ति वहीं तक होती है जहाँ तक वस्तु में फिर विभाग करना शक्य नहीं रहता।

ऋजुसूत्रनय -ऋजु का अर्थ प्रगुण है। जो ऋजु अर्थात् सरल को सूत्रित करता है। अर्थात् स्वीकार करता है वह ऋजुसूत्र नय है। अनतिशय का अर्थ होता है अतीत और अनागत काल संबंधी विषय को न ग्रहण करके मात्र वर्तमान काल संबंधी विषय को न ग्रहण करके मात्र वर्तमान काल संबंधी विषय को ही ग्रहण करता है। केवल समय मात्र ही इसका विषय है ऐसा कहा गया। ऋजुसूत्र स्थूल और सूक्ष्म के भेद से दो प्रकार का है।

१. शुद्धता की अपेक्षा से एक समय लिया जाता है ये सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय है।

२. अशुद्धता की अपेक्षा से तत्संबंधी पर्याय जब तक रहेगी वह तब तक मानी जायेगी। यह स्थूल ऋजु सूत्रनय हो गया।

जिज्ञासा - इस प्रकार संव्यवहार के लोप का प्रसंग आता है ?

समाधान - नहीं क्योंकि यहाँ इस नय का मात्र विषय दिखलाया है लोक संव्यवहार तो सब नयों के समूह का कार्य है।

शब्दनय - शब्दनय कभी भी किसी दोष को सहन नहीं करता शब्द बोलते समय बहुत दोष हो सकते हैं, परन्तु शब्द नय कहता है, सावधान रहिए मैं दोष सहन नहीं कर सकूंगा। आपका व्यवहार भले ही चल जाये लेकिन मैं तो जो शब्द का अर्थ है वही निकालूंगा। शब्द नय का अर्थ न्यायालय है जो सर्व लिङ्ग दोष को संख्यादोष को एवं साधन दोष को दूर हटाने में तत्पर रहता है। लिङ्ग क्या, संख्या क्या साधन क्या है यह बताया जा रहा है। लिङ्ग क्या, संख्या क्या साधन क्या है यह बताया जा रहा है। लिङ्ग में स्त्रीलिङ्गं, पुल्लिंग और नपुंसक, ये तीन लिङ्ग होते हैं। एकवचन, द्विवचन और बहुवचन ये संख्या के अर्थ में आ जाते हैं। साधन का अर्थ पुरुष हैं उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और जघन्य पुरुष या अन्य पुरुष है यह जितने भी दोष हैं यह न्याय नहीं यानी उचित नहीं है, इसीलिये शब्द नय इन सब दोषों को दूर करने में हमेशा तत्पर रहता है।

लिङ्ग व्यभिचार-यथा पुण्य तारका और नक्षत्र। ये भिन्न-भिन्न लिङ्ग के शब्द हैं। इनका मिलाकर प्रयोग करना लिङ्ग व्यभिचार है। संख्या व्यभिचार-जलं आपः वर्षा ऋतु आम्रा वनम् वरणा नगरम्। ये एक वचनान्त और बहु वचनान्त शब्द है। इनका विशेष विशेष्य रूप से प्रयोग करना संख्या व्यभिचार है।

साधन व्यभिचार - यथा सेना पर्वतमधि वसति सेना पर्वत पर है। यहाँ अधिकरण कारक के अर्थ में सप्तमी विभक्ति न होकर द्वितीया विभक्ति है इसीलिए यह साधन व्यभिचार है।

पुरुष व्यभिचार -यथा -एहि-मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पिता आओ तुम समझते हो कि मैं रथ से जाऊँगा। नहीं जाओगे। तुम्हारे पिता गये। यहां मन्य से के स्थान में मन्ये और यास्यामि के स्थान में यास्यसि का प्रयोग किया है। इसमें मध्यम पुरुष के साथ उत्तम पुरुष का और मध्यम पुरुष के क्रिया पद के साथ उत्तम पुरुष के स्थान पर मध्यम पुरुष का प्रयोग किया गया है। यह पुरुष का व्यभिचार हो गया।

क़ाल व्यभिचार- यथा विश्व दृश्वाश्य पुत्रो जनिता इसका विश्व दृश्वा पुत्र होगा। विश्व को जिसने देख लिया है ऐसा इसको पुत्र होगा। देख लिया यह भूतकालीन हो गया और होगा यह भविष्यकालीन हो गया। यहाँ विश्वदृश्वा कर्ता रखकर जनिता क्रिया का प्रयोग किया है, इसीलिए यह काल व्यभिचार है। अथवा भावी कृत्यमासीत, होने वाला कार्य हो गया। यहां होने वाले कार्य को हो गया बतलाया है इसीलिए यह काल व्यभिचार है।

उपग्रह व्यभिचार-यथा संतिष्ठते प्रतिष्ठते विरमति, उपरमति, यहा 'समा' और 'प्र' उपसर्ग के कारण 'स्था' धातु का आत्मने पद प्रयोग तथा 'वि' और 'उप' उपसर्ग के कारण 'रम' धातु का परस्मै पद में प्रयोग किया है। इसीलिए यह उपग्रह व्यभिचार है। उपसर्ग लगने से क्रिया पदों में भी भिन्नता को प्राप्त हो जाता है। और साथ-साथ पद में भी अंतर आ जाता है। यद्यपि व्यवहार में ऐसे प्रयोग होते हैं। तथापि इस प्रकार के व्यवहार को शब्दनय अनुचित मानता है। क्योंकि पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से अन्य अर्थ का अन्य अर्थ के साथ संबंध नहीं बन सकता।

इसीलिए लिङ्ग के अतिक्रम किये बिना संख्या का अतिक्रम किए बिना इस शब्द का या वाक्य का प्रयोग कर लेना चाहिए यही न्याय है।

जिज्ञासा - इससे लोकसमय का व्याकरण (शास्त्र का) विरोध होता है।

समाधान - यदि विरोध होता है तो होने दो इससे हानि नहीं क्योंकि यहाँ तत्त्व की मीमांसा की जा रही है, इस प्रकार जजमेंट देंगे तो लोकोपवा हो जाएगा। न्याय तो न्याय है उसी ढंग से दिया जायेगा।

उदाहरण - मित्र के साथ उपचार किया जाता है तत्त्व के साथ उपचार नहीं हो सकता मित्र के साथ आइये-आइये खुशामद आदि कर सकते। तत्व का स्वागत किया जाता है। लेकिन उपचार नहीं किया जाता।

अनेक शब्द मिलकर के एक अर्थ को लाते हैं। यह शब्दनय है लेकिन एक शब्द के द्वारा एक ही अर्थ आता है यह समभिरूढ़ नय है।

समभिरूढ़ नय - भिन्न-भिन्न अर्थों के साथ भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग किया जाता है, इसीलिए इसको समभिरूढ़ नय कहते हैं। चूँकि जो नाना अर्थों को सम अर्थात् छोड़कर के प्रधानता से एक अर्थ में रूढ़ होता है वह समभिरूढ़ नय है। उदाहरणार्थ- गो इस शब्द के वचन आदि अनेक अर्थ पाये जाते हैं तो भी वह पशु इस अर्थ में रुढ़ है। रुढ़ का अर्थ रूढ़ि नहीं रूढ़ लिया है जिस शब्द को जिस अर्थ के लिए नियुक्त किया है उसी अर्थ को वह बताता है इसका नाम समभिरूढ़ नय अथवा अर्थ का ज्ञान कराने के लिए शब्दों का प्रयोग किया जाता है ऐसी लत में एक अर्थ का एक शब्द से ज्ञान हो जाता है, इसीलिए पर्यायवाची शब्द का प्रयोग करना निष्फल है। यदि शब्दों में भेद है तो अर्थ भेद अवश्य होना चाहिए। इस प्रकार नाना अर्थों का समभिरोहण करने वाला होने से समभिरूढ़ नय कहलाता है। जैसे - इन्द्र, शुक्र और पुरन्दर ये तीन शब्द होने से इनके अर्थ भी तीन हैं।

इन्द्र का अर्थ आज्ञा ऐश्वर्यवान है। शुक्र का अर्थ समर्थ है और पुरन्दर का अर्थ नगर का दारण करने वाला है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिए अथवा जो जहाँ अभिरुढ़ है वो वहाँ 'सम' अर्थात् प्राप्त होकर प्रमुखता से रुढ़

होने का कारण समभिरूढ़ नय कहलाता है। यथा-आप कहाँ रहते हैं। अपने में क्योंकि अन्य वस्तु की अन्य वस्तु में वृत्ति नहीं हो सकती। यदि अन्य की अन्य वृत्ति होती है ऐसा माना जाए ज्ञानादिक की ओर रूपादिक की आकाश में वृत्ति होने लगे।

जिस प्रकार अनुयोग द्वारों में आप कर्म सिद्धांत लगाते हैं। उसी प्रकार नय के विषयों के बारे में भी बहुत सावधानी रखनी चाहिए। नय को चक्र कहा है यदि नय का प्रयोग गलत हो गया तो अपने लिये ही घातक सिद्ध हो गया।

एवंभूत नय - जो जिस रूप में हुआ है उसका उसी रूप में उसकी जानकारी उसका निश्चय जो कराता उसका नाम एवंभूतनय है। आशय यह है कि जिस शब्द का जो वाच्य है उस रूपक्रिया के परिणमन के समय ही उस शब्द का प्रयोग करना युक्त है अन्य समय नहीं। जब आज्ञा ऐश्वर्य वाला हो तभी इन्द्र है। अभिषेक करने वाला और न पूजा करने वाला हो।

गाय जब गमन करती हो तभी गाय हैं। बैठी हुी सोती हुी गाय नहीं हैं। अथवा जिस रूप से अर्थात जिस नय से आत्मा परिणत हो उसी रूप से उसका निश्चय करने वाला एवंभूतनय है। यथा इन्द्र रूप परिणत आत्मा इन्द्र है और अग्नि रूप ज्ञान से परिणत आत्मा अग्नि है।

देखों आचार्यों की विशेषता - एक ही नय को किस ढंग से अर्थ की ओर सूक्ष्म-सूक्ष्म ले जा रहे हैं। इसके आगे-आगे के जो नय हैं वे पूर्व-पूर्व नय की अपेक्षा से सूक्ष्म विषयक होते हैं और पूर्व-पूर्व नय के पूरक होते हैं। अर्थात् उनके हेतुक होते हैं। इसीलिए भी यह क्रम कहा है।

इस प्रकार ये सारे-सारे नय पूर्व-पूर्व विरुद्ध महाविषय वाले और उत्तरोत्तर अनुकूल विषय वाले हैं। अल्प विषय क्योंकि सूक्ष्म होता जा रहा है। विरुद्ध विषय इसीलिए हैं। कि वह अब उसका विषय नहीं बना सकता द्रव्य की अनन्त शक्ति है इसीलिए प्रत्येक शक्ति की भिन्नता को ये नय विषय बनाते हैं। इसीलिए नयों के भी बहुत भेद हो जाते हैं। ये गौण और मुख्यता की अपेक्षा से एक दूसरे के अधीन या पूरक हुआ करते हैं। निरपेक्ष नहीं, इसलिए ये सम्यग्दर्शन के हेतु हैं।

जिस प्रकार पुरुष की अर्थक्रिया और साधनों की सामर्थ्यवश तन्तु आदिक संयोजित हो जाते हैं। तो पट आदि कार्यों को प्राप्त हो जाते हैं और स्वतंत्र रहकर अपने कार्य करने में सक्षम नहीं हैं।

जिज्ञासा - आपने जो तन्तु आदि का उपन्यास यानी उदाहरण दिया है वह विषम है क्योंकि तन्तु आदिक भी निरपेक्ष रहकर भी किसी न किसी कार्य को जन्म देते ही हैं। देखने में आता है कि कोी एक तन्तु त्वचा की रक्षा करने में समर्थ है और एक बिल्कुल किसी वस्तु को बांधन में समर्थ है किन्तु ये नय निरपेक्ष रहते हुए थोड़ा भी सम्यग्दर्शन रूप कार्य को पैदा नहीं कर सकते हैं।

समाधान- आपने हमारे आशय को नहीं समझा और उपालम्भ(धमकी) दे रहे हो। हमने यह कहा था तन्तु आदिक भिन्न-भिन्न रहेंगे तो पटादि का कार्य नहीं कर सकेंगे। तन्तु अपने अपने आप में कोी कार्य नहीं कर सकता ऐसा नहीं कहा था। दूसरी बात यह भी रेशा-रेशा से मिलकर बना है और रेशा-रेशा किसी किसी काम में नहीं आते ध्यान रखो बिल्कुल भी अनेक सुतलियों से मिलकर बना है तन्तु भी अनेक रेशाओं का समूह है। आप रेशा नहीं काट सकते, आप कपास नहीं काट सकते, धागा काट सकते हैं,कपास नहीं काट सकते हैं। उसी प्रकार हमारे पक्ष का ही समर्थन होता है और तन्तु आदिक में भी पटादिक कार्य के लिए शक्ति विद्यमान है। इसी प्रकार नय निरपेक्ष भी हो तो बुद्धि रूप नय और शब्द रूप नय जो हैं वे निरपेक्ष भी हो तो भी कारण के वशीभूत होकर सम्यग्दर्शन के लिए जो उनके पास हेतुत्व होना चाहिए उस रूप में परिणमन करने के सद्भाव रूप शक्ति उनके पास विद्यमान रहती है। शक्ति की अपेक्षा से उनके पास इस प्रकार का अस्तित्व है, इसीलिए दृष्टान्त का दृष्टान्त से साम्य ही है।

उपन्यास का अर्थ उदाहरण है, उपन्यास का अर्थ महाकाव्य है। उदाहरण एक देशहुआ करता है, सारी कथा नहीं आती, उपन्यास में महाकाव्य में सर्वांगीण आ जाती है। इसीलिए महाकाव्य, महाकाव्य है। उपन्यास, उपन्यास है।

❍❍❍

श्रमण शतक में आत्मानुभूति की पद्धति

ऐलक श्री सिद्धांतसागर

जैन अध्यात्म निधि में आत्मानुभूति की प्राथमिकता नकारी नहीं जा सकती है। आत्मानुभूति के प्रति हर आध्यात्मवादी का लगाव स्वाभाविक ही होता है। मुमुक्षु वही कहलाता है जो आत्मानुभूति के प्रति अपना संकल्प प्रगाढ़ रखता है। रत्नत्रय की प्राप्ति, मुनि धर्म का पालन और दीक्षा की सार्थकता आत्मानुभूति के बिना संभव नहीं है। लेकिन हर साधक के सामने सवाल एक ही होता है कि आत्मानुभूति किस प्रकार से, किस निधि से और कैसी साधना से प्राप्त होगी। इस मूल का प्रश्न का उत्तर प्राप्त हुये बिना साधक साधना में गहरा उतरने के ब ाद भी सफल नहीं हो पाता है, परमोपकारी अध्यात्म सरोवर के राजहंस गुरुदेव विद्यासागर जी महाराज ने इन सब शंकाओं का समाधान अपने संस्कृत शतक, श्रमण शतक में अनूठे तरीके से दिया है किन्तु यह विषय एक साथ न होने के कारण पाठक को ही विषय की तारतम्यता उपलब्ध नहीं हो पाती है, अतः प्रस्तुत आलेख के माध्यम से यह प्रयास किया जा रहा है कि श्रमण शतक में प्रतिपादित आत्मानुभूति की पद्धति सहज रूप से ग्राही बने।

आत्मानुभूति स्वरूप-

आत्मानुभूति स्वरूप को स्पष्ट करते हुये परमपूज्य गुरुदेव ने कहा है कि आत्मानुभूति एक श्रेष्ठ चैतन्य मूर्ति है और सभी के लिये यह इष्ट होती है, जब यह आत्मानुभूति साक्षात् हो जाती है तो सच्चिदानंद मोक्षमय सुख को उत्पन्न करती है जिसे मोक्षमय सुख अपने स्वरूप में उपलब्ध हो जाता है वह मुनि जगत की सम्पूर्ण सम्पदा को क्यों मांगेगा। क्योंकि जगत की सारी सम्पदा जन्म-मरण के दुःख से युक्त है और बहुत विपत्ति को देने वाली है, इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि आत्मानुभूति चेतन्य सागर में रमण का परिणाम है। और जो निज चेतना में रमण करता है, वह बाह्य जगत में कभी रमण कर नहीं

सकता है, क्योंकि जब आत्मा की अनुभूति होती है तब जो आह्लाद सुख उपलब्ध होता है वह अपूर्व अनुभव होता है और ऐसा सुख पांच इन्द्रिय के विषयों में न कभी किसी को मिला है और न कभी मिल सकता है। इस आशय़ का गुरुदेव द्वारा रचित छन्द यहाँ दृष्टव्य है -

यदा साऽऽत्मानुभूति रूदेति शुद्ध चैतन्यैकमूर्तिः।
मुनिर्नश्वर विभूति-मिच्छति किं दु ख प्रसूतिम् ?

आत्मानुभूति वर चेतन मूर्ति प्यारी,
साक्षात् यदा उपजीत शिव सौख्यकारी
माँगे तथा मुनि क्या जग-सम्पदा को ?
देती सदा जनम जो बहु-आपदा को ॥३०॥श्रमण शतक

आत्मानुभूति शून्य देवी दुखी

आत्मानुभूति की आवश्यकता- परमपूज्य आचार्यश्री ने आत्मानुभूति की पद्धति बताते हुये यह कहा है कि स्वर्ग का इन्द्र, विद्याधर, भले ही जिनेन्द्र देव का दास हो और मनुष्य भी वेदना से पीड़ित रहता है इसलिए आत्मानुभूति की आवश्यकता स्पष्ट हो जाती है कि आत्मानुभूति से शून्य राग में रचा-पचा कोी भी साधक दुःख की पीड़ा को दूर नहीं कर सकता है। दुःख की पीड़ा अगर कोी समाप्त करने की शक्ति रखती है तो वह आत्मानुभूति है, ऐसी आत्मानुभूति की आवश्यकता अनुभूत हो जाने के बाद श्रमण अथवा श्रावक एवं मुमुक्षु हर मूल्य पर आत्मानुभूति प्राप्त करने के लिये प्रयासरत हो जाता है। इसी भाव को रेखांकित करते हुए पूज्यपाद श्री ने लिखा है

सुखिनः सुखे सखे न मकत्सखाः खेचरोऽयुतःसखेन।
नरो जिनदास ! खे न ह्यार्तस्ततः रचे वस से न ॥

देखो सखे ! अमर लोग सुखी न सारे,
वे भी दुःखी सतत, खेचर जो बिचारे,
दुःखार्त्त हि दिख रहे नर मेदिनी ये,
शुद्धात्म में रम अतः, मन रागिनी में ॥९५॥श्रमण शतक

आत्मानुभूति दुःख का अंत -

दु ख भूलने का साधन शुद्धात्म अनुभूति बताते हुये आचार्यश्री ने कहा है कि हे महावीर भगवान आपका सुशिष्य जिस समय शुद्धात्मा का निरीक्षण करता है, उस समय उसके सारे दुखों का अंत हो जाता है अथवा दुख को भूल जाता है। एक आनंद प्राप्त होता है, जैसे वसंत ऋतु को आते ही जो रमणीय दृश्य निर्मित होता है उस दृश्य को देखकर कोयल आनंदित होती है उसी तरह आत्मानुभूति करने वाला दुःखों से मुक्त हो कर आनंदित होता है। इसी संदर्भ में श्रमण शतक का ७२ वां छन्द दृष्टव्य है-

स मुदमेति वासन्तः समुत्सवो बने यदा वासन्तः।
नेत्वा निजवासवन्त आशु शं शिष्या वा सन्तः॥

ले रम्य दृश्य ऋतुराज बसन्त आता,
ज्यो देख कोकिल उसे मन मोद पाता।
हे वीर ! त्यों तब सुशिष्य खुशी मनाता,
शुद्धात्म को निरख औ दुःख भूल जाता ॥७२॥

सच्चे सुखी की कामना रखने वाले आत्मानुभूति अवश्य करें। यह प्रेरणा देते हुये परम पूज्य आचार्यश्री ने आत्मानुभूति को सच्चे सुख चाहने वाले का इष्ट बताया है। इस विषय के अन्तर्गत कहा है कि संसार सागर असार अपार और खारा है जिसमें दुःख ही दुःख है, सुख की तो लगार भी नहीं हैं। यदि संसारी प्राणी सहन सुख को चाहते हैं तो उन्हें आत्मा की अनुभूति करते हुये आत्मा में ही लीन रहना चाहिये। यह एक अध्यात्म वादियों के लिये आचार्यश्री की शाश्वत प्रेरणा है। इस छन्द के अनुप्रास और अलंकार छटा के साथ-साथ भाव पक्ष भी श्रेष्ठ प्रयोजनीय रहा है। देखें इन छन्दों को -

क्षारतः संसारतः पारावारतो दुःखमसारतः।
निजे भवाञ्जसारतः सुखं सत् स्यात् स्वतः सारतः॥

संसार सागर असार अपार खारा,
है दुःख ही, सुख जहाँ न मिले लगारा।
तो आत्म में रत रहो, सुख चाहते जो,
है सौख्य तो सहज में, नहिं जानते हो ?॥७७॥

आत्मानुभूति के साधन और साधना -

धर्म से अभिभूत मुनि ही आत्मानुभूति के पात्र होते हैं वे भव्य जीव होते हैं तथा जिनने मन वचन काय को गुप्त करके गुप्ति पथ की साधना की है और समता परिणाम को धारण कर लिया है वे ही आत्मानुभूति को प्राप्त करते हैं । ग्रहस्थ कितना भी ज्ञानी और अध्यात्मवादी क्यों न हो जाये फिर भी वह संयम और गुप्ति के अभाव में आत्मानुभूति को प्राप्त नहीं कर सकता है। इसी आशय को लेकर आचार्यश्री ने इस छन्द की रचना की है -

यो धत्ते सुदृशा समं मुनिर्वाङ्मनोभ्यां च वपुषा समम् ।
विपश्यति सहसा स मं ह्यनन्तं विषयं न तृषा समम् ॥

वाणी, शरीर, मन को जिसने सुधारा,
सानन्द सेवन करे समता-सुधारा।
धर्माभिभूत मुनि है वह भव्य जीव,
शुद्धात्म में निरत है रहता सदैव ॥८४॥

आत्मानुभूति सम्यग्दर्शन-

परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी ने अपने ग्रन्थ श्रमण शतक में कहा है कि जो संत समयसार रूपी सरोज का भ्रमर बन के स्वाद ले लेता है वह पर का स्वाद लेने के लिये कभी भटकता नहीं है। सम्यक्त्व की प्राप्ति निज आत्मा से ही होती है, पर से नहीं।

जिस तरह से सुधा का रस चन्द्र बिम्ब से ही झरता है अन्य किसी से नहीं इसी तरह से सम्यक्त्व की प्राप्ति आत्मानुभूति से ही होती है, अन्य से नहीं इस आशय का यह काव्य विद्वानों के सामने प्रस्तुत हैं -

सतः समयसारसतः सन्त्वलयोऽदूराः सहसा रसतः ।
परान्न ह्यक्साऽरसतः स्वतःसुधा स्रवति सारसतः ॥

जो सन्त हैं समय-सार सरोज का वे,
आस्वाद ले भ्रमर-से पर में न जावें।
सम्यक्त्व हो न पर से, निज आत्म से ही,
भाी ! सुधा-रस झरे शशि-बिम्ब से ही ॥९३॥

आत्मानुभूति और तत्त्व चिंतन-

जो सात तत्त्वों के अनुचिंतन में लग जाता है और पाँच इन्द्रियों के विषयों की चाह में मन को नहीं लगाता है, वह आत्मानुभूति को प्राप्त करता है। पूज्य श्री ने विषय की चाह को कुपथ बताते हुये कहा है, कि जो विषय चाह में लगेगा, उसे सुख की प्राप्ति कैसे होगी ? और ऐसे विषय लोलुपी की आत्मानुभूति का झरना कैसे झरेगा ?

न मनोऽन्यत् सदा नय दशा सह तत्त्वसप्तकं सदा नय ।
यदि न त्रासदाऽनयः पन्थास्ते स्वरसदा न यः ॥

तू चाहता विषय में मन ना भुलाना,
तो सात तत्त्व-अनुचिन्तन में लगा ना।
ऐसा ना हो, कुपथ से सुख क्यों मिलेगा ?
आत्मानुभूति झरना फिर क्यों झरेगा ? ॥९९॥

परम पूज्य आचार्य श्री ने आत्मानुभूति के विषय को लेकर अटके-भटके जनों को लेकर आगम का आइना श्रमण-शतक के माध्यम से दिखाते हुये उद्घोष किया है कि गृहस्थ को शुद्धोपयोग, आत्मानुभूति और वीतराग सम्यक् दर्शन नहीं हो सकता है। आत्मानुभूति तो गुप्तिमय संयमी विषय चाह रहती मुनि को ही होगी।

❍❍❍

आचार्य विद्यासागर जी के चिन्तन में गृहस्थ के निश्चय सम्यग्दर्शन का अभाव

ब्र. सविता जैन, पिपरई

विद्वानों के बीच में समय-समय पर ऊहापोह होता रहा है कि गृहस्थ के निश्चय सम्यग्दर्शन होता है कि नहीं। एकान्त पक्ष वाले विद्वानों के निश्चय सम्यग्दर्शन को चतुर्थ गुण-स्थान में समारोपित करने का बहुत अधिक प्रयास किया है। यहां तक कि उन्होंने अपने अनुयायिओं को स्वच्छन्द बनाते हुए निश्चय सम्यग्दर्शन, अविरति सम्यग्दृष्टि अवस्था में सिद्ध करने को जोरदार प्रयास किया हैं। उन्होंने यह तक कह दिया है कि यदि चतुर्थ गुणस्थान से निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं होगा तो मोक्षमार्ग का प्रारम्भ चतुर्थ गुणस्थान से नहीं हो सकता हैं। इसके लिए छहढाला की तृतीय ढाल का उदाहरण देते हुए वे कहते है कि **''चरित्त मोह वंश लेश न संजम पै सुरनाथ जजै हैं''** अर्थात् चतुर्थ गुणस्थान में संयम नहीं होने के बाद भी निश्चय सम्यग्दर्शन या वीतराग सम्यक् दर्शन चतुर्थ गुणस्थान में ही होता हैं। कुछ विद्वानों ने चतुर्थ गुणस्थान में निश्चय सम्यग्दर्शन सिद्ध करने के लिए वीतराग और सराग सम्यग्दर्शन के भेद व्यवस्था को ही अमान्य करने का प्रयास किया हैं और उन्होंने कहा है ज्ञानानुभूति ही आत्मानुभूति हैं, वही सम्यग्दर्शन है , यह इसका भाव है। प्रकरण में एक सराग सम्यग्दर्शन दूसरा वीतराग सम्यग्दर्शन ऐसे दो भेद किये हैं।

इसके स्पष्टीकरण देते हुए पं. फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री ने सर्वाथसिद्धि की विशेषार्थ व्याख्या करते हुए लिखा है जो प्रशम,संवेग अनुकम्पा और आस्तिक्य ये चार ऐसे चिन्ह हैं जो आत्मविशुद्धि रूप परमार्थ कहा गया है। किन्तु इसे जो परमार्थ स्वरूप जानते हैं, यह उनकी भूल हैं। नियम यह है कि जितनी सम्यग्दर्शनादि स्वभाव पर्याय होती हैं। वे मात्र स्वतः सिद्ध अनादि अनन्त कर्म से अनावृत होने के कारण नित्य उद्योत स्वरूप और विशद ज्योतिज्ञापक आत्मा का अपने उपयोग का अवलम्बन

लेने से ही उत्पन्न होती है। इसीलिए मूल में सम्यग्दर्शन रूप स्वभाव पर्याय को आत्मविशुद्धि मात्र कहा है क्योंकि यह मिथ्यात्व आदि कर्मों के उदय में न होकर उनके उपशम क्षय और क्षयोपशम के होने पर ही होता है। इतना अवश्य है कि यह सम्यग्दर्शन चौथे आदि गुणस्थानों में भी पाया जाता है। अतः इसके सद्भाव में जो पराश्रित प्रशमादि भाव होते हैं वे इसके ज्ञापक या सूचक होने से निमित्त पने की अपेक्षा कारण में कार्य का उपचार इन्हें व्यवहार से सराग सम्यग्दर्शन कहा गया हैं।

इस प्रसंग में पं. फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री ने अपनी बुद्धि का प्रयोग करके आत्मानुभूति रूप विशुद्ध सम्यग्दर्शन को परमार्थ रूप घोषित करने का प्रयास किया है सच यह है कि प्रशम, संवेग, अनुकम्पा अस्तिक्य भाव सम्यग्दर्शन के कार्य है ज्ञान रूप नहीं है। और ये गुण सम्यग्दर्शन के साथ अन्वय व्यक्ति रखते हैं । तथा आचार्य पूज्यपाद एवं अकलंक देव तथा आचार्य विद्यानन्दि जी ने सराग और वीतराग सम्यग्दर्शन का स्पष्ट लक्षण बताते हुए कहा है आत्मविशुद्धि मात्र वीतराग सम्यग्दर्शन है तथा प्रशम, संवेग , अनुकम्पा, आस्तिक्य आदि भाव सराग सम्यग्दर्शन हैं। अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि सम्यग्दर्शन आत्मानुभूति आत्मिक ज्ञान रूप ही होता है। इन सब आचार्यों के सिवाय आचार्य जयसेन जी ने समयसार की तात्पर्य वृत्ति में

सराग सम्यग्दृष्टि सन्नशुभकर्मकर्तृत्त्वं मुंञ्चति।

निश्चय चारित्रा विना भावि वीतराग सम्यदृष्टि भूत्वा शुभाशुभ सर्व कर्म कर्तृत्वं च मुंञ्चति॥ गा. ९७ पृ. १२५,१३

सराग सम्यग्दृष्टि केवल अशुभ कर्म के कर्तापने को छोड़ता है। जबकि निश्चय चारित्र के अविनाभूत वीतराग सम्यग्दृष्टि होकर वह शुभ और अशुभ सर्व प्रकार के कर्मो के कर्त्तापने को छोड़ देता है। इस सन्दर्भ से यह सिद्ध होता है कि वीतराग सम्यग्दृष्टि निश्चय चारित्र के साथ अविनाभाव सम्बन्ध रखता है अतः जहां-जहां चारित्र रूप अभेद रत्नत्रय होता हैं ।

वहां-वहां नियम से वीतराग सम्यक्त्व होता है। वृहद् द्रव्य संग्रह में त्रिगुप्तावस्थालक्षण वीतराग सम्यक्त्व प्रस्तावे यानि त्रिगुप्ति रूप अवस्था ही वीतराग सम्यक्त्व का लक्षण है। इससे पंडित जी का प्रयास सफल होता हुआ नजर नहीं आ रहा है, क्योंकि वीतराग सम्यग्दर्शन मात्र आत्मानुभूति न होकर निश्चय चरित्रात्मक हैं।

वीतराग सम्यग्दर्शन का स्वामी कभी भी असंयमी गृहस्थ नहीं हो सकता हैं। इस सन्दर्भ में परमात्म प्रकाश के दूसरे अध्याय का १७ वां दोहा की टीका अवलोकनीय है।

अत्राह प्रभाकर भट्टः निजशुद्धात्मैवोपदेय इति रूचिरूपं निश्चय सम्यक्त्वं भवतीति बहुधा व्याख्यातं पूर्व भवद्भिः इदानी पुनः वीतराग चारित्राविनाभूतं निश्चय सम्यक्त्वं व्याख्यात मिति पूर्वपर विरोधः कस्मादिति चेत् निजशुद्धात्मैवोपदेय इति रूचिरूपम् निश्चय सम्यक्तवं गृहस्थावस्थायां तीर्थंकर परमदेव भरत सगर राम पाण्डवादीनां विघते न च तेषां वीतराग चारित्रमस्तीति परस्पर विरोघः अस्ति चेत्तर्हि तेषामसंयतत्वं कथमिति पूर्व पक्षः। तत्र परिहार मात-तेषां शुद्धत्मोप देय भावनारूपम् निश्चय सम्यक्त्वं विद्यते परं किन्तु चारित्र मोहो दयेन स्थिरता नास्त्ति व्रत प्रतिज्ञायङ्गो भवतीति तेन कारणेनासंयता वा भण्यन्ते। शुद्धात्भावना च्युताः सन्तः भरतादयो शुभराग योगात् सराग सम्यग्दृष्ट्यो भवन्ति या पुनस्तेषां सम्यक्त्वस्य निश्चय सम्यक्त्व संज्ञा वीतराग चारित्रा विनाभूतस्य निश्चय सम्यक्त्वस्य परंपरया साधकत्वादिति। वस्तु वृत्या तु सम्यक्त्व सराग सम्यक्त्वख्यं व्यवहार सम्यक्त्व मेवे ति

भावार्थ : प्रश्न- निज शुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसी रूचिरूप निश्चय सम्यक्त्व होता है ऐसा पहले कई बार आपने कहा है और अब

वीतराग चारित्र का अविनाभूत निश्चय सम्यक्त्व है ऐसा कह रहे हैं। दोनों में पूर्वापर विरोध है। वह ऐसे कि निज गृहस्थावस्था में तीर्थंकर परमदेव तथा भरत , सगर राम पाण्डव आदि को रहता है परन्तु उनको वीतराग

चारित्र नहीं होता इसलिए परस्पर विरोध है यदि होता है ऐसा मानें तो उनके असंयतपना कैसे हो सकता हैं। उत्तर- उनके शुद्धात्मा की उपादेयता की भावना रूप निश्चय सम्यक्त्व रहता है किन्तु चारित्र मोह के उदय के कारण स्थिरता नही हैं। व्रत की प्रतिज्ञा भंग हो जाती है, इस कारण उनको असंयत कहा जाता है। शुद्धात्मभावना से च्युत होकर शुभराग के योग से वे सराग सम्यग्दृष्टि होते हैं। उनके सम्यक्त्व को जो सम्यक्त्व कहा गया है। उसका कारण यह है कि वह वीतराग चारित्र के अविनाभूत निश्चय सम्यक्त्व का परम्परा साधक हैं। वस्तुतः तो वह सम्यक्त्व भी सराग सम्यक्त्व नाम वाला व्यवहार सम्यक्त्व ही हैं। उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि गृहस्थ के निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं होता हैं।

❍❍❍

आचार्य विद्यासागर जी के चिन्तन में द्रव्यलिंङ्गी से तात्पर्य मिथ्यादृष्टि ही नहीं है

ब्र. डॉ. अनिल जैन प्राचार्य, जयपुर

साधु आदि के बाह्य वेष को लिङ्ग कहते है जैन आगम अनुसार लिङ्ग तीन प्रकार के होते है मुनि, आर्यिका और उत्कृष्ट भावको ये तीनों लिङ्ग ही द्रव्य-भाव के भेद से दो प्रकार के हो जाते है। शरीर का वेष और यथाजात दिगम्बर रूप द्रव्य लिङ्ग कहलाता है यह द्रव्य लिङ्ग भेदरत्नत्रय रूप होता है तथा अन्तरङ्ग की वीतरागता भावलिङ्ग है जो अभेदरत्नत्रय रूप निर्विकल्प समाधि रूप होता है। द्रव्यलिङ्ग से तात्पर्य मात्र मिथ्यादृष्टि से नहीं है अपितु क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों की गणना भी द्रव्यलिङ्ग में की गई है। अष्टपाहुड के भावपाहुड में गाथा ४४ में ऋषभदेव के पुत्र बाहुबली की गणना द्रव्यलिङ्ग में की गई है जबकि वे क्षायिक सम्यग्दृष्टि थे एवं बल ऋद्धि के धारक थे। फिर भी उन्हें भाव कषाय के कारण कलुष परिणाम रूप होकर कुछ समय तक आतापन योग धारण कर तपस्या में स्थित हुए थे। फिर भी उन्हें भावशुद्धि के बिना सिद्धि भी प्राप्ति नहीं हुई।

देहादिचत्तसंगो माणकसाएण कलुसिओ धीर ।

अत्तावणेण ज्ञादो बाहुबली किन्तियं कालं ॥४४॥ भा.पा.

इस बाहुवली के उदाहरण से यह बात सिद्ध होती है कि द्रव्य लिङ्ग मिथ्यादृष्टि रूप में होता है, असंयत सम्यग्दृष्टि के रूप में होता है, देशव्रती के रूप के भी भावलिङ्ग होता है तथा प्रमत्त संयत के रूप में भी द्रव्यलिङ्ग होता है क्योंकि निवृत्ति रूप अभेद रत्नत्रय जब तक प्राप्त नहीं होता है। तब तक भावलिङ्ग की प्राप्ति नहीं होती है।

द्रव्यलिङ्ग के निषेध का कारण आचार्यों ने स्पष्ट किया है कि शिष्य द्रव्य लिङ्ग निषिध्य ही है ऐसा मत मानों किन्तु भावलिङ्ग से रहित यतियों को यहां सम्बोधन किया गया है, वह यह है कि हे तपोधन। द्रव्यलिङ्ग मात्र से सन्तोष मत करो किन्तु द्रव्यलिङ्ग के आधार से निर्विकल्प रूप समाधि की भावना करे। भावलिङ्ग रहित द्रव्यलिङ्ग निषिध है न कि भावलिङ्ग सहित। क्योंकि द्रव्यलिङ्ग का आधार भूत तो यह देह है उसका ममत्व निषिध्य है। समयसार तात्पर्य वृत्ति ४१४ गा. अहोशिष्य। द्रव्यलिङ्ग निषिद्धमेवेत्ति त्वं मा ज्ञानीति किन्तु भावलिङ्ग रहितानां यतीनां सम्बोधनं कृतं। कथं इति चेत् अहो तपोधना ! द्रव्यलिङ्ग मात्रेण सन्तोषं मा कुरुत। किन्तु द्रव्यलिङ्गधारेण निर्विकल्पसमाधि रूपभावानां कुरूत। भावलिङ्ग रहितं द्रव्यलिङ्ग निषिद्धं न च भावलिङ्ग सहितं। कथं। इति चेत् द्रव्यलिङ्गाधारभूतो योऽसौ देहस्तस्य ममत्वं निषिद्धं।

पण्डित जयचन्द्र जी छावडा जी ने समयसार की ४११ गाथा में लिखा है कि यहां मुनि श्रावक के व्रत छुड़ाने का उपदेश नहीं है जो केवल द्रव्य लिङ्ग को ही मोक्षमार्ग मानकर भेषधारण करते हैं उनको द्रव्यलिङ्ग का पक्ष छुडाया है कि वेष मात्र से मोक्ष नहीं है।

द्रव्यलिङ्ग धारण करने की आवश्यकता इसलिए होती है कि जो वस्त्रादि ग्रन्थ से संयुक्त है वे निर्ग्रन्थ नहीं कहे जा सकते। बाह्य परिग्रह के सद्भाव होने पर अन्तरङ्ग परिग्रह के अभाव का कोई कारण नहीं बनाता है। भावलिङ्ग

से द्रव्यलिङ्ग और द्रव्यलिङ्ग से भावलिङ्ग होता है अतः दोनों को ही प्रमाण मानना चाहिए। एकान्त मत से सब कुछ नष्ट हो जाता है।

बाह्यतप, अध्यात्म तप का साधक होता है। बिना बाह्य तप के अध्यात्म तप या अन्तरङ्ग तप की कल्पना करना ही व्यर्थ होती है जिसने बाह्य तप की उपेक्षा या द्रव्यलिङ्ग की उपेक्षा की हैं, वे मात्र भावलिङ्ग का अथवा अन्तरङ्ग तप का सपना देख सकते हैं। परन्तु वे उसे साकार नहीं कर सकते। आचार्य समन्तभद्र देव कुन्थुसागर भगवान का स्तवन करते हुए कहा है- बाह्यं तपः परम दुश्चर मा चरस्त्वं माध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम्।

ध्यानं निरस्य कलुष-द्वय मुत्तरस्मिन् ध्यानद्वये ववृत्तिषेऽति-शयोपपन्ने ॥८३॥

भरतचक्रवती ने भी द्रव्यलिङ्ग धारण किया था इस सन्दर्भ में तीन ग्रन्थों के प्रमाण उपलब्ध होते हैं। समयसार की तात्पर्य वृत्ति की गाथा. ४१४ में लिख है जो दीक्षा के बाद घड़ी काल में ही भरत चक्रवर्ती आदि ने मोक्ष प्राप्त किया है। उन्होंने भी निर्ग्रन्थ रूप से ही मोक्ष प्रदान किया है किन्तु समय थोड़ा होने के कारण उनका परिग्रह त्याग लोग नही जानते है।

येऽपि घटिका द्वयेन मोक्षं गता भरतचक्रवर्त्यादयस्सेऽपि निर्ग्रन्थरूपेणैव परं किन्तु तेषां परिग्रह त्यागं लोका न जानन्ति स्तोक कालत्वादिति भावार्थः।

परमात्म प्रकाश के दूसरे अध्याय के ५२वें दोहे में आचार्य ब्रह्मदेव सूरि जी ने टीका करते हुए लिखा है कि भरतेश्वर ने दीक्षा धारण की , केशलुञ्चन किया तथा हिंसादि पांच पापों का त्याग करते हुए महाव्रतों को स्वीकार किया फिर अन्तर्मुहूर्त्त में निज शुद्धात्मा का ध्यान करके निर्विकल्प हुए फिर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया। परन्तु उसका समय बहुत कम होने से महाव्रत की प्रसिद्धि नहीं हो पाई।

❍❍❍

आचार्य विद्यासागर जी के चिन्तन में शुभोपयोग औदयिक भाव नहीं

ब्र. सविता दीदी (पिपरई)

कर्म के उदय से होने वाले भाव या परिणाम को औदयिक भाव कहते हैं, कर्म का उदय जीव के परिणामों पर प्रभाव डालता है। शुभोपयोग और अशुभोपयोग का सम्बन्ध कर्म के क्षयोपशम और उदय से है। शुभोपयोग, अशुभोपयोग का निर्धारण मोहनीय कर्म के क्षयोपशम और उदय से होता है। मोहनीय कर्म की विशिष्ट क्षयोपशम दशा में जब अरहन्तादि पंच परमेष्ठी के प्रति भक्ति और दया, करूणा का परिणाम होता है तब जीव के शुभोपयोग रूप परिणाम होते हैं एवं मोह कर्म के विशेष उदय से पांच इन्द्रियों के विषय एवं कषाय के प्रति अवगाढ़ता होने से एवं दुष्ट गोष्ठियों के साथ, दुःश्रुतियों का समावेश होने से उग्र और उन्मार्गी हो जाने पर अशुभोपयोग होता है। यह अशुभोपयोग और शुभोपयोग की स्थिति मोह की धारा से ही नियन्त्रित होती है अर्थात् मिथ्यात्व के उदय के साथ जो कुछ भी क्रियायें की जाती हैं, वे सब अशुभोपयोग रूप होती हैं। भले ही वे क्रियायें शुभ क्यों न हों ? परन्तु वे अशुभोपयोग के खाते में ही आती हैं। तथा सम्यक्त्व के साथ मिथ्यात्व के उपशम, क्षय, क्षयोपशम के साथ जो भी क्रियायें होती हैं वे सब शुभोपयोग के खाते में समायोजित हो जाती हैं।

शुभोपयोग में दान-पूजादि की क्रिया मुख्य होती है अतः यह सोचना होगा कि पूजन-दानादि, के पुण्य भाव जो उत्पन्न हुए हैं वे किसी पुण्य कर्म की प्रकृति के उदय से यदि उत्पन्न हो तो उन्हें औदयिक भाव कहा जायेगा, अव यदि कोई कहे पूजनादि का भाव अन्तराय कर्म के उदय से होता है, औदयिक कहा जायेगा किन्तु दानादि की क्रिया तो अन्तराय कर्म के क्षयोपशम से ही सम्भव होती है। पुण्यकर्म की प्रकृतियों के उदय यदि शुभोपयोग रूप परिणाम उत्पन्न होते माना जाये तो वह कौन सी प्रकृति

होगी जिसके उदय से दानादि के भाव जीव में उत्पन्न हों। यदि साता वेदनीय के उदय से पूजनादि का भाव उत्पन्न होना माना जाये तो साता वेदनीय का उदय दान-पूजादि के भाव का नियामक कारण नहीं है। साता वेदनीय के उदय में विपरीत परिणाम भी देखे जाते हैं अब वह हमें पुण्य कर्म की प्रकृति खोजना होगी जिसके उदय में दान पूजा आदि के भाव उत्पन्न हों। यदि समस्त शोध के उपरान्त भी निर्बाध रूप से कोई भी पुण्यकर्म की प्रकृति दान-पूजादि भाव को उत्पन्न करने मे समर्थ नजर नहीं आती है तो फिर शुभोपयोग को औदयिक भाव कहना कैसे सम्भव होगा ?

पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज जी ने शुभोपयोग को क्षयोपशम भाव निरूपित करते हुए सदैव प्रवचन सार के द्वितीय अध्याय की ६५वी गाथा की तत्त्व प्रदीपिका को विद्वानों के सामने प्रस्तुत की है जिसमें कहा गया है जिस जीव के दर्शन मोहनीय अथवा चारित्र मोहनीय कर्म की विशेषता रूप क्षयोपशम अवस्था हुई हो और शुभ राग का उदय हो, उस जीव के जो भक्ति पूर्वक पंच परमेष्ठी के देखने, जानने, श्रद्धा करने रूप परिणाम होवें तथा सब जीवों में दयाभाव हो यही शुभोपयोग का लक्षण जानना चाहिये।

विशिष्टक्षयोपशम दशाविश्रान्त दर्शन चारित्र मोहनीय पुद्गलानुवृत्ति परत्वेन परिग्रहीत शोभनोप रागत्वात् परम भट्टारक महादेवाधि देव परमेश्वरार्हत्सिद्ध साधु श्रद्धाने समस्त भूत ग्रामानुकम्पाचरणे च प्रवत्ताः शुभ उपयोगः ॥६५॥

उक्त संस्कृत टीका के अनुवाद में दो धारायें उपलब्ध हुई हैं एक धारा ने जिसका अनुवाद पं. परमेष्ठी दास जैन ने किया है तथा सोनगढ़ से इसका प्रकाशन हुआ है, इसके अनुवाद में शुभोपयोग को क्षयोपशम भाव स्वीकार दिया गया है, किन्तु श्रीमद् रायचन्द्र ग्रन्थमाला से प्रकाशित प्रवचन सार में क्षयोपशम दशा न होने पर लिखा है इससे यह सिद्ध होता है कि क्षयोपशम दशा विश्रान्त का सन्धि विग्रह दशा अविश्रान्त कर दिया है जबकि विशिष्ट क्षयोपशम दशा-विश्रान्त का संधिविग्रह दशा+विश्रान्त

के रूप में होना चाहिए। इससे शुभोपयोग क्षयोपशम भाव सिद्ध होता है। शुभोपयोग को औदयिक भाव मानना एक बहुत बड़ी मूल भरा निर्णय है। परीक्षा करने पर किसी भी तर्क अथवा आगम प्रमाण से शुभापयोग औदयिक भाव सिद्ध नहीं होता है। तथा शुभोपयोग चतुर्थ गुणस्थान से प्रारम्भ होने के कारण इस शुभोपयोग को औदयिक भाव किसी रूप में नहीं माना जा सकता है। तथा शुभोपयोग मोह के उदय से कभी नहीं होता है। शुभोपयोग तो मोह से परे भाव का नाम हैं क्योंकि दर्शन मोह की सर्वधाती प्रकृति के उदय होने पर अशुभोपयोगी ही होता है और शुभोपयोग दर्शन मोहनीय एवं चारित्र मोहनीय के क्षयोपशम से ही होता है।

कई विद्वानों की विचार धारा परिवर्तन की अपेक्षा रखती है जो शुभोपयोग को औदयिक भाव मानते हैं। मुझे विश्वास है आचार्य विद्यासागर जी के इस चिन्तन का सम्मान करते हुए वे अपनी धारणा अवश्य बदलेंगे।

❍❍❍

युग सृजेता

विद्यासागर आज के महावीर हो,
हिंसा की अग्नि बुझाने नीर हो।
दीन दुखियों के मसीहा तुम बने,
डूबती किश्ती की तुम तकदीर हो।
चरण चिन्तन चेतना की मूर्ति तुम,
तत्त्व चिन्तक आत्मा ध्याता धीर हो।
कौन कहता है तुम मुझसे दूर हो,
तुम मेरे पलकों की गुरु तस्वीर हो।
युग सचेता कान्ति दृष्टा संत तुम,
युग सृजेता मोक्ष की तकदीर हो।

आचार्य विद्यासागर जी के चिन्तन में द्रव्य से पर्याय सर्वथा पृथक नहीं है

ब्र. सविता दीदी (पिपरई)

वर्तमान में बिना गुरु के स्व स्वाध्यायी कई विद्वान प्रकार के अर्थ मनमाफिक निकालते हैं और धीरे-धीरे वे एकान्तग्राही बन जाते हैं। ऐसे ही द्रव्य के विषय में कुछ एकान्त ग्राही लोगों ने अपना राग अलपना शुरु कर दिया है। वे कहते हैं कि द्रव्य से पर्याय सर्वथा भिन्न होती है। इस उच्छृंखल धारणा को सुनकर पूज्य आचार्य की विद्यासागर जी महाराज बहुत चिन्तित हुए और उन्होंने आगम के परिप्रेक्ष्य में अपनी खोजबीन करना शुरु कर दी। उन्होंने सर्वप्रथम अपने शिष्यों को यह बताना प्रारम्भ किया कि द्रव्य और पर्याय का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। पर्याय के बिना द्रव्य नहीं होता है और द्रव्य के बिना पर्याय नहीं होती है। दोनों अनन्यभूत होती है तथा उनके शिष्यों द्वारा जब यह प्रश्न उत्पन्न किया गया कि यदि पर्याय द्रव्य से पृथक नहीं होगी तो उसके ध्रुव स्वभाव का अवलम्बन कैसे लिया जावेगा। तब आचार्य श्री ने पंचास्तिकाय की गाथा १२ दिखाते हुए कहा कि

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूविंति ।।१२।। पंचास्तिकाय।।

यदि द्रव्य से पर्याय सर्वथा शून्य हो जाए तो द्रव्य सर्वथा नित्य और कूटस्थ हो जाएगा तथा सांख्य मत का प्रसंग आ जायेगा। युक्तयानुशासन ग्रन्थ में आचार्य समन्भद्र देव जी कहते हैं कि द्रव्य की सर्वथा कोई व्यवस्था नहीं बनती है और नहीं पर्याय की सर्वथा कोई व्यवस्था बनती है और न सर्वथा द्रव्य की और पर्याय की पृथक व्यवस्था बनती है।

न द्रव्यपर्यायपृथग्व्यवस्था द्वैयात्म्यमेकार्यणया विरूद्धम्।
धर्मश्च धर्मी च मिथस्त्रि धेमौ न सर्वथा तेऽमिमतौ विरूद्धौ ।। ४७।।

आचार्य समन्तभद्र देव के इस काव्य से यह ध्वनित होता है कि द्रव्य और पर्याय की सर्वथा पृथक् व्यवस्था मानने पर वस्तु व्यवस्था भंग हो जायेगी।

आचार्य जयसेन जी ने पंचास्तिकाय की १२ गाथा की टीका में स्पष्ट कहा है कि गोरस से द्रव्य, दूध, दही, घृत आदि की पर्याय रहित नहीं होता है ठीक उसी प्रकार द्रव्य भी पर्याय से रहित नहीं हो सकता है तथा गोरस रहित दूध, दही, घृत की पर्यायें नहीं होती है। उसी प्रकार द्रव्य से रहित पर्यायें नहीं होती है। इसी आशय का कथन पूज्य आचार्य अमृतचन्द्र जी ने भी अपनी तत्त्वप्रदीपिका टीका में किया है -

इससे यह स्पष्ट होता है कि भाव श्रमण पदार्थ को द्रव्यपर्यायत्मक ही मानते हैं।

कषाय पाहुड ग्रन्थ में धर्म और धर्मी रूप भेद होते हुए भी वस्तु स्वरूप से पर्याय और पर्यायी में भेद नहीं होता है अर्थात् द्रव्य और पर्याय में सर्वथा भेद नहीं होता है। धवला ३/१/२१९ में कहा है त्रिकाली पर्यायों का पिण्ड होने से कथञ्चित् एक और अनेक है। लक्षण की अपेक्षा से द्रव्य और पर्याय में भेद है किन्तु वह पर्याय द्रव्य से पृथक नही होती है , अपितु जब भी द्रव्य से पर्याय का सम्बन्ध रहता है उस समय वह पर्याय उस द्रव्य से तन्मय रहती है।

परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मय त्ति पण्णत्तं।

तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेदव्वो ॥ ८॥

प्र.सा.प्र. अध्याय॥

जिस पर्याय के साथ द्रव्य परिणमन करता है, उस समय वह पर्याय उस द्रव्य से तन्मय होती है,जैसे-लोहे का गोला जब अग्नि में डाला जाता है तब उस रूप होकर परिणमता है अर्थात् वह उष्णपने से तन्मय हो जाता है, इसी प्रकार जब द्रव्य जिस पर्याय से परिणमन करता है तब वह पर्याय उस द्रव्य से तन्मय होती है। इस गाथा के उद्धारण से यह सिद्ध होता है कि द्रव्य जिस समय पर्याय युक्त होता है उस समय वह पर्याय और द्रव्य का तादाम्य सम्बन्ध होता है। इस तात्कालिक तादात्म्य संबन्ध को मान्य करने के उपरान्त द्रव्य की पर्याय से सर्वथा पृथक मानने की अवधारणा स्वतः मूल शून्य हो जाती है।

❍❍❍

आचार्य विद्यासागर जी के चिन्तन में शुद्धोपयोग का स्वामी कौन

ब्र. विजय, लखनादौन

जैन अध्यात्म दर्शन में उपयोग त्रय की धारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है आचार्य कुन्द कुन्द देव ने अपने ग्रन्थ प्रवचनसार में एवं आचार्य योगीन्द्र देव ने परमात्म प्रकाश ग्रन्थ में उपयोग त्रय की धारणा बखूबी से विवेचित की है। उन्होंने अशुभोपयोग, शुभोपयोग और शुद्धोपयोग की विवचेना कर गुणस्थान में समायोजित करने का प्रयास किया है। अशुभोपयोग का लक्षण बताते हुए आचार्य कुन्द कुन्द देव ने प्रवचनसार में कहा है कि - विषयकषायओगाढ़ो दुस्सुदि दुच्चित दुट्ठ गोदि जुदो।

उग्गो उम्मग्गपरो उवओगो जस्स सो असुहो ॥६६॥

विषय कषाय की अवगाढ़ता, मिथ्या शास्त्रों का सुनना, आर्त्तरौद्र ध्यान, पराई निन्दा सुनना, कुसंगति में रहना, उन्मार्ग पर चलना ये सभी अशुभयोग के लक्षण हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द देव ने प्रवचन सार में शुभोपयोग का लक्षण बताते हुए कहा है -जो जाणादि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तहेव अणगारे।

जीवेसु साणुकंपो उवओगो सो सुहो तस्स ॥६५॥ ज्ञेयाधिकार

जो अरहन्तों को जानता है सिद्धों और अनगारों में श्रद्धा करता है जीवों के प्रति अनुकम्पा युक्त है उसको शुभोपयोग कहा है। इसी बात को ज्ञानाधिकार में आचार्य कुन्द कुन्द देव ने कहा है -देवजदि गुरू पूजासु चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु।

उववासादि रत्तो सुहोव ओगप्पगो अप्पा ॥६९ ॥ ज्ञानाधिकार

देव,गुरु और यति की पूजा में तथा दान और सुशील, उपवासदि में लीन आत्मा शुभोपयोगी होता है तथा शुद्धोपयोग का लक्षण भी प्रथमतः विचारणीय हैं। आचार्य कुन्द कुन्द देव ने प्रवचन सार की १४वीं गाथा में

शुद्धोपयोग का लक्षण सुनिश्चित किया है कि-सुविदिद पयत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो ।

समणो समसुहदुक्खो भणिदो सुद्धोवओगोति ।।१४।। ज्ञानाधिकार

जिन्होंने पदार्थों और सूत्रों को ठीक-ठीक जान लिया है और जो संयम और तप से युक्त है, जो वीतराग हैं, और जिन्हें सुख और दुख मे समता भाव हैं, ऐसे जीव को शुद्धोपयोगी कहा जाता है । उपयुक्त अशुभोपयोग, शुभोपयोग और शुद्धापयोग का लक्षण समझने के बाद यह घटित करना विवादास्पद सा बना हुआ है कि इन उपयोगों का गुणस्थान अनुसार स्वामित्व समन्वय कैसा उचित है ।

स्वाध्याय के क्रम टूटने के बाद या अक्रम स्वाध्याय के बाद शुद्धापयोग का गुणस्थानों में समायोजन कुछ भटक सा गया है । कुछ एकान्त पक्ष वालों ने आगम को एक ताक में रखकर शुद्धोपयोग को चतुर्थ गुणस्थान (अविरत सम्यग्दृष्टि) में आंशिक रूप से मानने की दृष्टता की है परन्तु आज तक वे कोई ऐसा आगम प्रमाण उपलब्ध नही करा पाये जिसमें यह लिखा हो कि शुद्धोपयोग चतुर्थ गुणस्थान में होता है, अपितु कुछ पण्डितों के आधे अधूरे संकलित सन्दर्भ देकर वे अपनी बात पुष्ट करने का प्रयास करते हैं । इस प्रसंग में पूज्य आचार्य विद्यासागर जी का अभिमत स्पष्ट है कि चतुर्थ गुणस्थान में न तो मुख्य रूप से शुद्धोपयोग होगा ही आंशिक, उपचारात्मक गौण रूप से शुद्धोपयोग होगा, क्योंकि जिसका अंश होता है उसका अंशी अवश्य होता है अंशी के बिना अंश नही हो सकता है । तथा शुद्धोपयोग चतुर्थ गुणस्थान में मानने पर गुणस्थानों की व्यवस्था मात्र चौथे तक ही सीमित रह जायेगी । १४ गुणस्थान की व्यवस्था नही बन सकती है और गृहस्थावस्था में ही केवल ज्ञान की उत्पत्ति को कोई रोक नहीं सकता है किन्तु केवलज्ञान श्वेताम्बर परम्परा में गृहस्थ के होने के उदाहरण कई रूप में मिल जाते है, ये मात्र दृष्टान्त है किन्तु उनके मत में भी चतुर्दश गुणस्थान की व्यवस्था होने से सयोग केवली और अयोग

केवली गुणस्थान में ही केवलज्ञान की उत्पत्ति सिद्धान्त ग्रन्थों में स्वीकृत है ।

सर्वघाती कषायों के उदय में रहते हुये केवल ज्ञान की उत्पत्ति या शुद्धोपयोग कैसे सम्भव है या तो फिर अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण कषाय को देशघाती स्वीकार करना पड़ेगा या फिर शुद्धोपयोग का अभाव स्वीकार करना पड़ेगा । आचार्य ब्रह्मदेव सूरि ने वृहद् द्रव्य संग्रह की गाथा ३४ की टीका में एक सन्दर्भ उपलब्ध होता है -

''मिथ्यादृष्टि सासादन मिश्र गुणस्थानेषूपर्युपरिमन्दत्वेनाशुपयोगो वर्तते, ततोऽप्यसंयत सम्यग्दृष्टि श्रावक प्रमत्त संयतेषु पारम्पर्येण शुद्धोपयोग साधक उपर्युपरि तारतम्येन शुभापयोगो वर्त्तते, तदनन्तरमप्रमत्तादि क्षीण कषाय पर्यन्तं जघन्यमध्यमोत्कृष्ट भेदेन विवक्षितैक देश शुद्धनय रूप शुद्धोपयोगी वर्त्तते ।।'' अशुभोपयोग मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र गुणस्थान में घटते क्रमशः होता है और शुभोपयोग असंयत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तविरत में बढ़ते क्रम से होता

❍❍❍

आचार्य विद्यासागर जी के चिन्तन में दिगम्बर जैन युवक संघ

ब्र. सुरेश मलैया, पंचबालयति मंदिर,इन्दौर

पाँच युवक एक विचार धारा के यदि मिल जायें तो वे सारी दुनिया में परिवर्तन की लहर ला सकते हैं । आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने कभी ये सूत्र वाक्य युवाओं के समक्ष प्रस्तुत किया था । युवा शक्ति किसी भी क्रांति के लिए पर्याप्त होती है । जब युवाओं का संगठन खड़ा हो जाता है तो सुर-असुर सब उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो जाते है । और वे युवाओं से पूछने लगते हैं कि हमारे योग्य कोी सेवा हो तो अवश्य बतायें मन शक्ति, धन

शक्ति, शारीरिक शक्ति, इन सब शक्तियों में श्रेष्ठ होती है। बंधी हुी मुठ्ठी लाख की होती है और खुली हुी मुठ्ठी खाक की होती हैं।

पूज्य आचार्य श्री संगठन के महत्व को विवेचित करने के लिए आचार्य श्री एक कहानी को माध्यम बनाते हैं । एक किसान था उसके चार बेटे थे। चारों बेटे प्रायः आपस में मनमुटाव रखते थे। जब किसान की उम्र अधिक हो गयी तब किसान ने अपने पुत्रों के सामने एक मोटी रस्सी रख दी और कहा, बेटों तुम एक एक करके क्रम से इस रस्सी को तोड़ों किसाने के चारों पुत्र अपनी पूरी ताकत लगा देते हैं पर वे रस्सी को तोड़ नहीं पाते हैं फिर किसान कहता है तुम चारों मिलकर इस रस्सी को तोड़ो फिर वे चारों पुत्र मिलकर अपनी पूरी ताकत लगाते है किन्तु वे रस्सी को तोड़ने में सफल नहीं हो पाते हैं। किसान अब एक नया सूत्र देता है। अब एक-एक रेसे को तोड़ना प्रारम्भ कर दो वे चारों पुत्र आसानी से रस्सी को तोड़ देते तब किसान कहता है।

प्रिय पुत्रों फूट होने से किसी भी शक्ति को तोड़ा जा सकता है। किन्तु जो संगठित रहते हैं उन्हें तोड़ा नहीं जा सकता है।

दिगम्बर जैन युवक संघ का गठन तीर्थरक्षा के मुख्य उद्देश्य से मुक्तागिरी पावन तीर्थ क्षेत्र पर पाँच नवम्बर सन् १९९० में किया गया था। इस संगठन का उद्देश्य था संघवाद, जातिवाद, पंथवाद व क्षेत्रवाद से ऊपर उठकर दिगम्बर जैन समाज को एक सूत्र में पिरोना **''दिगम्बरा सहोदरा सर्वे''** अर्थात जो भी दिगम्बर जैन है वे आपस में बंधुत्व से है आत्मा से नहीं इस चिंतन को प्रमुखता देते हुए आत्मवत् सर्वभूतेषु का सूत्र आचार्य श्री ने संगठन को दिया। दीक्षा के पूर्व ऐलक श्री सिद्धांत सागर जी ने संगठन का बखूबी संचालन किया उनकी दीक्षा के उपरांत संगठन ने युवाओं के सभी संगठन के अस्तित्व को ज्यों का त्यों स्वीकार करते हुए उनको अपने संपर्क में लिया तथा ऐलक श्री का मार्ग दर्शन देते हुए संगठन की गतिविधियां आगे बढ़ाी अध्यात्म की दृष्टि रखते हुए शारीरिक मानसिक विकास करना तथा भावनात्मक रूप से समस्त दिगम्बरों को जोड़ना तथा एक शक्ति का निर्माण करना। जिस शक्ति के आधार

पर दिगम्बर जैन संस्कृति पर होने वाले आघातों को रोकना एवं जैन साहित्य, तीर्थ, आचार्य परम्परा जैन शासक सम्राट साम्राज्यों का तथा ऐतिहासिक दर्शनीय स्मारकों का परिचय युवाओं को सतत् कराते रहना दिगम्बर जैन युवक संघ की प्रमुख सोच रही है। पूज्य आचार्य श्री ने जो भी मार्गदर्शन दिये वह अपनी दूर दृष्टि के आधार पर युवाओं के कल्याण के लिए दिया। युवाओं को स्वरोजगार की ओर ले जाना तथा उन्हें अहिंसक वृत्तियों से जोड़ना पूज्य श्री का लगभग २८ वर्ष पूर्व का चिंतन रहा है। जिसे अब उन्होंने हथकरघा और पूरी मैत्री स्वरोजगार के रूप में राष्ट्र और समाज के सामने क्रियान्वित किया।

आज का युवा जॉब की और बढ़ रहा है। जिससे सामाजिक संरचना एवं श्रमण संस्कृति की मूल भावना प्रभावित हो रही है। शहरों की ओर जैन युवाओं की गति हो जाने से की गाँव और कस्बों के मंदिर बूढ़े होते चले जा रहे हैं अतः आचार्य श्री ने गांवो के मंदिरो को संपर्क लाने एवं उनके आबाद बने रहने के लिए हथकरघा जैसे अभियान को गतिशील बना दिया देखेते ही देखते लगभग सौ हथकरघा केन्द्र खुल गये। हथकरघा परिवार समाज संगठन का एवं अहिंसा की क्रांति का आधार है। युवाओं में अपनी संस्कृति और समाज की चेतना सदैव प्रभावित रहे इस हेतु समय-समय पर पूज्य आचार्य श्री ने अनेक योजनायें प्रस्तुत की उनमें अखिल भारतीय दिगम्बर जैन प्रशासकीय प्रशिक्षण संस्थान एवं अनेक युवा संवेदनों को संबोधित किया साथ में भटकते युवकों को व्यसन मुक्त रहने की प्रेरणा दी। पूज्य आचार्य श्री युवा शक्ति को संगठित बनाकर दिगम्बर जैन संस्कृति के संरक्षण का स्वप्न देखते हैं एवं उन्हें शाकाहार करने के उपाय भी युवाओं को बताते रहते हैं ऐसे स्वप्न दृष्टा, युग दृष्टा, महान साहित्य का अध्यात्म सरोवर के राजहंस, चर्या श्रेष्ठ, चार सौ सोलह पिच्छी धारी शिष्यों के गुरु आचार्य श्री विद्यासागर जी का उपकार भारत देश कभी नहीं भुला सकता है।

❍❍❍

आचार्यश्री जी के चिंतन में मोह की भूमिका

ब्र.संतोष भैया, सागर

श्री विद्यादिसागर सुधी गुरु हैं, हितैषी,
शुद्धात्म में निरत नित्य हितोपदेशी ।
वे पाप ग्रीष्म ऋतु में जल हैं सयाने,
पूजूँ उन्हें सतत् केवल ज्ञान पाने ॥

आर्यखंड का भारत अनादिकाल से अर्हत् प्रभो को, तीर्थंकर को, शलाका पुरुषों को, भव्य आत्माओं को जन्म देता आ रहा है। ये आत्मायें परम शुक्ल ध्यान को आत्मसात कर सिद्धत्व को प्राप्त कर रही हैं, कर चुकी है और करेंगी। इन्हीं भव्यात्माओं में परम आदरणीय नाम चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर जी, ज्ञानवृद्ध एवं तपोवृद्ध आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज और वर्तमान के संत शिरोमणि प्रातः स्मरणीय आचार्य विद्यासागर जी महामुनिराज का आता है जो नियम से अल्प भवों में अनंतानंत सिद्धों की श्रेणी में शोभायमान होंगे ।

आचार्यश्री जी का चिंतन सोने जैसा खरा है, जिसमें किसी भी तरह से खंडन, वाद-विवाद की जगह नहीं हैं । हाँ, वर्तमान काल के कारण मनभेद हो सकते हैं पर मतभेद नहीं ! आगम को लेकर स्याद्वाद का कथन सर्वोपरि होता है ।

ममतामयी माँ श्रीमंती जी और पितृ पुरुष श्री मल्लप्पा जी के संसर्ग से इस ब्राह्मांड ने शरद पूर्णिमा की अर्द्धरात्रि में दैदीप्यमान विद्याधर को आज से ७२ वर्ष पूर्व जन्म दिया । माँ का स्नेह वात्सल्य, मोह निरंतर विद्याधर को वृद्धिंगत करता रहा । संस्कारों का प्रबल योग बढ़ता गया और सानिध्य मिला आचार्य देशभूषण जी महाराज का व्रत ब्रह्मचर्य लेने हेतु । पूर्व में मिले आचार्य शांतिसागर जी के सानिध्य ने ब्रह्मचर्य को रोम-रोम में रमा दिया । बस यात्रा शुरु हो गई । मोह को समझ कर समाप्त करने की । इस यात्रा के

मुख्य सूत्रधार बनकर आये आचार्य ज्ञानसागर जी महामुनि ।

आचार्य ज्ञानसागरजी ने ७० कोड़ा कोड़ी सागर की आयु वाले मोहनीय कर्म की सत्ता के बार में विद्याधर को समझाने में किसी प्रकार से कोी कसर नहीं छोड़ी । अपने आवश्यकों के साथ दिन-रात एक कर दिये ब्रह्मचारी विद्याधर ने । गूढ़ से गूढ़ ग्रन्थ को आत्मसात करते गये, वैशाली के वर्द्धमान की सत् राह को निज में पाने के लिये ।

अपनों से, अपने शरीर से ममत्व को हटाने के लिये स्वयं को होम दिया दिगम्बरत्व के महायज्ञ में आज से ५० वर्ष पूर्व आचार्य श्री ज्ञानसागरजी ने मुनि दीक्षा से पूर्व यह पूछा कि ''विद्याधर प्रत्येक जीव का संसार रूपी दीपक जल रहा है। मन रूपी दीपक पांच इन्द्रिय रूपी बाती से विषय रूपी तेल के संग जल रहा है मोह रूपी दिया सलाी के द्वारा अखंड द्वीप अनादिकाल से, कैसे बुझेगा यह दीपक ? तब विद्याधर ने कहा - गुरुदेव ! जैसे जहर-जहर को मारता है वैसे शरीर रूपी मोह को आत्मा से मोह बढ़ाकर काटा जाये तो आत्म स्वरूप को सहजता से प्राप्त किया जा सकता है ।

२२ वर्ष से कम उम्र में अंगीकार कर ली दिगम्बरत्व की राह और चल पड़े मुक्ति पथ की ओर । २२ परिषहों से समझौता नहीं किया ताकि जान सकें शरीर से ममत्व को । परिषहों के साथ ऐसे जियें, हँसे, गुनगुनायें कि सबको अपना मित्र बना डाला और अपनी आत्मा की आवाज पर पल-प्रतिपल विजय प्राप्त करते गये और यही राह अपने शिष्यों को निरंतर देते आ रहे हैं कि मोक्षमार्ग में समझौता कभी नहीं ।

१२ तपों से नित नये आयामों के माध्यम से अपनी आत्मा को इतना तपाया कि मोह को हारना पड़ा । आपने सारे शिष्य को पर से सजग करते हुये कहा कि तप के माध्यम से चलना नहीं चढ़ना होता है और तप में प्रविष्ट होने पर सब कुछ शांत हो जाता है । आपकी शिष्य मंडली आपके तप के माध्यम से मोह पर विजय देखकर निर्मोही बनने का प्रयास करते हैं ।

६ रसों का स्वाद लिये स्वर्ण बरस बीत गये। जो करते हैं वहीं कहते हैं, जो अनुभव में आया, उसे जनमानस को देने से कभी चूकते नहीं, यही तो महानता है। बिना रस के सरलता के साथ श्रावक कर-पात्र में जो देता है उसे अमृत तुल्य ग्रहण कर परितृप्त हो जाते हैं ताकि सामायिक के माध्यम से मोह रूपी कर्म शत्रुओं का विघटन कर सकें, जला सकें, होली का उत्सव मना सके। अपने शिष्यों को क्या छोड़ने को कहें,. क्या न कहें ? उनका व्यक्तित्व इतना, सरल, व्यापक एवं विराट है कि शिष्य उनके दर्शन और आशीष पाकर सहर्ष सब कुछ त्यागने तैयार हो जाते हैं ।

चलचित्र, टी.वी., मोबील, लेपटाप से मोह बढ़ता है, जो कि हर तरफ से दुखदायी है। इनसे वातावरण दूषित होने के साथ कुसंस्कार भी जन्म लेते हैं । धर्म का उत्थान होगा या पतन। आचार्य श्री जी इन मोह के साधनों को तिलांजली देने हेतु प्रेरित करते हैं ताकि स्वच्छ और प्रशस्त वातावरण निर्मित हो सके मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर होने के लिये।

आचार्य श्री जी इष्टोपदेश की १३ से १७ वीं गाथा के भावार्थ में कहते हैं कि मोह का एक विशेष हेतु धन भी है। जिसके कमाने में/रक्षा करने में/ पाने में दुख ही दुख है तो ऐसे धन को धिक्कार है जो धन वृद्धि के ख्याल में जीवन के विकास और विनाश का तनिक भी ख्याल नहीं रखता, ऐसे धन को धिक्कार है। जो व्रतीजन, पराश्रितहोकर धन के अर्जन के लिये बहुमूल्य समय को माटी के मोल गंवा रहे हैं, ऐसे धन को धिक्कार है। काल का क्या भरोसा ? अभी अपना है तो अगला पल कौन जाने। समय रहते सत् पुरुषार्थ किया जायेगा तो नियम से मोहरूपी बंधन अवश्य ढीले पड़ जायेंगे। इसलिए मोक्षार्थी को निर्ममत्व की भावना अवश्य करनी चाहिये। मोह-मार्ग से हटकर मोक्षमार्ग की ओर बढ़ाने वाले रत्नत्रय रूपी धन को कमाने में क्षण-प्रतिक्षण पुरुषार्थ जाग्रत करो-बढ़ाओ ताकि पुनः जन्म न लेना पड़े।

संस्कारों को आचार्य श्री जी मोह के साथ तदाकार करते हुये दिखते है। दिवाली में रंग रोशन सफाी के लिये एक बार फिर दूसरी बार ताकि चमक

आ सके, कालिमा मिट सके। अपने सुस्कारों से हमें अनादिकालीन मोह रूपी कर्म कालिमा को मिटाना है ताकि निजत्व का बोध हमें निश्रेयस को प्राप्त करा सके। वर्तमान में संस्कारों का अभाव निंरतर देखा जा रहा है। किसे दोष दें ? वर्तमान परिवेश को माता-पिता को अथवा गुरुओं को ? आचार्य श्री जी ने ब्रह्मचारी बहनों के माध्यम से प्रतिभास्थली का जो शिक्षा प्रारूप समाज को दिया है, उससे सैकड़ों वर्षों तक संस्कार के गीत बेटियों के हृदयों में गूंजायमान होते रहेंगे।

चैतन्य चन्द्रोदय में आचार्य श्री जी मोह के बारे में विशद विवेचन करते हुये कहते हैं कि मोह क्या है ?

- जब स्नेह अथवा राग किसी एक में आसक्त हो जाये।
- जो भाव जिसमें हम किसी के बिना रह ना सके।
- जिस किसी की याद में सारी क्रियायें बेमानी हो जाये।
- जो आत्म को मोहित करा दे या जो आत्मा को मोहित करे या जिससे आत्मा मोहित हो।

दृग्वृत्तिभेदाद् द्विविधोऽ स्तु मोहो यः सर्वघातित्वविषालु शूलः।
सन्मार्गानाशीष तमोऽप्रशस्तमपाद दृष्टिकुरुतेऽपि भव्यान् ॥३॥

मोहनीय कर्म दर्शन और चारित्र के भेद से दो प्रकार का है।

दर्शन मोहनीय - सन्मार्ग का विनाशक और अंधकार की तरह अप्रशस्त है, इस मिथ्यात्व के वशीभूत जीव ने अनादिकाल से निरंतर अप्रशस्त अंधकार करने वाली कषाय कलंक से युक्त निगोद आदि योनियों में स्व-पर भेद को न जानते हुये ज्योति स्वरूप को नहीं जाना। उसी जीव ने अत्यंत दुर्लभ त्रसपर्याय को प्राप्त करके भी पंचेन्द्रिय पने को मूलरूप में धारण नहीं किया यानि सन्मार्ग को प्राप्त नहीं किया। डाली से गिरे फल का पुनः उसी वृक्ष के ऊपर फल से परिणमन जैसे अत्यंत दुर्लभ है, उसी तरह परम भट्टारक अर्हन्त देव, शास्त्र और गुरु के सानिध्य को प्राप्त करके भी मारीचि की तरह

उसकी अवमानना की इसलिए यह दर्शनमोह अर्थात् मिथ्यात्व सन्मार्ग का विनाशक है।

चारित्र मोहनीय व्रतों को धारण नहीं करने देता, वह मुक्ति वधु को विवाह के योग्य भव्यों को लंगड़ा कर देता है। मोह का सर्वघातिपना विषाक्त शूल के समान है। आगम में अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान कषाय का सर्वघातिपना प्रसिद्ध है। अप्रशस्त अन्धकार को दूर करके सन्मार्ग को देखकर भी उसके ऊपर पैर में लगे काँटे की तरह लंगड़ा होकर यही जीव जब तक चलता है जब तक कि उस सम्यग्दृष्टि को सर्वघाति कषाय प्रकृतियों का उदय रहता है। इससे सिद्ध होता है कि अविरत होने से और मिथ्यात्व अंधकार का अभाव होने से सम्यग्दृष्टि मात्र सन्मार्ग को देखता ही रहता है। संयतासंयती ही कभी संयम के साथ चलता है तो कभी लंगड़े की तरह स्खलित हो जाता है, क्योंकि वह समस्त विरति से रहित होता है। इसलिए गृहस्थ में भी सर्वथा आत्मा का हित नहीं है। यह गृहस्थाश्रम सामायिक आदि में पूर्णतया धर्मरूप, विषय भोगादि कार्य में पूर्णतया पापरूप तथा जिनगृहादि के निर्माणरूप कार्य में उभयरूप रहता है। इसलिए यह गृहस्थाश्रम अन्धे के रस्सी भांजने के समान अथवा हाथी के स्नान के समान अथवा शराबी या पागल की प्रवृत्ति के समान सर्वथा हितकारक नहीं हैं।

शरीरिणोऽसों चिरकालतोऽपि व्यग्रीकृतो येन निजोपयोगः।
निरङ्कुशश्चास्थिर चित्तवाही भूत्वा प्रमत्तो गहने करीब ।।३४।।

इस गाथा में सामान्यतया मोह को मोक्ष का शत्रु कहा है। मोह ने अपने ही आत्मा के चैतन्य के उपयोग अर्थात् परिणाम को अनादिकाल से व्याग्र किया है, भ्रान्त किया है। जिस वन में सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता हो, ऐसे भयंकर वन में कषाय और मद के अवेश सहित होकर आत्मा हाथी की तरह निरंकुश अर्थात् असंयमी और अस्थिर चित्त वाला रहा है।

योगाऽपि मोक्षस्य भवेद्विरोधी नादौ तु मार्गस्य तथाऽपि चान्ते।
स्नानं तु कृत्वाऽपि जलेन पश्चाज्जलं तनुस्थं ह्यपसारणीयम् ।।३५।।

विराट स्वरूप विद्यासागर

इस गाथा में योग को भी मोक्ष का विरोधी कहा है। रत्नत्रय रूप मोक्ष का मार्ग है। इस मार्ग के प्रारंभ में तो नहीं अपितु अंतिम अवस्था में योग भी मोक्ष का विरोधी हो जाता है। अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति नहीं होने देता। अनादि से योग और विमोह के कारण आत्म स्वभाव भी विभाव को प्राप्त हुआ है। ठीक ही है जल से स्नान करके भी बाद में शरीर पर स्थित जल को निश्चत ही दूर करना उचित है। इसी तरह सघनपटल वाले कर्मजल से युक्त आत्मा भी रत्नत्रय की विशुद्धि रूपी जल से स्नान करके उज्जवल होकर भी योग स्थानीय लगे हुये जल को सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाती ध्यान रूप वस्त्र से पोंछ देता है।

विघ्नन्ति विघ्नानि समाप्तवनन्त आप्तान् समाप्तीकृत्खान् भजन्तः।
द्रव्येण पर्यायगुणत्वतोऽपि भव्या भवन्तीति विवान्त मोहाः ।।३२।।

इस गाथा में मोह के क्षय का उपाय बताते हैं। जिन्होंने अपने इन्द्रिय व्यापारों को समाप्त किया है, ऐसे अठारह दोषों से रहित आप्त को द्रव्य, गुण और पर्याय से ध्याने पर आप्त श्रद्धालु भव्य जीव मोह से रहित हो जाते हैं। भगवान अर्हन्त का द्रव्य असंख्यात्मक प्रदेश वाला है। उनके प्रत्येक प्रदेश में चिच्चित्पना है। निरंतर ज्ञान और दर्शनमय संवेदन से सहित है। उनका द्रव्य परिणमन करता हुआ शाश्वत है। काल की कलाओं से रहित है। स्पर्श, रस, गंध, रंग और शब्द से शून्य है। चैतन्य मात्र से प्रकाशित है। चैतन्य की तरंगों से भरा जैसा उनका द्रव्य है, उसी प्रकार मेरा आत्म द्रव्य है। उन अर्हन्त प्रभों के द्रव्य के प्रत्येक प्रदेश में अनंत गुणों का अवस्थान है, उनमें ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य मुख्य हैं। उसी प्रकार मेरी आत्मा में भी ये गुण हैं। अनंत अगुरुलघु गुण के कारण प्रतिसमय अर्थ पर्याय उत्पन्न होती रहती है। उसी के कारण शाश्वत व्यंजन शुद्ध पर्याय होती है, जो समरसी भाव से भरी होती है, ऐसी पर्याय मुझे भी प्राप्त हो। जो अरहंत प्रभु को द्रव्य, गुण, पर्याय से जानता है, वह अपनी आत्मा को जानता है। उसी के मोह का विनाश हो जाता है।

मोहद्वयेन त्रिविधा विभागो यश्चेतसोऽत्रासुमतां सुमान्यः । आक्षीणमोहाद्विधिरेष भाति प्रभात ऊर्ध्वं किल चात्ययी स्यात् ।।३९।।

तीन लोक के समस्त प्राणियों के उपयोग की परिणति अशुभोपयोग, शुभोपयोग और शुद्धोपयोग के भेद से तीन प्रकार की होती है। विभाजन की यह पद्धति क्षीणमोह नामक बारहवें गुणस्थान तक ही है उक्त परिणति की छद्मस्थ जनों की है। दर्शन मोह और चारित्र मोह के कारण यह सर्वमान्य विभाजन है। मिथ्यात्व और चारित्र मोह के कारण यह सर्वमान्य विभाजन है। मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के उदय से तीसरे गुणस्थान तक घटता हुआ अशुभोपयोग है। पुनः अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और तीव्र संज्वलन कषाय के उदय से चतुर्थ गुणस्थान से प्रारंभ होकर बढ़ता हुआ शुभोपयोग है। उसके आगे मध्यम और मंद संज्वलन कषाय के सद्भाव अथवा अभाव में बारहवें गुणस्थान तक शुद्धोपयोग है। इसके बाद तेरहवें गुणस्थान में सिर्फ उपयोग मात्र है। जिस प्रकार सूर्योदय से पहले सूर्य की प्रभा का फैलना प्रभात कहा जाता है, उसी प्रकार शुद्धोपयोग में शुद्ध परिणाम से परिणमन होने से शुद्धात्मा का अनुभव एकदेश शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा कहा जाता है। उसके आगे पूर्णप्रभा से युक्त सूर्योदय की तरह सदा के लिये प्रकट ही चैतन्यज्योति स्वरूप से आत्मा अवभासित होता है।

वक्तुं न चार्हं जिनपे यथा स्यात् प्रक्षीणमोहेऽपि सुखं ह्यनन्तम् । अनन्तवीर्येण विनाप्यनन्तं ज्ञानं सुखं किं स मये समुक्तम् ।।९४।।

आचार्य श्री जी इस गाथा में कहते हैं कि मोहनीय के क्षय से अनन्तसुख होता है, इसलिए बारहवें गुणस्थान में अनंत सुख होता है ऐसा किसी का कहना है। ये कथन आगमोक्त नहीं हैं। अनंतवीर्य के साथ अनंतज्ञान की उत्पत्ति सिद्धांत में कही है। क्योंकि ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का क्षय एक साथ होता है। अनंत शक्ति के बिना चूंकि अनंत को जानने की और देखने की शक्ति भी असंभव है, इसलिए अनंतसुख के अनुभवन की

शक्ति भी असंभव है। बारहवें गुणस्थान में मोहनीय का क्षय हो जाने पर भी ज्ञानावरण कर्म के क्षय के बिना अनंत सुख की उपलब्धि नहीं होती है, क्योंकि अनंत चतुष्टय की उत्पत्ति एक साथ होती है।

आचार्य श्री जी मोह-ममता के बारे में कहते हैं - समता तारती है और ममता मारती है यानि एक समाधि में कारण है और दूसरी संसार के लिए कारण। यानि एक साधना-आराधना में सहायक और दूसरी कामना-वासना में सहायक। यानि एक में वैराग्य तो दूसरी में राग। एक निर्जरा में कारण तो दूसरी बंध में कारण। शिष्यों से कहते हैं कि मोह ने अनादि काल से हम सभी को रूलाया है। आज सत् गुरु, सत्संग और सत् वाणी का जो सुनहरा मौका मिला है तो हम क्यों पीछे रहें ? आज और अभी हम अध्यात्म में डूबकर आत्मा को मोह के मायाजाल से हमेशा के लिये निकालकर केवलज्ञान को प्राप्त करते हुये सिद्धत्व को प्राप्त करें।

❍❍❍

आचार्यश्री के चिन्तन में मूलाचार

डॉ.आराधना जैन स्वतंत्र गंजबासौदा

बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य १०८ शान्तिसागर जी, आचार्य वीरसागर, आचार्य शिवसागर, आचार्य ज्ञानसागर जी की परम्परा में आचार्य विद्यासागर जी हैं। वे जैनागम के चरणानुयोग के श्रमणाचार विषयक ग्रन्थों के अनुसार निर्दोष चर्या का पालन स्वयं करतेहैं और अपने शिष्यों को भी वही चर्या कराते हैं। श्रमणाचार विषयक अनेक ग्रन्थ हैं। इनमें एक ग्रन्थ हैं। मूलाचार। प्राकृत भाषा को यह ग्रन्थ आचार्य बट्टेकर द्वारा प्रणीत है। इस ग्रन्थ पर आचार्य वसुनन्दी आचार वृत्ति तथा आचार्य सकलकीर्ति द्वारा रचित मूलाचार प्रदीप कृति है। दिगम्बर परम्परा के मूलाचार ग्रन्थ में श्रमण-निर्ग्रन्थों की आचार संहिता का अति सुव्यवस्थित, विस्तृत एवं सांगोपांग विवेचन मिलता है।

मूलाचार ग्रन्थ में बारह अधिकार और कुल १२५२ गाथाएं हैं। बारह अधिकारों के नाम क्रम से इस प्रकार हैं - मूलगुण, वृहन्प्रत्याख्यान-संस्तर स्तव, संक्षेप प्रत्याख्यान, समाचार, पंचाचार, पिण्ड शुद्धि, षडावश्यक, द्वादशानुप्रेक्षा, अनगार भावना, समयसार, शीलगुण और पर्याप्ति।

प्रथम अधिकार में वर्णित मुलगुण श्रमण के मुख्य गुण हैं। इनकी संख्या २८ है। मूलगुण में यहाँ मूल शब्द प्रधान/मुख्य अर्थ आचरण को मूलगुण कहा गया है। इन्हें मूलाचार भी कहते हैं। इनके नाम इस प्रकार है -

पांच महाव्रत - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह महाव्रत

पांच समिति - ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण और प्रतिष्ठापन समिति।

पांच इन्द्रिय निरोध - स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु व कर्ण इन्द्रिय निरोध।

षट् आवश्यक - सामायिक, स्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान एवं कार्योत्सर्ग।

शेष सात गुण - केशलोंच, आचेलक्य (निर्ग्रन्थ) अस्मान, क्षिति शयन, अदंत धावन, स्थितिभोजन एवं एक भक्त।

श्रमण के श्रमणाचार का प्रारम्भ उक्त मूलगुणओं से होता है। ये श्रमण धर्म की आधार शिला है। पंचाध्यायी में कहा है - सम्पूर्ण मुनि धर्म इन समस्त मूलगुणों से सिद्ध होता है। वृक्ष मूल के समान मुनि के ये २८ मूलगुण हैं। कभी भी इनमें न तो न्यूनता होती है और न अधिकता। इनमें लेशमात्र की न्यूनता साधक को श्रमण धर्मसे च्युत कर देती हैं। अतः आचार्य श्री इनका अत्यन्त सावधानीपूर्वक पालन करते हैं और लगने वाले दोषों से स्वयं को बचा लेते हैं और अपनी निर्दोष चर्या से अपने शिष्यों को भी ऐसी ही चर्या पालन करने का संदेश देते हैं।

एक ओर श्रमणों की आचार संहिता का वर्णन करने वाले मूलाचार ग्रन्थ का अध्ययन किया जाता है तथा दूसरी ओर आचार्य श्री विद्यासागर जी

महाराज की निर्दोष चर्या का अवलोकन किया जाता है तो ऐसा प्रतीत होता है मानों आचार्य श्री श्रमणों के आचार के प्रतिपादक मूलाचार ग्रंथ की जीवन्त प्रतिलिपि हो।

आचार्य श्री का चिन्तन है दिगम्बर वेष धारण करने मात्र से कोी श्रमण नहीं कहला सकता। आगम में कहे गये २८ मूलगुण उनके जीवन में उद्घटित होना चाहिए। जिस प्रकार ऑक्सीजन के बिना प्राणियों का जीवन नहीं ठहर सकता उसी प्रकार २८ मूलगुणों के बिना श्रमणत्व नहीं ठहर सकता। आचार्य श्री ऐसे ही श्रमण है जिनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व में ये २८ मूलगुण तिल में तेल की भांति समाए हुए हैं। ये मूलगुण ही श्रमण के मूलाचार है। इनके विषय में आचार्य श्री का चिन्तन प्रस्तुत है।

२८ मूलगुणों का अच्छे से पालन करना श्रमण का पहला कर्त्तव्यहै। आगम में मूलगुणों को जड़ (नींव) कहा गया है। इन्हीं का निर्दोष पालन करने के लिए स्वाध्याय किया जाता है। यही कारण है कि आचार्य श्री अपने शिष्योंको मुनि दीक्षा देते ही मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय कराते हैं।

जो श्रमण मूलगुणों, आवश्यकों में कमी रखता है और बड़े-बड़े ग्रन्थों का स्वाध्याय करता है, यह ठीक नहीं हैं। पहले अपने आवश्यकों एवं मूलगुणों का पालन करो जिससे मूलाचार सही रहे फिर बाद में बड़े-बड़े ग्रन्थों का स्वाध्याय करो।

मूलगुण सदोष हों, उत्तरगुण निर्दोष हों, तो यह भी ठीक नहीं है। पहले मूलगुणों का निर्दोष पालन हो, बाद में उत्तरगुणों की बात करें। उदाहरणार्थ स्टैंड फेन होता है जिसका स्टैण्ड नहीं घूमता है मात्र फेन (पंखा) घूमता है, हवा करता है। उसी प्रकार मूलगुण रूपी स्टैंड स्थिर रहता है और उत्तर गुण रूपी पंखे से (आत्म सन्तुष्टि की) हवा चारों ओर प्राप्त होती रहती है।

तप, उपवास भले ही न हो परन्तु २८ मूलगुणों की पूर्णता होनी ही चाहिए।

जैसे बैंक में मूलधन जब से रखा, तब से ही ब्याज मिलने लगता है उसी प्रकार मूलगुण के होते ही संयम लब्धि (विशुद्धि) स्थान बढ़ते हैं और निर्जरा बढ़ती जाती है। अतः इन्हें ठीक रखना चाहिए।

श्रेष्ठ मुनिराज मन-वचन-काय और कृत-कारित अनुमोदना से हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह पांच पापों का सर्वथा त्याग करते हैं उसे जिनेन्द्र देव ने मुनियों के महाव्रत कहा है।

महाव्रत निवृत्ति रूप हैं, पांच पाप की निवृत्ति का नाम महाव्रत है।

पाँच महाव्रत नींव के समान हैं, इन्हीं के ऊपर ही मुनि का भवन खड़ा हुआ है। इनका बड़ा महत्व है। इसको अच्छे से समझ लेना चाहिए। केवल संकल्प ले लेना ही काफी नहीं है। यदि नींव का एक खंभा(कालम) हिलने लगता है तो भवन गिरता नहीं, लेकिन गिरने की संभावना हो जाती है।

महाव्रतों के बिना समितियों का कोई महत्व नहीं होता क्योंकि व्रतों की रक्षा के लिए ही समितियाँ होती है। जैसे घड़ी के साथ डिब्बा मिलता है। घड़ी महाव्रत है और डिब्बा समिति है।

अहिंसा महाव्रत विषयक आचार्यश्री का चिन्तन

छह काय के समस्त जीवों को अपनी आत्मा के समान समझकर मन, वचन व काय तथा कृत कारिता व अनुमोदना के नौ भेदों से प्रयत्न पूर्वक उनकी रक्षा करना अहिंसा महाव्रत है।

प्रथम अहिंसा व्रत सभी महाव्रतों का मूल है। जैसे वृक्ष की जड़ में कीड़ा लग जाये तो वह सूखने लगता है वैसे हीअहिंसा महाव्रत में कमी रह जाये तो पूरे मूलगुणों में दोष लग जाता है अर्थात् वे मलिन या नष्ट हो जाते हैं। अतः इन्हें सुरक्षित ही रखना चाहिए।

अहिंसा विश्वहित धारिणी है। अहिंसा व्रत तो मुनि के लिए जननी के समान कहा गया है।

अहिंसा की गोद में ही हमें रहना चाहिए।

अहिंसा स्वभावनिष्ठ परिणति है, इसलिए उसको सदा याद रखना चाहिए।

जिसके पास दया, अहिंसा नहीं, वो कहीं भी चला जायें, चाहे तीर्थंकरों की शरण में भी चला जाये, उसको कुछ मिलने वाला नहीं।

अहिंसा महाव्रत की जिसको चिन्ता है, तो फिर वह अपना काम दूसरे से नहीं करायेगा, स्वयं करेगा।

दूसरों को आदेश देकर काम करने से अहिंसा महाव्रत निर्दोष नहीं पल सकता है। व्रत हमारा है न कि दूसरों का।

आचार्य की चर्या चिन्तन के अनुरूप ही है। सन् १९८७ में थूबौन जी चातुर्मास के समय आचार्य श्री का स्वास्थ्य एकदम बिगड़ गया। स्वयं से उठना बैठना भी मुश्किल हो गया। एक दिन आचार्य श्री विश्राम कर रहे थे। एक महाराज जी ने आ कर कहा - हमने मार्जन कर दिया है, आप करवट बदल लीजिए। इतनी अशक्यावस्था में भी उन्होंने स्वयं ही हाथ में अपनी पिच्छी ले कर धीमे-धीमे पुनः परिमार्जन किया, फिर करवट ली। एक महाव्रती द्वारा किये गये परिमार्जन को नहीं स्वीकारा। वे कहा करते हैं - मूलगुण स्वाश्रित होना चाहिए।

सत्य महाव्रत विषयक आचार्यश्री का चिन्तन

रागादि के द्वारा असत्य बोलने का त्याग करना और पर को ताप करने वाले असत्य वचनों के कथन का त्याग करना तथा सूत्र औरअर्थ के कहने में अयथार्थ वचनों का त्याग करना ही सत्य महाव्रत है।

सत्य महाव्रत और आचार्यश्री का चिन्तन

अहं (अहंकार) को छोड़, अंह (निज) को पाना ही सत्य है। ऐसे सत्य को बार-बार नमस्कार हो। सत्य महाव्रत का अर्थ सत्य बोलना नहीं, असत्य का त्याग करना है। अहिंसा साधु का जीवन है तो सत्य उसका वास्तविक प्राण है। जिस सत्य के द्वारा प्राणियों को पीड़ा पहुँचती है ऐसा सत्य भी असत्यहै। एक शब्द के स्थान पर बहुत बोलना यह सत्य व्रत नहीं कहलाता है। मोक्षमार्ग में तथ्यात्मक बोलो, हितकारी बोलो, मीठे शब्दों के साथ बोलो और सारभूत ही बोलना चाहिए।

बोलने से पूर्व स्व-पर हित के बारे में , धर्म का गौरव बढ़ेगा कि नहीं, कहीं अपयश तो नहीं फैले गा, सोच लेना चाहिए। ध्यान रखना बोलने से यश फैल सकता है तो अपयश भी पल्ले में आ सकता है।

आगम के साँचे में ढला आचार्य श्री का जीवन एकदम श्रृंगारित नजर आता है। वे कहते हैं सत्य और अनुभव वचन संसार सुख के निर्माता हैं, ये वचन पाप से रहित हैं और धर्म से सहित हैं। बोलने योग्य हैं तथा सारभूत हैं। इसी कारण आचार्यश्री अधिकांशतः अनुमय वचन और सांकेतिक शब्दों काप्रयोग करते हैं 'जैसे 'देखो', 'देख लो', 'देखते हैं', 'निमित्त होगा तो', 'मैं क्या कहूँ', 'मैं कैसे कुछ बोल दूँ' आदि। इस प्रकार वे सामने वाले को अनुभय वचन द्वारा स्वतंत्रता प्रदान कर देते हैं। और स्पष्ट रूप से कुछ भी कहने पर संभावना रूप से लगने वाले सूक्ष्म दोषों से भी स्वयं को बचा कर ले जाते हैं।

अचौर्य महाव्रत और आचार्य श्री का चिन्तन

ग्राम आदि में गिरी हुी, भूली हुी, इत्यादि जो कुछ भी छोटी-बड़ी वस्तु है और जो पर के द्वारा संग्रहितहै, ऐसे पर द्रव्य को ग्रहण नहीं करना, सो वह अदत्त परित्याग (अचौर्य) नाम का महाव्रत है।

सर्वज्ञ, वीतराग और हितोपदेशी भगवान नेहमारे आत्म कल्याण के लिए एक सूत्र दिया है वह है अस्तेय, अचौर्य महाव्रत स्तेय कहते हैं । अन्य पदार्थों के ऊपर अधिकार जमाने की आकांक्षा, पर पदार्थों पर आधिपत्य रखने का वैचारिक प्रयास।

दूसरों के द्रव्य को देखते ही, नहीं-नहीं, ऐसा भाव आवे, तब ही अचौर्य महाव्रत पलता है। **'जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय'**, ऐसा विचार करने वाले मुनि, पर धन(वस्तु) को अपना कैसे कह सकते हैं ?

जिस द्रव्य के द्वारा संयम की हानि हो, उस द्रव्यो को नहीं लेना चाहिए, वह चोरी कहलायेगी। इसमें सब चीज आ जाएगी। आहार आदि भी आ जाएगा। भक्ति के अतिरेक में कोई देता है, यदि वह संयम की हानि में कारण

है तो मुनि को वह नहीं लेना चाहिए।

दाँत में फँसे हुए कण को निकालने के लिए बिना पूछे तृण भी नहीं लेना चाहिए।

संयम की हानि एवं विकास किसमें होता है, यह विवेक मुनिराज में होना चाहिए।

किसी पदार्थ से आत्मीय भाव नहीं रखना चाहिए। जैसे डायरी, पेन, पाटा और चौकी मेरी है यह कहना ठीक नहीं है।

अपनी चर्या के द्वारा दूसरों की आस्था गिराना भी चोरी करना ही है।

कभी किसी से याचना नहीं करना, किसी को कुछ आज्ञा नहीं देना, किसी भी पदार्थ से ममत्व नहीं रखना, सदा निर्दोष पदार्थ का सेवन करना और साधर्मी पुरुषों के साथ शास्त्रानुकूल वार्तालाप करना। ये पाँच अचौर्य महाव्रत को शुद्ध रखे वाली श्रेष्ठ भावनायें हैं। इन भावनाओं से सुसज्जित उनका जीवन है। अतिशय क्षेत्र बहोरीबंद का प्रसंग है। एक बार संयोगवश आहार के बाद श्रावक आचार्यश्री के स्थान पर संघस्थ मुनि श्री कुंथुसागरजी का कमण्डलु ले गये और आचार्य श्री के कमरे में रख दिया। ीर्यापथ भक्ति के बाद आचार्यश्री मुनि कुंथुसागरजी से बोले - 'क्यों, कुंथु ! यह कमण्डलु तुम्हारा है, मैं उपयोग में ले लूँ।' उन्होंने कहा - 'जी आचार्य श्री।' आचार्यश्री बोले - 'बहुत देर से मेरे पास रखा था, पर बिना पूछे कैसे लेता।' मुनिश्री कुंथुसागरजी हाथ जोड़कर बोले - 'गुरुदेव ! सब आपका ही है ये मण्डल (संघ) कमण्डल।' गुरुदेव सहज ही बोले - 'नहीं, न मेरा ये मण्डल है और न ही कमण्डल।'

ऐसे हैं आचार्यश्री जिनने न तो बिना पूछे कमण्डलु का उपयोग किया और न ही अपने कमण्डलु के विषय में स्वयं खोज की। क्योंकि दूसरों से पूछने पर उसे खोजने के लिए श्रावकों की जो अयत्नाचार पूर्वक क्रिया होती उससे लगने वाला दोष भी उन्हें स्वीकार नहीं था।

ब्रह्मचर्य महाव्रत और आचार्यश्री का चिन्तन

शुद्ध हृदय को धारण करने वाले वीतराग पुरुष अपने राग रूप परिणामों का सर्वथा त्यागकर कन्या को अपनी पुत्री के समान मानते हैं, युवतियों को अपनी बहन के समान और वृद्धा स्त्री को माता के समान मानते हैं । इस प्रकार जो निर्मल ब्रह्मचर्य धारण करते हैं उसे ब्रह्मचर्य महाव्रत कहते हैं।

ब्रह्मचर्य का अर्थ वस्तुतः है चेतन का भोग।

ब्रह्मचर्य का अर्थ भोग से निवृत्ति नहीं बल्कि रोग से निवृत्ति है जिसे आप लोगों ने भोग माना है, वह वास्तव में रोग है। उस रोग से निवृत्ति ही ब्रह्मचर्य है। आपके भोग का केन्द्र भौतिक सामग्री है। हमारे यहां भोग की सामग्री बनती है। चैतन्य शक्ति। हमेशा-हमेशा ब्रह्मचर्य पूज्य बना किन्तु कभी भोग सामग्री पूज्य नहीं बनी।

पाँचों इन्द्रियों से विरक्त होने का नाम ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ अपने में रम जाना।

जैसे लौकिक जगत में थक जाने पर विश्राम आवश्यक हो जाता है, ऐसे ही संसार से विश्राम की दशा में ब्रह्मचर्य आवश्यक हो जाता है।

उपयोग को विकारों से, राग से बचा कर वीतरागता में लगाना चाहिए यही ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचारी को कोमल बिछौना, संस्तर का उपयोग करना चाहिए। अपनी ही चटाी उपयोग में लाना चाहिए। सभी जिस पर बैठते हैं, उसको उपयोग में लेना यह ठीक नहीं है।

ब्रह्मचर्य ही आत्मनिष्ठ होने का व्यवहार है। यह शारीरिक दृष्टि से चलता है, तब भी यह महत्वपूर्ण है। मोक्षमार्ग का रास्ता इससे प्रशस्त होता है।

सन् १९४७ में सोनीजी की नसिया में आचार्य श्री जी के पास एक अन्य मतावलम्बी साधु आये और पूछा मैं कामेन्द्रिय को जीतना चाहता हूँ पर सफल नहीं हो पा रहा हूँ, आपने कैसे जीता ? आचार्य श्री बोले - हठ योग से इन्द्रियों को नहीं जीत सकते। इन्द्रियों को जीतने के लिए पहले मन को

जीतो। इसके अलावा रसना इन्द्रिय को जीतने से भी कामेन्द्रिय जीतने में सहयोग मिलता है।

आचार्य श्री सुशील ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं और सदैव उसकी रक्षा के लिए सतर्क रहते हैं। अकेली स्त्री से एकान्त में वार्तालाप नहीं करते। वे कभी भी असंयमी, स्त्री जाति, यहाँ तक कि ब्रह्मचारिणी शिष्याओं के नाम भी नहीं लेते। आर्यिकाओं को भी अपने संघ में नहीं रखते। वे हमेशा कहा करते हैं, मुनियों को श्री और स्त्री से दूर रहना चाहिए और आर्यिकाओं को शिक्षा देते हुए कहते हैं कि कभी भी असंमियों पुरुषों के नाम नहीं लेना चाहिए।

अपरिग्रह महाव्रत और आचार्यश्री का चिन्तन

जहाँ पर श्रमण लोग शरीर, कषाय आदि संसारी जीवों के साथ रहने वाले और वस्त्रालंकार आदि जीव के साथ न रहने वाले समस्त परिग्रहों का त्याग कर देते हैं। तथा मन-वचन- और कृत-कारित अनुमोदना से परिग्रहों में होने वाली मूर्च्छा व ममत्व का भी त्याग कर देते हैं इसे आंकिचन्य महाव्रत कहा गया है।

आत्मा को हल्का बनाने की प्रक्रिया परिग्रह त्याग है। पर वस्तु से दूर होना है। परिग्रह त्याग किये बिना आत्मा की बात करना सन्निपात रोग जैसा है। बाह्य और अंतरंग दोनों परिग्रह छोड़े बिना अहिंसा धर्म की महक नहीं आ सकती, आत्मानुभूति की बात तो दूर है।

तीर्थंकरों की पूजा अपरिग्रह के कारण होती है।

संयमोपकरण के लिए एक पिच्छी और शौचोपकरण के लिए एक कमण्डलु रहता है लेकिन आज ज्ञानोपकरण की संख्या निश्चित नहीं करते हैं। कितने होते हैं कितने होना चाहिए ? इसके बारे में भी सोच लेना चाहिए। किसी से परिचय न रक्खो, उनका पता हम न रखे, वे भले ही हमारा पता रखें।

जिसको छोड़ने के लिए पुरुषार्थ करें किन्तु छोड़ा न जाये वह परिग्रह है।

परिग्रह के बीच बैठ जाओ, लेकिन अपने अन्दर परिग्रह मत बैठाना, जैसे नाव पानी में रहे पर नाव में पानी नहीं आना चाहिए।

परिग्रह का त्याग आवश्यक है। जैसे नीचे से अग्नि निकाल दो तो जो दूध उबल रहा है। वह धीरे-धीरे शान्त हो जाता है, वैसे ही परिग्रह छोड़ते ही उबलन ठीक होगी। फिर धीरे-धीरे शान्ति होगी। फिर स्वस्थ हो जायेगा। फिर संतोष को प्राप्त हो जावेगा।

एक बार सन् १९७७ में भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली के संस्थापक साहू शान्तिप्रसाद जी दिल्ली आचार्यश्री के दर्शन करने द्रोणगिरि जी सिद्धक्षेत्र आये उस समय जिनेन्द्र वर्णी द्वारा संकलित व सम्पादित जैनेन्द्र सिद्धांत कोष के चारों भाग आचार्यश्री को भेंट किये। गुरुवर ने उन ग्रन्थों का अवलोकन करते हुए कहा - 'अच्छा पुरुषार्थ किया है।' ऐसा कहकर ग्रन्थ वापिस देने लगे। साहू जी बोले - 'नहीं, महाराज ! हम तो आपको भेंट करने लाये हैं।' आचार्यश्री बोले - 'नहीं, नहीं, साहूजी ! हम इन्हें कहाँ रखेंगे ? हमारे पास ग्रन्थालय नहीं हैं। हम तो निर्ग्रन्थ है। ग्रन्थ पढ़ते हैं, पर अपने पास ग्रन्थालय नहीं रखते हैं।'

श्रमण के २८ मूलगुणों में पांच समितियाँ हैं। इनके पालन से आचार्यश्री के प्रायोगिक व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। सम्यक् प्रवृत्ति को समिति कहते हैं। ये ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपक्ष और प्रतिष्ठापन के नाम से पांच प्रकार की है। मुनियों की प्रत्येक क्रिया समीचीन हो ऐसी आगम की आज्ञा है। इसे ही 'समिति' कहा गया है। आचार्यश्री कहते हैं जिसकी पाँचों क्रियाएँ (समितियाँ) सुधर गयी तो समझो उसका आधा जीवन सुधर गया।

जो इन पाँच समितियों में प्रमाद करते हैं, वे निंदनीय है। आज ये कहा जाता है कि ये पंचम काल है महाराज ! इसमें समितियों का पालन नहीं हो सकता है। ऐसा कहकर अपने प्रमाद को छुपाने की बात की जा रही हैं। यह ठीक नहीं है। समितियों में प्रमाद ठीक नहीं।

आचार्यश्री के चिंतन में ईर्या समिति

प्रयोजन के निमित्त चार हाथ आगे जमीन देखने वाले साधु के द्वारा दिन में प्रासुक मार्ग से जीवों का परिहार करते हुए गमन करना ईर्या समिति है।

श्रमण को चातुर्मास में किसी को भेजना या बुलाना नहीं चाहिए। उनके द्वारा आवागमन में हुी हिंसा का दोष हमें आयेगा।

ईर्या समिति का यत्नपूर्वक पालन नहीं करोगे तो अहिंसा व्रत का पालन नहीं हो पाएगा। और आगे की समितियों का पालन भी निर्दोष नहीं हो पाएगा। यदि आप मुक्ति चाहते हो तो ीर्या समिति का यत्न के साथ पालन करो।

अपना काम दूसरों से नहीं कराना चाहिए

सन् १९८३ में अपार जनसमूह के बीच आचार्य श्री ससंघ का कलकता महानगर में प्रवेश हुआ। उनकी अगवानी का समाचार 'समाचार-पत्र' में प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक था - जिसे पूरे कलकत्ता ने देखा,उसने कलकत्ता को आँख उठाकर नहीं देखा। यह है आचार्य श्री का ीर्यासमिति पालन का ज्वलंत उदाहरण।

आचार्यश्री के चिंतन में भाषा समिति

चतुर पुरुष हँसी के वचन, कठोर वचन, चुगली के वचन, दूसरे की निंदा के वचन और अपनी प्रशंसा के वचनों तथा विकथाओं को छोड़ कर केवल धर्ममार्ग की प्रवृत् करने के लिए तथा अपना व दूसरों का हित करने के लिए सारभूत, परिमित और धर्म से अविरोधी जो वचन कहते हैं वह भाषा समिति है।

भाषा समिति की परिभाषा अद्वितीय है। व्यभिचारी को व्यभिचारी कहना भी गलत है। निंद्य भाषा से अहिंसा को धक्का लगता है।

भाषा समिति पूर्वक ही कर्मों के आस्रव को रोका जा सकता है, जो कि जिनधर्म का सार है। भाषा समिति का प्रयोग हो जाये, तो संघ का वर्धन होगा। आदर के साथ भाषा समिति का पालन करें। यह धर्म की मूल एवं मोक्ष का द्वार है, वैराग्यवर्धिनी।

मई २०१७ में आचार्य श्री डोंगरगढ़ में प्रतिभास्थली की बहनों को मातृभाषा के विषय में मार्गदर्शन दे रहे थे। तभी एक बहन बोली - आचार्यश्री

जी ! 'अंग्रेजी नौकरानी' तब भाषा समिति के साधक आचार्य श्री जी ने कहा - नहीं, नहीं, ऐसा नहीं कहते । संस्कृत हमारी माँ है, हिन्दी मौसी और अंग्रेजी धाय ।

आचार्यश्री के चिंतन में एषणा समिति

मोक्ष की इच्छा करने वाले मुनिराज दूसरे के घर जाकर शीत या उष्ण जैसा मिल जाता है, वैसा शुद्ध भोजन करते हैं। यह एषणा समिति है ।

मुनिराज दूसरे के घर जाकर छियालीस दोषों से रहित जैसा मिल जाता है, वैसा शुद्ध भोजन गोचरी वृत्ति के समान करते हैं ।

प्रसन्नतापूर्वक प्रासुक आहार लेना चाहिए। आहार केपहले एवं बाद में कुछ देर तक प्रसन्न रहना चाहिए ।

प्रासुक आहार से तात्पर्य, केवल प्रासुक आहार से नहीं , उनका बिन भी प्रासुक होना चाहिए। वह हिंसात्मक साधनों से कमाया हुआ न हो ।

आहार मूलाचार के अनुसार करके आइए। फिर इसकी चर्चा न हो । जब आगम ने अनुमति नहीं दी तो फिर इसकी चर्चा क्यों ?

आचार्य श्री अत्यंत प्रसन्न मुद्रा में नीरस आहार भी ऐसे लेते हैं जैसे छप्पन भोग ले रहे हो ।

आचार्यश्री के चिंतन में आदान निक्षेपण समिति

साधु अपने उपयोग की वस्तुओं का उठाना रखना पिच्छी से परिमार्जन पूर्वक करते हैं । उनकी यह क्रिया आदान-निक्षेपण समिति कहलाती है ।

आदान-निक्षेपण समिति में कमी नहीं होना चाहिए। अगर हम दूसरों के द्वारा कोी काम करवाते हैं तो आदान-निक्षेपण समिति सदोष हो जाती है । हमें स्वयं देखकर के रखना उठाना चाहिए ।

जिन-जिन पदार्थों का उपयोग करते हैं तो उसे पिच्छी का प्रयोग कर के ही उपयोग करना चाहिए ।

हिलने-डुलने वाले आसन पर नहीं बैठना चाहिए ।

मनोयोग के साथ प्रतिलेखन करना चाहिए । बिना मन के यह समिति नहीं होती ।

आचार्यश्री जीवों की रक्षा के प्रति, व्रतों के प्रति सदैव सतर्क रहते हैं वे अपना कार्य स्वयं करते हैं ।

आचार्यश्री के चिंतन में प्रतिष्ठापन समिति

श्रमण ऐसे स्थान में मलमूत्र करते हैं जो एकान्त में हो, दूर हो, ढँका यानि आड़ में .हो, दृष्टिगोचर न हो,अचित्त हो, विरोध रहित हो, अर्थात् किसी की रोक-टोक न हो और जिसमें जीव जन्तु न हों । ऐसे स्थान पर देख शोध करने मल मूत्र आदि करते हैं । इसे प्रतिष्ठापन समिति कहते हैं ।

मुनिराजों को निर्जन्तुक स्थानों देखशोध मलमूत्र- आदि का क्षेपण करना चाहिए ।

शौच आदि का स्थान बड़े शहरों में नहीं मिल पाता है अतःउन्हें शहर में रहने का अधिक लोभ नहीं करना चाहिए। छोटे ग्रामों में रहकर व्रतों का निर्दोष पालन हो सकता है ।

मुनियों को कफ व नाक का मैल डाल कर उसके ऊपर बालू या राख डाल देना चाहिए, जिससे उसमें जीव गिर कर मर न जाएँ ।

आज मुनियों की प्रतिष्ठापन समिति भी गड़बड़ा गयी है । शौच कूप बने हैं, उनमें जाते हैं और कहते हैं इसमें कोी दोष नहीं हैं । शौच कूप में जो कीड़े होते हैं वे मरते नहीं हैं, वे तो इस मल को खा जाते हैं । यह सब ठीक नहीं एक बार आचार्य श्री ने शारीरिक बाधा होते हुए भी चर्या का सदोष नहीं होने दिया ।

आचार्यश्री चिन्तन में पंचेन्द्रिय निरोध

मुनि को चाहिए कि वह चक्षु, कर्ण, घ्राण जिह्वा और स्पर्शन इन पाँच इन्द्रियों को अपने विषयों से हमेशा रोके । इन्द्रियों की विषयों में प्रवृत्ति नहीं करना रोध कहलाता है । सम्यक् ध्यान के प्रवेश में प्रवृत्ति करना अर्थात् धर्म-शुक्ल ध्यान में इन्द्रियों को प्रविष्ट कराना यह इन्द्रिय निरोध है।

साधु के २८ मूलगुणों में ५ मूलगुण इन्द्रिय विजय के रूप में हैं। इन्द्रिय विषयों में व्यापार होते ही ये गुण निश्चित रूप से मलिन हो जाते हैं। चूंकि इन्द्रियां मन के अधीन है, अतः इन्द्रिय विजय के साथ-साथ जितमाना होने के लिए मन का निग्रह भी आवश्यक है।

पंचेन्द्रिय के विषयों में हर्ष विषाद नहीं करना इन्द्रिय निरोध है।आत्मानुभूति में बाधा डालने वाली इन्द्रियाँ है। पराजित होने का मूलकारण इन्द्रिय लोलुपता है जिसके कारण त्याग तपस्या सब भस्म हो जाती है।

वैराग्य के बिना पंचेन्द्रिय निरोग नहीं हो सकता।

आप आस्रव रोकना चाहते हैं तो इन्द्रिय निरोध करना सीखो और यदि निर्जरा करना चाहते हैं तो भी पाँचों इन्द्रियों को वश में रखो।

आचार्यश्री के चिन्तन में षट्आवश्यक

रोग आदि से पीड़ित होने पर भी जो इन्द्रियों के अधीन होकर मुनि के द्वारा जो दिन-रात कर्त्तव्य किये जातेहैं, उन्हें आवश्यक कहते हैं। जो वश्य अर्थात् इन्द्रियों के अधीन नहीं होता है उसे अवश्य कहते हैं। अवश्य के कर्म को आवश्यक कहते हैं। श्रमण इन्द्रियों के अधीन नहीं होते अतः उन्हें आगम में 'अवश्य' कहा गया है। अर्थात् श्रमण के द्वारा किये जाने वाले कार्य को आवश्यक कहते हैं। ये छह हैं - १. सामायिक, २. स्तव, ३. वन्दना, ४. प्रतिक्रमण, ५.प्रत्याख्यान और ६. कायोत्सर्ग।

आवश्यक साधकों के प्राण हैं। संयम के बिना संयमी का क्या जीवन ? छह आवश्यक तो निर्विकल्पतापूर्वक होना चाहिए अन्यथा भव बिगड़ते हैं। इसलिए भीतरी परिणामों को टटोलना आवश्यक है नहीं तो घाटा है।

जिस प्रकार भोजन पानी से भरे पेट में लू नहीं लगती उसी प्रकार छह आवश्यकों को समय पर करने से सांसारिक लू नहीं लगती।

आवश्यकों का पालन करना तो स्वाध्याय का फल है। अपने आवश्यक ऐसे करें, जिससे सावद्य का दोष न लगे। इसीलिए दिन के प्रकाश का पूर्ण प्रयोग कर लीजिए। आवश्यक का परिहार न करें, व यद्वा-तद्वा न करें।

आवश्यकों में ज्यादा समय लगाना चाहिए। दीनता के भावों से कभी नहीं करना चाहिए। यह भाव धार्मिक क्षेत्र में अच्छा नहीं यदि आप लोग आवश्यकों का पालन अच्छे से नहीं करते तो समझो। आगे आने वालों को/उम्मीदवारों के लिए मार्ग अवरुद्ध कर रहेहो।

आचार्यश्री के चिंतन में शेष सात मूलगुण

श्रमण के २८ मूलगुणों में शेष सात मूलगुण हैं - केशलोंच, आचेलक्य, स्नान, भूमि शयन, अदंत धावन, स्थिति भोजन एवं एक भक्त भोजन। ये शेष गुण शरीर से निर्ममत्व, रागभाव को घटाने, निद्रा, विजय और आत्म साधना में सहायक है।

इस प्रकार हम देखते हैं श्रमण के २८ मूलगुण उनके मूलाचार है। आचार्यश्री कहते हैं - मूलाचार में यह उल्लेख मिलताहै जो व्यक्ति मूल की रक्षा नहीं करता और टहनी, शाखाओं, उपशाखाओं,फल, फूल, पत्ते कोपल इत्यादि सुरक्षित रखना चाहता है यह संभव नहीं है। मूल के बिना कुछ भी मूल्यवान नहीं होता, मूल रहेगा तभी ब्याज मिलेगा अन्यथा नहीं। पूज्य ज्ञानसागर आचार्यश्री ने कहा था - मूलधन को सुरक्षित रखना, ज्यादा ब्याज के लोभ में नहीं पड़ना, प्रचार-प्रसार में मूलगुणों को भुलाना नहीं। मूलाचार पढ़ो, बार-बार पढ़ो, और अपनी तुलना करते चलो।' आचार्यश्री ने अपने गुरु आचार्य श्री ज्ञानसागर जी निर्देशानुसार मूलाचार के अनुसार निर्दोष चर्या का पालन करते हैं। वे मूलाचार की जीवन्त प्रतिलिपि है।

आचार्यश्री विद्यासागरजी के चिंतन में श्रमणाचार

ब्र. आदर्श जैन, गंजबासौदा

परम पूज्य आचार्य विद्यासागरजी अपनी निर्दोष चर्या स्व के साथ परहित में संलग्न सर्वाधिक लब्धख्यात आचार्य हैं। वे सच्चे अर्थों में श्रमण है। मूलाचार में श्रमण का अर्थ निम्न प्रकार हैं -

समणों मेत्ति य पढमं विदियं स्वत्थ संजदो मेत्ति।
सव्वं च वोस्सरामि य एदं मणिदं समासेण ॥[१]

इसकी संस्कृत छाया इस प्रकार है -

श्रमणो मम इति प्रथमः द्वितीय सर्वत्र संभतो ममेति।
सर्वं च व्युत्सजामि च एतद भणितं समासेन ॥

- समणों मेत्ति य श्रमण समरसीभाव युक्तः सर्वत्र संयतः अथवां श्रमणो मम प्रथमं मैत्र्यं द्वितीयं च सर्वं संयतेषु। सव्वं च। वोस्सरामि व्युत्सृजामि च। एदं एतदं। भणिदं भणितं समासेण संक्षेपतः।

शब्दस्तोम महानिधि के अनुसार श्रम का अर्थ निम्न है -

श्रम तपसि, आयासे खेदे।

श्रम + युच् = श्रमणः।

श्रमणः यति भेदे भिक्षा जीविनि त्रि जटामाख्यां मुण्डोर्य्या शरीर भेदे सुदर्शनायां स्त्रियां च।[२]

इस प्रकार श्रमण की व्युत्पत्ति होगी-श्रमेणयुक्तः श्रमणः। श्रम तपस्या। अर्थात् जो श्रम से। तपस्या से युक्त है वही श्रमण है अथवा जो समत्व से युक्त है वही श्रमण है।

जावालोपनिषद् में यथाजातरूप निर्ग्रन्थ निष्परिग्रही श्रमण को परमहंस की संज्ञा दी गी है -

यथाजातरुपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रहः
तद् ब्रह्ममार्गे सम्यक् सम्पन्नः शुद्धमानमः
प्राण संघारणार्थं यथोक्तकाले विमुक्तो

भौक्षमाचरन्नुदर पात्रेण लाभालाभयोः
समोभूत्वा शून्यागारदेवगृह
तृणकूटवल्मीकवृक्षमूलकुलाल शाला
अग्निहोत्रगृह नदीपुलिनगिरिकुहर
कुन्दरकोटर निर्झर स्थण्डिलेषु
तेष्वनिकेतवास्यप्रयत्नो निर्ममः
शुक्ल ध्यान परायणोऽध्यात्मनिष्ठो
अशुभकर्मं निर्मूलनपरः
सन्यासेन देहत्यागं करोति
स परम हंसो नाम

इस प्रकार जैन-जैनेतर आगम में वर्णित श्रमण की परिभाषा विशेषतायें आचार्यश्री में पूर्णरूपेण दृष्टिगोचर होती है। जिनागम में श्रमणमों की आचार संहिता का वर्णन करने वाले अनेक ग्रन्थ उपलब्ध है। एक ओर जब उन ग्रन्थों का अध्ययन किया जाता है और दूसरी ओर आचार्यश्री की निर्दोष चर्या का अवलोकन किया जाता है तब ऐसा प्रतीत होता है मानों आचार्यश्री मुनियों के आचरण को बताने वाले ग्रन्थों की जीवन्त प्रतिलिपि हो।

श्रमणों के स्वरूप, उनकी चर्या का निरूपण चरणानुयोग के ग्रन्थों में हुआ है। प्रथमानुयोग के ग्रन्थों में भी प्रकारण के अनुसार अनेक स्थलों पर श्रमणचार्य का वर्णन मिलता है। इनमें श्रमण के २८ मूलगुण बतलाये गये हैं जो इस प्रकार है-

पाँच महाव्रत - अहिंसा, सत्य,अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह महाव्रत

पाँच समिति - ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण एवं प्रतिष्ठापन समिति

पाँच इन्द्रिय निरोध - स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु एवं कर्ण इन्द्रिय निरोध

षट् आवश्यक - सामायिक स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान एवं कायोत्सर्ग

शेष सात गुण - केशलोंच, आचेलक्य (निर्ग्रन्थ), अस्नान, भूमिशयन, अदंतधावन, स्थितिभोजन (खड़े हो कर भोजन) एवं एक भक्त (एक बार भोजन)

ये श्रमण के प्रधान आचरण हैं। इनके साथ तीन गुप्ति, पाँच आचार,बाइस परीषह जय बारह तप दश धर्म आदि का पालन करते हैं जो मुनियों के उत्तरगुण हैं। आचार्य श्री श्रमण के मूलगुण और उत्तरगुणों का पालन करतेहैं। इन पर चिंतन करते हैं। इसी का परिणाम है कि आचार्यश्री ने संस्कृत में सर्वप्रथम श्रमणशतक की रचना की और श्रमणचर्या अपने शिष्यों को बतलाी। परिषह जय शतक द्वारा श्रमण की भावना और वृत्ति को स्पष्ट किया है।

स्वामी समन्तभद्राचार्य ने रत्नकरण्डश्रावकाचार में श्रमण का स्वरूप बतलाया है -

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस् तपस्वी स प्रशस्यते ॥१०॥

जैन श्रमण की आभ्यन्तर विराग भावना एवं वृत्ति कैसी होनी चाहिए इस पर श्रमण शतक में आचार्यश्री का चिन्तन देखिए -

रागादीन् सुधीः पुमान् नैमित्तिकाननियतान् नैतीमान्।
अनधिगततत्त्वोऽसुमान् याति तु पर्ययान् परकीयमान् ॥२८॥

रागादिभाव पर हैं, पर से न नाता,
ज्ञानी मुनीश रखता, पर में न जाता।
धिक्कार मूढ़ परको, करता कराता,
ना तत्त्वबोध रखता, अति दुःख पाता ॥

मुमुक्षु साधक संसार में रह कर भी संसार में उसी प्रकार विरत रहता है जिस प्रकार जल में रह कर भी उससे भिन्न रहता है-

जलाशये जलोद्भवमिवात्मानं भिन्नं जलोतऽनुभव।
प्रमादी माऽये भव भव्य विषयतोविरतो भव ॥३३॥

सच्चा श्रमण चेतन को तन से पृथक् समझ कर देहासिक्त का परित्याग करता है। उसके लिए देहासक्ति/देहाभिमान का न कोी प्रश्न ही नहीं उठता -

भिन्नोऽहमङ्गान्मद-रूपिणोऽपि च भिन्न मन्यङ्गमदः।
मुञ्चामीत्वेति मदमाङ्गगत-भवहेदुमद ॥३४॥

इसका हिन्दी पद्यानुवाद देखिए -

हूँ देह से पृथक् चेतन शक्ति बाला,
स्वामी ! सदैव मुझते तन भी निराला।
यों जान,मान तन का मद छोड़ता हूँ,
मैं मात्र मोक्ष पथ से मन जोड़ता हूँ॥

श्रमण कभी पर पदार्थों से आकर्षित नहीं होता। उसकी दृष्टि तो सदैव निज पर रहती है।[३] श्रमण क्षमादि दश धर्मों का पालन करते हैं और सदैव पाप से विमुख रहते हैं।[४] उनकी कभी भी यश के प्रति आकांक्षा नहीं होती।[५] मुमुक्षु साधक मात्र द्रव्य श्रुत पर पर आश्रित नहीं रहता अपितु भावश्रुत का आवलम्बन होकर स्वानुभूति के रस का पान करता है।[६] आचार्यश्री ने मात्र बाह्य दिगम्बरत्व को मोक्षमार्ग में कार्यकारी नहीं माना है। उसे तो मन-वचन-काय से पवित्रक होकर समता रूपी सुधा धारा का सेवन करना चाहिए। सच्चे श्रमण में तो आत्मानुबूति का निर्झर, सप्त तत्त्वों के चिन्तन से प्रवाहित होता है अतः साधक का कर्त्तव्य है कि वह अनवरत तत्त्व चिन्तन में रत रहे।

न मनोऽन्यत् सदा नय दृशा सह तत्त्वसप्तकं सदा नय।
यदि न त्रासदाऽनयः पन्थास्ते स्वर सदा न यः ॥९९॥

तू चाहता विषय में मन ना भुलाना,
तो सात तत्त्व अनुचिन्तन में लगा ना।
ऐसा ना हो कुपथ से सुख क्यों मिलेगा ?
आत्मानुभूति झरना फिर क्यों झरेगा ?

तत्त्व चिन्तन में रह रहने वाले वालरे श्रमण के देह राग या रूचि नहीं रहती है। वह स्वरस में निमज्जित होता रहता है। उसके हृदय में प्रशम भाव कर्मों की श्रृंखलाएं अनायास ही जीर्ण शीर्ण होने लगती है तथा वह परमशान्ति का अनुभव करते हुए 'स्वयं में रममाण' हो कर स्थित रहता है -

यस्य हृदि समाजातः प्रशम भावः श्रमणो श्रमणो यथाजातः।
दूरोऽस्तु निर्जरातः कदापि मा शुद्धात्मजातः ॥३६॥

उक्त श्लोक का हिन्दी अनुवाद भी दर्शनीय है -

सौभाग्यसे श्रमण जो कि बना हुआ है,
सच्चा जिसे प्रशम भाव मिला हुआ है।
छोड़े नहीं वह कभी उस निर्जरा को,
जो नाशती जन्म मृत्यु तथा जरा हो ॥

परीषह जय शतक में आचार्यश्री ने श्रमण को सुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दशमशक, नाग्न्य, अरति,स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश,वध, याचना, अलाभ, रोग, तृण स्पर्श, मल, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन परीषह का स्वरूप बतलाकर समताभाव पूर्वक सहन करने की प्रेरणा दी है और स्पष्ट किया है कि श्रमण परीषहों को सहन कर निजानुभव को प्राप्त कर लेता है तथा विभाव नष्ट होते हैं -

शुचि चित्ते श्रमणोऽत्र समानतः, सुख शुभाशुभ दुःख समानतः।
संयम संयम भाव विभावतः, श्रययेन्वितिरस्तु विभावत ॥३॥

इसका हिन्दी अनुवाद भी दर्शनीय है -

दुःख में सुख में तथा अशुभ-शुभ में नियमित रखें समता,
शुचितम चेतन में नमते हैं श्रमण-श्रमणता से ममता।
यम-संयम दम शम भावों की लेता सविनय शरण अतः,
विभाव भावों दुर्भावों का क्षरण शीघ्र हो मरण स्वतः ॥

बाह्याभ्यन्तर, द्रव्य भाव सर्व रीति से सच्चे श्रमण की समतामय वृत्ति और व्यवहार के स म्बन्ध में आचार्यश्री के उद्‌गार देखिए -

सपदि संपदि संविदि वा सुखी, विपदि नो भुवि योऽविदि वा सुखी।
स हि परिषहकान् सहितुं क्षम शुचि तपश्चरमं विहितुं क्षमः ॥१६॥

प्रस्तुत पद्य का हिन्दी अनुवाद भी दृष्टव्य है -

पद पूजन संपद संविध वा पद पद होते सुखित नहीं,
निन्दन, आपद, अपयश में फिर साधु कभी हों दुखित नहीं।
दुस्सह सब परिषह सहने में सक्षम ऋषिवर धीर सभी।
आत्मध्यान के पात्र ध्यान कर पाते हैं भव तीर कभी ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्यश्री जैनागम में निरूपित श्रमणाचार का पालन करने वाले श्रमण हैं। उनका दर्शन करते ही भवभूति का निम्न श्लोक स्मृति पटल पर स्फुरित होने लगता है।

वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादिप।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञानुमर्हिति ॥

आचार्यश्री ने यौवन में पदार्पण करते ही वज्र से भी अधिक कठोरता धारण कर तपस्या की चरम सीमाओं का स्पर्श कर लिया है साथ ही वे ऐसे आचार्य है जो द्राक्षाफल के समान अन्तर्बह्य माधुर्य से ओतप्रोत हैं। कभी इतने कठोर कि शायद ही किसी का नियंत्रण उन पर संभव हो और कभी इतने मृदुल कि कुसुम की कोमलता भी लज्जित हो उठे। उनके तप, ज्ञान और वैराग्य से ऐसा प्रतीत होता है कि युवा शरीर पर बुद्धत्व का साम्राज्य हो। ऐसे साधक श्रमण अपनी चर्या द्वारा तो श्रमणाचार को प्रस्तुत करते ही है, वे अपने चिन्तन-मनन, लेखन प्रवचन आदि के माध्यम से भी श्रमणचर्या को निर्देशित करते हैं। वे कहते हैं कि चौथे काल में जो श्रमणचर्या आगम में बतलाी गयी है वही चर्या आज भी रहेगी। वर्तमान परिस्थिति के कारण चर्या में कोी परिवर्तन करना या ढील देना सर्वथा अनुचित है। अतः आगम के अनुसार ही निर्दोषचर्या का उत्कृष्ट रूप से पालन करना चाहिए। इसके लिए श्रमण का कर्त्तव्य है कि वह ज्ञान, ध्यान, तप, तत्त्वचिन्तन में रत रहे, परीषहों को समताभावपूर्वक सहन करें। इससे जीवन को सुखी व समृद्ध बनाने का पाथेय मिलता है।

संदर्भ –

१. मूलाचारः आचार्य बट्टेकेर, २/९८
२. शब्दस्तोम महानिधि, पृष्ठ ४४०
३. श्रमण शतक : आचार्य विद्यासागर ४६
४. वही५५
५. वही ५७
६. वही ६७

❍❍❍

प. पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी मुनिराज के चिंतन में नारी का गौरव

बा. ब्र. सुनील भैया, तारंगा

आचार्य श्री विद्यासागर जी कहते हैं : **''नारी समाज की रीढ़ है'' -** उनका यह कहना अक्षरक्षः सत्य है। भारतीय संस्कृति में नारी के सम्मान को बहुत महत्व दिया गया है। संस्कृत में एक श्लोक है -

यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमन्ते तत्र देवता।
शोच्यन्ते हि यत्रैता, विनश्यत्यासु हितत् कुलम् ॥

अर्थात् - जिस कुल में नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता भी निवास करते हैं और जिस कुल में नारियाँ शोक मग्न रहती है उस कुल का शीघ्र ही विनाश हो जाता है।

नारियाँ ही महापुरुषों की जननी हैं, तीर्थंकर जैसे नर-रत्नों को जन्म देने का सौभाग्य नारियों ने ही प्राप्त किया है। यही कारण है कि कवियों ने भी उनकी प्रशंसा में बहुत कुछ कहा है।

नारी-नारी मत कहो, नारी गुणों की खान।
नारी से पैदा हुए, चौबीसों भगवान॥

श्री मानतुंगाचार्य ने नारियों की महिमा का वर्णन करते हुए भक्तामर स्त्रोत में श्लोक स. २२ लिखा है -

स्त्रीणां शतान शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्यां सुतं त्वदुपंम जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्त्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम्॥

अर्थात् - हे भगवन्! सैकड़ों स्त्रियां सैकड़ों पुत्रों को जन्म देती हैं। किन्तु आप जैसे पुत्र को जन्म देने वाली माता विरली ही होती है सो ठीक ही है। क्योंकि सभी दिशाएं नक्षत्रों को जन्म दे सकती हैं। किन्तुहजारों किरणों से

दैदीप्यमान ऐसे सूर्य को एक पूर्व दिशा ही जन्म देती है।

भगवज्जिनसेनाचार्य जीने महापुराण में लिखा है कि - ऋषभदेव ने ब्राह्मी पुत्री को दाहिने हाथ से लिपि और सुंदरी पुत्री को बाएँ हाथ से अंकों का लिखना सिखाया। यही कारण है कि लिपि बाएँ से दायीं और अंक दाऐं से बायीं ओर लिखे जाते हैं, ब्राह्मी के नाम पर ही विश्व की प्राचीनतम लिपि ब्राह्मी कहलाती है।

उपनिषदकार ने ''मातृदेवो भव'' कहकर मां रूपी नारी को देवत्व के स्थान/उच्च आसन पर बिठाया है।

''न अरि यस्या सानारी अथवा या न अरि कस्यामि सा नारी ''

जैसे - वायु की अपनी कोी सुगंध नहीं होती, वह जैसा सम्पर्क पाती है वैसी ही सुरभित/दुरभित होकर बहती है। उसी प्रकार नारी की स्थिति है।

''नारी'' विधाता की सर्वोत्तम और नायाब सृष्टि है। नारी की सूरत और सीरत की पराकाष्ठा और उसकी गहनता को मापना दुष्कर ही नहीं नामुमकिन है। प्राचीन काल से ही हम नारियों के अवदान, अवस्थिति एवं अस्मिता का आंकलन करते हैं तो ज्ञात होता है कि नारी हमारे समाज की शक्तिहै , जीवन्तऔर मूर्तिमन्त धरोहर है, अनेक विघ्न, बाधाओं और पीड़ाओं के भीषण झंझावात में भी उन्होंने अपने सद्‌गुणों के दीपक को निष्काम्य भाव से प्रदीप्तरख इस जगतीतल को प्रकाशित किया है।

भगवान महावीर के काल मे सामाजिक परिवेश में नारियों की अत्यंत दुर्दशा थी। वे दासी क रूप में नारकीय जीवन बिता रही थीं। समाज में उनका शोषण हो रहा था। बाजार में खुले आम मातृशक्ति का क्रय-विक्रय होता था, उन्हें पशुओं की तरह खरीदने के लिए बोलियाँ लगाी जाती थीं गुलामी में जकडी इन शोषिताओं को न तो स्वतंत्रता का कोी अर्थ था और न ही किसी तरह का अवसर। ऐसेस समय जब समाज में नारी मुक्ति के संबंध में कोी कल्पना भी नहीं कर सकता था तब भगवान महावीर ने नारी को स्वतंत्रता प्रदान कर उसे समाज में समानता का अधिकार दिलाया।

मध्यकाल में नारियों की शोचनीय स्थिति हो गी थी, उनकी स्वतंत्रता का अपहरण हुआ। सामाजिक प्रतिष्ठा नष्ट हो गी,उसे शिक्षा के अधिकार से भी वंचित होना पड़। देश की परिस्थितियाँ उनके अनुकूल नहीं थी। मुगलों का साम्राज्य होने से नारी को चार दीवारी में बंद रखा जाता था। पदा प्रथा का अधिक प्रचलन था।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने नारी जाति के जागरण के लिये स्त्री शिक्षा पर बड़ा ही प्रभावशाली आन्दोलन चलाया।

१९ वी सदी में अंग्रेजी प्रशासन में स्त्री शिक्षा के लिये स्कूलों से लेकर कॉलेजों तक प्रबंध किया गया।

आज हमें आजादी को हासिल किये ६८ वर्ष पूरे हो चुके हैं। हमारा देश प्रगतिशीलता की ओर तेजी से बढ़ रहा है। आज की नारी किसी भी क्षेत्र में पुरुष से पीछे नहीं हैं, फिर चाहे सौन्दर्य का क्षेत्र हो, रक्षा क्षत्र हो, सेना का क्षेत्र हो,इंजीनियरिंग, अंतरिक्ष यात्रा, पर्वतारोहण, चिकित्सा सेवा, हवाी सेवा, समाज सेवा, प्रशासनिक सेवा, शिक्षा के क्षेत्र में अपनी बुद्धिमता/योग्यता का परिचय दिया है। आज की नारी हर क्षेत्र में आगे बढ़ने के प्रयास में कार्यरत है।

सौन्दर्य के क्षेत्र में आज हमारा भारत सभी देशो से आगे है, विगत की वर्षों से भारत की महिलाएँ जैसे - ऐश्वर्या राय, सुष्मिता सेन ने विश्व सुंदरी का ताज सिर पहनकर न केवल भारत बल्कि पूरे विश्व में सम्मान प्राप्त किया है।

संगीत के क्षेत्र में लता मंगेशकर, अनुराधा पौंडवाल को साक्षात् सरस्वती माँ का दर्जा दिया गया है। किरण बेदी, पी.टी.ऊषा, कल्पना चावला जैसी महिलाओं ने साबित किया है कि वे किसी से कम नहीं हैं।

साहित्य के क्षेत्र में महादेवी वर्मा ने अपनी विभिन्न रचनाओं के माध्यम से नारी जगत का गौरव बढ़ाया है।

युद्ध के क्षेत्र में बहादुर वीरांगना झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाी ने देश की स्वतंत्रता के लिये अंग्रेजों के दाँत खट्टे कर दिये थे। रानी दुर्गावती भी देश के लिये बलिदान हो गईं।

सेवा के क्षेत्र में शांतिदूत मदर टेसेरा ने विदेशी होते हुए भी भारत को अपना कर्म क्षेत्र बनाया। कोलकाता में ''द सोसायटी आफ द मिशन रोज ऑफ चैरिटी'' नामक संस्था के माध्यम से उन्होंने गरीबोंक, दीन-दुखियों, लाचारों की सेवा का बीड़ा उठाया। अनेक राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित मदर टेरेसा अपनी पूरी जिंदगी दया का फरिश्ता बनी रहीं।

प्रधानमंत्री के रूप में प्रियदर्शिनी श्रीमती इंदिरा गांधी ने १६ वर्ष भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री के रूप में रहकर हमारे देस को आगे बढ़ाया और स्वयं देश के लिए बलिदान हो गईं।

राष्ट्रपति के रूप में श्रीमती प्रतिभा पाटिल प्रथम महिला राष्ट्रपति बनीं।

मुख्यमंत्री के रूप में श्रीमती वसुंधरा राजे सिंधिया (राजस्थान) का श्रीमती ममता बनर्जी (पं. बंगाल) श्रीमती जयललिता (तमिलनाडु) श्रीमती आनंदी बेन पटेल(गुजरात) विदेश मंत्री के रूप में श्रीमती सुषमा स्वराज, लोकसभा अध्यक्ष के रूप में श्रीमती सुमित्रा महाजन आदि शीर्ष पदों पर आसीन हुी हैं और सफलतापूर्वक काम करके दिखा रहे हैं।

भारत की प्रथम महिलाओं की सूची -

०१) भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री - श्रीमती इंदिरा गांधी

०२) भारत की प्रथम महिला कांग्रेस अध्यक्ष - डॉ. एनी बेसेंट

०३) भारत की प्रथम महिला संयुक्त राष्ट्र महासभा अध्यक्ष - विजय लक्ष्मी पंडित

०४) भारत की प्रथम महिला राज्यपाल और कांग्रेस अध्यक्ष - सरोजनी नायडू

०५) भारत की प्रथम महिला इंग्लिश खाड़ी तैरकर पार करने वाली - आरती गुप्ता (शुहा)

०६) भारत की प्रथम महिला जज - फातिमा

०७) भारत की प्रथम महिला माउंट एवरेस्ट विजेता - बछेंद्री पाल देवी

०८) भारत की प्रथम महिला नोबेल पारितोषिक विजेता - मदर टेरेस

०९) भारत की प्रथम महिला विधानसभा अध्यक्ष - शन्नोदेवी

१०) भारत की प्रथम महिला दिल्ली तक्त पर बैठने वाली - रजिया सुल्तान

११) भारत की प्रथम महिला राजदूत - विजयलक्ष्मी पंडित

१२) भारत की प्रथम महिला आीपीएस - किरण बेदी

१३) भारत की प्रथम महिला अध्यापिका - सावित्री देवी फूले

१४) भारत की प्रथम महिला ज्ञान पीठ पुरस्कार विजेता - आशापूर्ण देवी

१५) भारत की प्रथम महिला चुनाव लड़ने वाली - कमला देवी चट्टोपाध्याय

१६) भारत की प्रथम महिला राष्ट्रपति - श्रीमती प्रतिभा पाटिल

धार्मिक क्षेत्र में जबलपुर की मढ़िया जी का मंदिर तो इसका जीवंत उदाहरण है। एक नारी ने चक्की पीस-पीस कर पैसा इकट्ठा किया और मंदिर बनवाया। आज भी वह मंदिर हमें नारी की श्रद्धा, भक्ति एवं समर्पण का संकेत दे रहा है।

महामात्य चामुण्डराय की माता को भगवान बाहुबली के दर्शन की तीव्र उत्कंठा ही तो तत्कालीन नेमिचन्द्रचार्य के निर्देशन में पहाड़ में बाहुबली की विशाल प्रतिमा उकेरी गी/निर्माण कराया गया और उन्होंने दर्शन किए तभी बड़े -बड़े राजा महाराजाओं ने अभिषेक किया, परन्तु पूर्ण रूप से अभिषेक नहीं हुआ और एक गुल्लिका अज्जी की छोटी सी लुटिया के जल से सम्पूर्ण अभिषेक हो गया। यह नारी की श्रद्धा का प्रतीक है।

महारानी शान्तला जिनके यशोगान के प्रमाण कर्नाटक में भरपूर मिलते हैं, क्योंकि वही एक मात्र ऐसी महिला थी, जब महाराजा बिट्टदेव ने वैष्णव धर्म अपनाया तो उस महारानी शान्तला ने अकेले जैन धर्म पर दृढ़ आस्था बनाए रखी और देव, शास्त्र और गुरु के चरणों में अपना जीवन बिताया।

१० वीं शताब्दी के अंतिम चरण में दक्षिण भारत में दान चिंतामणि अतिमव्वे का नाम अत्यंत प्रखरता से उद्दीप्त होता है, अपनी विशिष्ट साधना, संयम और त्याग के कारण इनका गौरव पद स्थान है। रन्न जैसे प्रसिद्ध महाकवि को आश्रय देकर भक्ति और साहित्य के प्रचार में प्रोत्साहन देने से जैन महिलाओं में दान चिंतामणि की प्रतिष्ठा हुी।

राजा श्रेणिक के ''सम्यक्त्व लाभ'' एवं तीर्थंकर प्रकृति के बंध में रानी चेलना की भूमिका को ही प्रथम श्रेय जाता है।

नेपोलियन बोनापार्ट ने नारी की महिमा को बताते हुए कहा था कि मुझे एक योग्य माता दे दो, मैं तुम्हें एक योग्य राष्ट्र दूँगा।

जैन परम्परा में नारी को बहुत महत्व दिया गया है। नारी के उत्थान के लिये तीर्थंकरों ने नारियों को अपने समवशरण में अलग स्थान दिया है, उनके उत्थान का उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त किया। जहाँ नारी का सम्मान नहीं वह देश, राष्ट्र, समाज उन्नति नहीं कर सकता। नारी के बिना मानव विकास असंभव है। नारी सृष्टि का आधार है, नारी करूणा की मूर्ति है।

भारतीय मनीषा में नारी के छह रूप बताये गये हैं-

नारी का सबसे पहला रूप है-

१) कन्या - कनया मांगलिक कहा गया है। किसी भी मंगल कार्य में कन्या भोज कराने की भारतीय परम्परा है, उसे उभय कुलवर्धिनी कहा गया है।

२) पत्नी - आदर्श पत्नी के पाँच गुण बताए गए हैं -

क) जो पति की सहायिका, सहचारिणी और सहभागिनी हो।

ख) जो अपने पति के जीवन को सुखी करे।

ग) जो अपने पति के जीवन को उच्च बनाए।ॉ

घ) जो पति के दोषों को नम्रता से सुधारे।

ड़) जो अपने पति के सुख-दुख में बराबर सहायक हो।

(३) अर्धांग्नि - जो अपने पति के दिल पर राज करे। जो अपने समर्पण

और पति-परायणता से अपने दिल के दिल को जीत ले।

(४) जननी /माँ - माँ के रूप में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका है।

(५) भार्या - भार्या वह होतीहै जो अपने परिवार और बच्चों का भरण पोषण करती हैं।

(६) कुटुम्बिनी - अपने प्रेममय व्यवहार और कार्य कुशलता के कारण वह पूरे परिवार का संरक्षण करते हुए कुटुम्बिनी बनकर अपने छठवें रूप को पूर्ण करती है।

मरणकण्डिका ग्रन्थ में नारी के ग्यारह नाम बतलाए गये हैं -

स्त्री - दोषों का आच्छादन करने से यह स्त्री कहलाता है।

वधु - वध करने से वधु कहलाती है।

प्रमदा - प्रमाद की बहुलता के कारण प्रमदा कहलाती है।

नारी - 'न अरिः इति नारी' पुरुष के लिये इससे बढ़कर अन्य कोई शत्रु नहीं है अतः नारी कहलाती है।

विलया - पुरुष को देखकर विलीन हो जाती है/छिप जाती है इसलिये उसे विलया कहते हैं।

कुमारी - पुरुष के कुत्सित मरण का उपाय करने से कुमारी कहलाती है।

भीरु- धर्म कार्य से डरती है इसलिये भीरु कहलाती है।

महिला - महादोष लाती है इस कारण महिला कहलाती है।

अबला - हृदय बल नहीं रखती इस कारण अबला कहलाती है।

दोषा - प्रीति पूर्वक पाप सेवन करने से दोषा कहलाती है।

ललना - खोटे आचरण में लगी रहती है अतःललना कहलाती है।

शीलवती नरियाँ - मनुष्यों से नहीं देवों से भी पूज्यता प्राप्त कर लेती हैं। शील के प्रभाव से अग्नि का जल होना, सर्फ का हार हो जाना, वज्र के फाटक खुल जाना इत्यादि उदाहरण मात्र कल्पनाएँ नहीं हैं, सच है। जो नारियाँ पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत पालन करती हैं, व्रत प्रतिमा आदि व्रतों से अपने शरीर को अलंकृत करती हैं, क्षुल्लिका-आर्यि का बन जाती हैं , वे महिलाऐं ब्राम्ही और सुंदरी के समान सर्वजनों में पूज्य हो जाती हैं। आज भी चंदनबाला, अनन्तमति जैसी

कन्याऐं हैं, सीता, मैना सुंदरी, मनोरमा जैसी पति भक्ता हैं, चेलना जैसी कर्तव्य परायणा हैं और ब्राम्ही, सुंदरी के पद चिन्हों पर चलने वाली आर्यिकाएँ हैं, हमारी बहनों को उनसे शिक्षा लेनी चाहिए।

प्रतिभास्थली - प्रतिभास्थली जैनाचार्य १०८ विद्यासागर जी महाराज की असीम कृपा और दूरदृष्टि से पल्लवित पुष्पित व फलित भारत भर में अनूठा अद्बितीय कन्या आवासीय शिक्षण संस्थान है। यहाँ शिक्षा अर्थोपार्जन के साधन नहीं अपितु ज्ञान-दान की पावन क्रिया है। यहाँ बाल ब्रह्मचारिणी विदूषी, प्रशिक्षित, शिक्षिकायें, कन्याओं के उज्जवल भविष्य के निर्माण हेतु अपनी निस्वार्थ सेवायें अहर्निश प्रदान कर रही हैं। सी.बी.एस.ी. मान्यता प्राप्त यह संस्थान आज के आधुनिक परिवेष में प्राचीन गुरुकुलों की स्मृति को पुनः जीवंत कर रहा है।

परम पूज्य संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महामुनिराज द्वारा दीक्षित १७२ आर्यिकाएँ एवं लगभग ५०० बाल ब्रह्मचारिणी बहनें मोक्षमार्ग पर अग्रसर हैं।

''नारी'' नाम संग्राम का, करती ना विश्राम।
बेटी बहन-हैं ''तीर्थ'' तो माँ है ''चारों धाम''॥

❍❍❍

आचार्य श्री विद्यासागर एवं उनके चिंतन में जैन धर्म

ब्र. राजेश, टड़ा

दिगम्बर जैन धर्म अनादि काल से प्रवाहमान हैं। इसी धर्म के साधक दिगम्बर मुनि हैं जो प्राकृतिक जीवन जीते हैं। जैन साधु को पाकर प्रकृति भी मुस्कुराती हैं , अपने आपको धन्य करती है। उनमें वर्तमान के एक श्रेष्ठ साधक आचार्य गुरुदेव श्री विद्यासागरजी हैं। जो अपनी आत्म साधना में बहुत कठोर है। जो अपने तन पर रात्रि में चटाी भी नहीं लेते हैं एवं आचार्य वट्टकेर स्वामी ने मूलाचार ग्रन्थ में कहा है। मुनि के शयन के लिए चार आसन है -

१. भूमि शयन (खेत की भूमि) २. शिला (पाषाण खण्ड)

३. तखत या पाटा (काष्ठ का) ४.सूखी घास

किन्तु ये संत सूखी घास पर भी शयन नहीं करते हैं।

आचार्यश्री के चिंतन में जैन धर्म - गुरुदेव कहते हैं जैन धर्म वकालत नहीं करता बल्कि जो अनेक वकील अपने-अपने तर्क लेकर आते हैं उनका सही-सही निर्णय देने वाला न्यायाधीश(जज) के समान है **जैन धर्म**, और वकील अन्य धर्म के समान है। आचार्यश्री की दृष्टि में जैन धर्म पूर्णतः वैज्ञानिक धर्म है, आपको सूर्य स्नान, वायु स्नान करना हो तो आप पूर्णतः नहीं कर सकते क्योंकि आप वस्त्र से रहित है पर दिगम्बर मुनि वस्त्रों से रहित है वह इनका पूर्णतः लाभ लेते हैं।

भू शयन जो कि एक मूलगुण हैं, खेत आदि के जमीन पर शयन करना, क्योंकि मिट्टी में अनेक गुण होते हैं जो शरीर की गर्मी को अपने में खींच लेती हैं एवं शरीर में पृथ्वी तत्त्व ज्यादा हो तो वह उसे खींच लेती हैं एवं पृथ्वी तत्त्व कम हो वह शरीर को प्रदान करती है किन्तु सवस्त्री को नहीं निर्वस्त्री को।

पैदल विहार करने से अनेक प्वाइंट स्वतः पैर के दबते हैं। जिससे शरीर स्वस्थ रहता है।

आचार्यश्री की दृष्टि में जैन धर्म सर्वोदयी धर्म है। जिसमें सभी जीवों के उत्थान की बात कही जाती है एकेन्द्रिय से लेकर के पंचेन्द्रिय तक के सभी जीवों के उत्थान एवं संरक्षक की बात जैन धर्म में कही गी है।

जैन दर्शन का सिद्धांत है कि प्रत्येक आत्मा में शक्ति रूप से परमात्मा बनने की क्षमता विद्यमान है, वर्तमान में भले ही जीव कर्मोदय के कारण अपनी शक्ति को पहचानने में और प्रगट करने में असमर्थ है लेकिन उसे श्रद्धा रखनी होगी कि इस शरीर में आत्मा विद्यमान है। जैन दर्शन में स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि जैसे लकड़ी में अग्नि, पाषाण में सोना, दूध में घी, शक्ति रूप से विद्यमान है वैसे ही इस शरीर में आत्मा विद्यमान है। आचार्यश्री कहते हैं कि जो इस प्रकार का श्रद्धान रखके रत्नत्रय को अंगीकार कर लेता है वह

एक दिन आत्मा से परमात्मा अवश्य बन जाता है। जैन धर्म किसी जाति से संबंध नहीं रखता बल्कि यह जीव की परिणति से संबंध रखने वाला है। जिन्होंने इन्द्रिय, मन, कषाय आदि को जीत लिया है उन्हें जिन कहते हैं एवं जो जिन की उपासना करने वाले होते हैं वह जैन कहलाते हैं। इसमें जाति का कोी प्रतिबंध नहीं रहता। जाति, कुल, क्षेत्र, व्यक्ति आदि से बंधकर चलने वाला धर्म, कभी सर्वोदयी नहीं हो सकता। और सर्वोदयी हुए बिना प्राणी मात्र का कल्याण नहीं कर सकता। इसी पवित्र भावना को लेकर अमरकंटक में बन रहे तीर्थ क्षेत्र का नाम ही सर्वोदय तीर्थ क्षेत्र के नाम से रखा (आचार्यश्री ने) एवं सभी प्राणियों की लौकिक भलाी एवं कल्याण हो इस भावना से पशुओं के संरक्षण के लिए गौशाला निर्माण हेतु आशीर्वाद दिया बच्चियों को नैतिक पतन से बचाने के लिए ज्ञानोदय विद्यापीठ प्रतिभा स्थली का आशीर्वाद दिया, व्यक्ति रोग से मुक्त होकर धर्म ध्यान कर सके इस हेतु सम्यक्‌दर्शन की अनुकम्पा को रखते हुए भाग्योदय तीर्थ सागर को आशीर्वाद दिया। गृहस्थ का दानधर्म पलता रहे इस हेतु पुराने जिन मंदिरों का जीर्णोद्धार एवं नवीन तीर्थों का निर्माण हो ऐसी भावना सतत गुरुदेव के हृदय में बनी रहती है। आचार्यश्री के उद्‌बोधन में हमेशा अहिंसा धर्म का पालन हो ऐसी प्रेरणा मिलती है, जो कि जैन दर्शन का मुख्य सिद्धांत है। आचार्यश्री अहिंसा, अपरिग्रह एवं अनेकांतवाद को ही जैन धर्म की रीढ़ मानते हैं। एकांत पक्ष का, हिंसक कार्यो का, अधिक परिग्रह रखने का गृहस्थों को निषेधात्मक उपदेश देते हैं।

आचार्यश्री की दृष्टि में जैन दर्शन ऐसा रसायन है जिसे, जिस किसी भी पर्याय में जीव ग्रहण करें तो उसका कल्याण होना ही है इसलिए कल्याण के इच्छुक जीव को धर्म की शरण अवश्य स्वीकार करना चाहिये, देश एवं राष्ट्र की उन्नति अहिंसा धर्म पर ही आधारित है। आज देश में मांस निर्यात हो रहा है जो कि धर्म एवं राष्ट्र के लिए एक कलंक है देश में होने वाली हिंसा को अहिंसा के माध्यम से भ्रष्टाचार को अपरिग्रह के माध्यम से एवं विपरीत मान्यताओं को अनेकांत के माध्यम से समाप्त किया जा सकता है। सारे दर्शनों

में जीने की कला सिखाी गी है लेकिन जैन दर्शन ऐसा ही है जिसमें मरने की भी कला सिखाी गी है - आचार्य श्री हमेशा कहते हैं कि ''मरण ऐसा हो कि सुमरण बन जाये''।

जैन दर्शन भक्त को भक्ति के माध्यम से भगवान बना देता है। अन्य धर्म तो भक्त और भगवान का भेद रखते हैं लेकिन जैन धर्म भक्त को भगवान बना देता है। आचार्यश्री के अनुसार जैन धर्म में रूढ़िवादियों या अंधविश्वास का कोईं स्थान नहीं हैं, इसलिए वो तंत्र-मंत्र की क्रियाओं से हमेशा दूर रहते हैं एवं अपने शिष्यों को दूर रखते हैं।

जैन धर्म मानव को महामानव, नर को नारायण बनाने की कला सिखाता है। गुरुदेव कहते हैं -

पराई पीर देखकर जिसकी आँखों से नीर बहता है।
सच मानिये उसके ही हृदय में महावीर रहता है ।।

आचार्यश्री ने मूकमाटी महाकाव्य में कहा, 'धम्मोदया विशुद्धो' हमेशा कहते हैं जैन धर्म दया प्रधान धर्म है जो दया करता है दुनिया उसको याद करती है। दया का विलोम याद है, दया धर्म से ही अहिंसा व्रत का पालन होता जाता है।

जैन धर्म जबरजस्ती का धर्म नहीं हैं अपितु जबरजस्त धर्म है, जिस प्रकार सूर्य उगता है सारे जगत को प्रकाशित करता है, भेदभाव नहीं करता ठीक उसी प्रकार से जैन धर्म भी जातिवाद, पंथवाद से परे प्रत्येक आत्मा को परमात्मा बनाने की क्षमता रखता है। जैन धर्म में बदला लेने की भावना नहीं किन्तु बदलाव लाने की बात कही गी है -

आचार्यश्री हमेशा कहते हैं कि राष्ट्रपिता गांधी जी ने जैन धर्म के दो सूत्र के बल पर देश को आजादी दिलाई थी तो हम भी कर्मों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

❍❍❍

आचार्य श्री विद्यासागर जी-तत्त्वार्थ सूत्र अनुचिन्तन के अन्तर्गत सञ्ज्ञिनः समनस्काः २/२४

ब्र. अशोक भैया, (लिधौरा टीकमगढ़)

दुर्लभ गुरु मुख के वचन, दुर्लभ गुरु मुस्कान,
दुर्लभ गुरु आशीष है, दुर्लभ गुरु से ज्ञान।
दुर्लभ से दुर्लभ रहा, गुरु गरिमा गुणगान,
गुरु आज्ञा पूरण मिले, दुर्लभतम यह जान ।।

हम सभी का पावन सौभाग्य है कि इस काल मे निष्कलंक चर्या को प्रदान करने वाले संत शिरोमणि आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी महाराज का ५०वाँ संयम स्वर्णिम दीक्षा महोत्सव वर्ष मना रहे है। आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज संयम साधना के दैदीप्यमान सूरज है, जो स्व पर कल्याण के साथ संघ, समाज, साहित्य, संस्कृति और साधना मानव उत्थान के लिए मानवीय मूल्यों पर आधारित संस्कारों का बीजारोपण कर उसे पल्लवन और वृद्धिगंत कर रहे है। आपके संयममय उच्चतम साधनारत जीवन और त्याग तपस्या से भारत ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व आकर्षित है। आचार्य भगवन ने आचार्य कुन्दकुन्द भगवन के अध्यात्म सूत्रों को सिर्फ पढ़ा ही नहीं अपितु अपना जीवन तदरूप बनाया है तभी तो आचार्य कुन्दकुन्द भगवान की गाथाओं से आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज का जीवन प्रतिबिम्ब होता है -

जिनबिम्ब णाणमयं संजम सुद्धं सुवीयरायं च।
जं देई दिक्ख सिक्खा कम्मक्खय कारणे सुद्धा ।।१६।।

जो ज्ञानमय संयम से शुद्ध है, अत्यन्त वीतराग है तथा कर्मक्षय के कारणभूत शुद्ध दीक्षा और शिक्षा देते है ऐसे आचार्य परमेष्ठी जिनबिम्ब हैं ।

गाथाकथित यह सभी लक्षण आचार्य भगवन में परिलक्षित होते है। वर्तमान युग आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी के नाम से युगों युगों तक जाना जायेगा क्योंकि आचार्य श्री ने मानव जीवन व देश के विकास के लिए समय समय पर अपने प्रवचनों के माध्यम से अमूल्य सूत्र प्रदान किए जैसे -

- भारत में भारतीय शिक्षा पद्धति अंग्रेजी हटाओ हिन्दी लाओ

- स्वाबलम्बन, स्वरोजनगार का साधन हथकरघा

- करूणा और जीवदया की जीवन्त मिशाल, दयोदय गौशालायें

- बेटी बचाओं-बेटी पढ़ाओं सरकार के इस अभियान को मजबूती प्रदान करने का सशक्त साधन-प्रतिभा स्थली

- आरोग्यता हेतु भाग्योदय, दिव्यांगो को सबल बनाने के लिए सर्वोदय तथा विदेशी गुलामी के

अहसास से मुक्त होने के लिए इंडिया नहीं भारत

आचार्य भगवन के लिए इंडिया नहीं भारत किन्तु उच्चतम शिक्षा प्राप्त हजारों बाल ब्रह्मचारी युवक और युवतियों को मोक्षमार्ग का पथिक बनाकर साथ ही साथ दीक्षा पूर्व इन उपक्रमों को संचालित करने के लिए अपना मंगल आशीष प्रदान किया।

हम भी आचार्य श्री के स्वर्णिम दीक्षा महोत्सव वर्ष पर उनके पावन श्री चरणों में आरोग्यता तथा दीर्घायु की शुभकांक्षाओ के साथ कोटि कोटि नमोस्तु करते हैं।

गोम्मटेश्वर भगवान बाहुबली के महामस्तकाभिषेक तथा आचार्य गुरु श्री विद्यासागर जी महाराज के स्वर्णिम दीक्षा महोत्सव वर्ष पर आयोजित संगोष्ठी पर आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज तत्वार्थ सूत्र अनुचिन्तन के अंतर्गत तत्वार्थ सूत्र द्वितीय अध्याय सूत्र नं. २४

संज्ञिनः समनस्काः - इस सूत्र पर अपना आलेख प्रस्तुत कर रहा हूँ। आलेख प्रस्तुत करने के पूर्व एक प्रसंग आपको अवश्य बताना चाहता हूँ कि अतिशय क्षेत्र पपौरा जी में आचार्य श्री केचरणों में जब इस संगोष्ठी के विषय में जानकारी दी तब आचार्य श्री जी ने बहुत उल्लसित भाव से कहा- चलो अच्छा है।

इस संगोष्ठी के माध्यम से गुल्लिका यज्जी के मंगल अभिषेक के कलश की तरह मेरे चिन्तन के कलश के द्वारा अभिषेक सम्पन्न हो जाऐगा यह वाक्य

सुनकर बाहुबली भगवान के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा तथा आचार्य श्री उमास्वामी महाराज के महानतम ग्रंथराज तत्त्वार्थ सूत्र जिस पर अभी तक आचार्य श्री के द्वारा विगत अनेक वर्षो के पयुर्षण पर्वराज पर चिन्तन बिन्दु आगम सापेक्ष उन्हीं सूत्रों में गर्भित नये अर्थ संघस्थ साधक व विद्वज्जगत को प्रदान किए गये हैं।

इस ग्रंथराज पर अनेक टीकाग्रन्थ रचे गये है। आचार्य समन्त भद्र स्वामी ने गंधहस्ति महाभाष्य (अप्राप्त) पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थ सिद्धि, अकलंक देव ने तत्त्वार्थ राजवार्तिक, विद्यानन्द स्वामी ने तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक अलंकार भास्करनंदी ने तत्त्वार्थ वृत्ति, श्रुतसागराचार्य ने श्रुतसागरी टीका, अमृत चन्द्राचार्य ने तत्त्वार्थसार पं. सदासुख दास जी ने अर्थ प्रकाशिका तथा वर्तमान में अनेक साधु/ आर्यिकायें/विद्वानों ने अनेक टीकायें लिखी हुई हैं। इन सभी साधकगण और विद्वानों के द्वारा तत्त्वार्थ सूत्र पर लिखे गये समीचीन/ प्रामाणिक/सारभूत विषयों की उपलब्धता के साथ साथ आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी महाराज के द्वारा तत्त्वार्थ सूत्र पर दिए गये चिन्तन बिन्दु समीचीनता/ प्रामाणिकता/ सारभूतता के साथ साथ विद्वज्जगत को इन सूत्रों पर दिए गये गांभीर्य चिन्तन से विचार करने की नई दिशा प्रदान करते हैं, जिससे तत्त्वार्थ सूत्र ग्रन्थराज की गागर में सागर वाली युक्ति चरितार्थ होती है, आचार्य भगवन की महान अनुकम्पा है, जो इन सूत्रों में निहित गूढार्थ को समय समय पर सभी के सम्मुख रखकर चिन्तन के नये आयाम प्रदान करते हैं।

आईये, तत्त्वार्थ सूत्र ग्रन्थराज के संज्ञिनः समनस्काः २/२४

उदाहरण के तौर पर जिस प्रकार आंखों की रोशनी कम होने पर हम डॉक्टर को चेककप कराकर नम्बर लेते है तथा चश्मा बनवाते हैं लेकिन चश्मा बनने के १५-२० दिन या एक महीने तक वह चश्मा लगाने के बाद भी उसको आंखो पर सेट होने के लिए समय लगता है अन्यथा चश्मा लगाकर चलने से गिरने का भय रहता जमीन ऊंची नीची दिखांई देती है लेकिन जब चश्मा सेट हो जाता है तथा पढ़ना लिखना चलना सभी कार्य सहजता से कर सकते हे। अथवा अच्छे से अच्छी कम्पनी का भी पादत्राण (जूता) पहनने के बाद

अनेक दिनों तक वह काटता है अथवा पैरों में सेट नहीं होता लेकिन बाद में वही पादत्राण चलने में सहयोगी बनता है। ठीक इसी प्रकार आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी महाराज के द्वारा दिया गया मौलिक आगम प्रमाणिक और तक सहित यह चिन्तन प्रथम बार मौलिक आगम प्रमाणिक और तर्क सहित यह चिन्तन प्रथम सुनने पर आपको असहज या अटपटा महसूस हो सकता हे। लेकिन मुझे विश्वास है कि इस विषय को बार बार पढ़ने सुनने या गुरु चरणों पहुंचकर अपने मन को समाधित करने से आपको यही विषय रूचिकर प्रामाणिक और सहजतम महसूस होगा।

इस सूत्र पर आचार्य श्री का विशेष चिन्तन आपके समक्ष रखूँ, आपसे अपेक्षा होगी, अपनी पूर्व धारणा को विराम देते हुए सम्पूर्ण विषय को धैर्य पूर्वक सुनें, इसमें प्रश्न उठना स्वाभाविक है, और उठना भी चाहिए, पर सम्पूर्ण विषय वस्तु सम्मुख आने के बाद

सञ्ज्ञिनः समनस्काः (तत्त्वार्थसूत्र अ.२ सूत्र २४)

इसका क्या अर्थ होता हे, इसकी सार्थकता क्या है, संज्ञी जीव मन सहित होते है। यह अभी तक का सर्व विदित अर्थ हैं। आचार्य श्री का प्रश्न मन सहित जो जीव होते है वो संज्ञी होते है उसमें क्या बाधा है ? जो मन वाले होते है वो-वो संज्ञी होते है ऐसी व्याप्ति नहीं बना सकते किन्तु जो जो संज्ञी होते है वो अवश्य मन वाले होते है यह अर्थ षटखण्डागम आदि ग्रंथो के अनुयोग द्वार में वर्णित है।

आगे बढ़ने से पहले हमे मन और संज्ञी की परिभाषा समझ लेना आवश्यक है।

द्रव्य मन- पुद्‌गल विपाकि कर्मोदया पेक्षं द्रव्य मनः पुदगल विपाकी कर्मोदय की अपेक्षा द्रव्य मन होता है।

भाव मन- वीर्यान्तरायनो इंद्रिया वरणक्षयापशमापे क्षयात्मनो विशुद्धि र्भावमन- वीर्यान्तराय और नो इंद्रियावरण कर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा से आत्म विशुद्धि रूप भावमन होता हैं।

तेन मनसा सह वर्तन्त इति समनस्काः। न विद्यते मनो येषा त इमे

अमनस्काः ॥ एवं मनसो भावाभावाम्यां संसारिणो द्विविद्या विभज्यन्ते समनस्कामनस्का इति ॥

उस मन के साथ रहने वाले समनस्क है जिनके मन नहीं रहता वे अमनस्क है इस प्रकार मन के भाव और अभाव की अपेक्षा संसारी जीवों के दो भेद किए गए है, समनस्क, अमनस्क।

सर्वार्थसिद्धि मूल २/११/७२

यह भेद संज्ञी-असंज्ञीपने की अपेक्षा से हैं, लेकिन जहां मन तो है परन्तु संज्ञी-असंज्ञीपना नहीं है, वहां बंध की व्यवस्था कैसे है यह चिन्तन का विषय हैं।

संज्ञी असंज्ञी यह भेद १२ वें गुणस्थान तक चलता है १३ वें गुणस्थान वर्ती सयोग केवली को संज्ञी असंज्ञी भेदाभावात् (णो सण्णि णो असण्णि) कहा हे। अर्थात वे संज्ञी और असंज्ञी इन दोनों भेदों से ऊपर उठ जाते हैं। प्रश्न यह है कि १३ वें गुणस्थान में कौन सा मन स्वीकार किया जाए द्रव्य मन या भाव मन? अनेक विद्वान कहते है। १३वें गुणस्थान में मन मान ले तो द्रव्यमन मान लो तब आचार्य श्री के प्रश्न है-

- द्रव्यमन की क्या आवश्यकता है ?
- क्या द्रव्य मन के द्वारा कुछ कार्य होता है वहां पर ?
- यदि नहीं होता तो वहां मनोयोग जो बताया है वह केवल द्रव्यमनो योग है क्या ?

मनो वर्गणाओं का आलम्बन करने योग्य आत्म प्रदेशो के परिस्पदंन रूप भाव मनोयोग के बिना द्रव्य मनोयोग नहीं हो सकता।

विशेष :- अकेला द्रव्यमन वहां पर नहीं रहता हैं इसलिए इस यात्रा को सार्थक बनाने के लिए द्रव्य मनोयोग वहां पर है, इसलिए वे संज्ञी हैं। और संज्ञी एक प्रकार से १२वें गुणस्थान तक ही चलते है इसके बाद उसके असंज्ञी संज्ञी कोई भी भेद नहीं रहते है आगे के जितने भी योग सहित है वहां मनोयोग सहित काम होते हैं। अर्थात् भाव मनोयाग वहां पर होता है। भाव मनोयोग एक प्रकार से मनः परिणाम के अभिमुख होने के कारण उस आत्मा में मनोयोग

होता हैं।

- वह मनोयोग क्या है ? उसकी अभिमुखता क्या है ?

ऐसा पूछने पर-विवेचन करने से पूर्व में जो दिव्यध्वनि के माध्यम से जो तत्व का विवेचन किया जाता है उससे पूर्व में वह अंतमुहुर्त तक उससे सम्मुख रहकर के कार्य करते हैं ।

अथवा- १३ वें गुणस्थानवर्ती मनोयागी है कि नहीं ? हैं। उनके पास २ प्रकार के मनोयोग पाए जाए हैं ।

१. सत्य मनोयाग २. अनुभय मनोयोग

इसी प्रकार २ प्रकार के वचन योग पाए जाते हैं ।

१. सत्य वचन योग २. अनुभय वचन योग

जो ये बता देते है, कि उनके परिणामों में भिन्न भिन्नता विद्यमान रहती है, वही भाव मनोयोग हैं।

जिस समय अनुभय मनोयोग होता है, उस समय जिस पदार्थ का विवेचन अनुभय योग के साथ ही होता है तो उस समय अनुभय मनोयोग के भेदक परिणाम होते है, तो बाहर अनुभय मनोयोग के योग्य वर्गणाऐं आलम्बन लेती जाती है, ये वर्गणाओं का आलम्बन लेना बाहर से हुआ, भीतर से अनुभय मनोयोग भाव हुआ उस भाव मनोयोग के बिना साता का आस्रव नहीं होता। साता के आस्रव के लिए योग कारण होता है। योग वह प्रत्यय है तो भाव मनोयोग रूप होता है, भाव मनोयोग आत्मा के प्रदेश स्पंदात्मक होता है उसे साथ साथ प्रकार से विवेचन होते है। १. सत्य मनोयोग के द्वारा २. अनुभय मनोयोग के द्वारा ये दोनों योग है। ये योग होने के कारण वहां पर साता का आस्रव होता है, और इन दोनों का अभाव होने पर वहां साता का आस्रव नहीं हो सकता।

१३ वें गुणस्थान में सत्य और अनुभय वचनयोग भी होते है लेकिन जब ये दोनों रहेगे, तब सत्य व अनुभय मनोयोग नहीं रहेगे। कारण सयोग केवली के एक समय में एक ही योग होता हैं।

भाव मनोयोग वहां पर विद्यमान है जो कि आस्रवात्मक है , आत्मा का

यही भावात्मक योग निमित्त हुआ इस निमित्त के बिना वह कर्म वर्गणाऐं कर्म के रूप में परिणत नहीं होगी। कर्मों का साता रूप आस्रवित होना यह द्रव्यास्रव हुआ जो कि उपादान रूप है।

इस प्रकार सत्य व अनुभय मनोयोग के साथ जिस समय उनका (१३वें गुणस्थानवर्ती) परिणमन चलता है उस समय तत्संबधी योगों के विवेचन का प्रकरण आता है अंतमुर्हुत तक। फिर इसके उपरांत नहीं आता। इस प्रक्रिया में हम भाव मनोयोग नहीं मानते है तो ये संभव नहीं, क्योंकि इसको विवेचन करने के लिए उनके पास संज्ञी व असंज्ञी पन तो है नहीं समाप्त हो चुका, अतः संज्ञी पना व मनोयोग पृथक पृथक है यह अवधारित कर लेना चाहिए।

अनाहारक अवसथा में साता का आस्रव कैसे ?

इसी प्रकार आनाहरक अवस्था में ये दोनों योग (मन, वचन) योग नहीं होते फिर भी साता का आस्रव होता हे।

क्या मनोयाग भी नहीं होता ? हाँ मनोयोग भी नहीं। समुद्रघात के समय प्रतर के दोनों और लोकपूरण इन तीनों समयों में अनाहारक अवस्था रहती हैं। फिर भी साता का आस्रव होता हैं।

साता का आस्रव होता है कि नहीं ? हाँ होता हैं।

वहाँ भाव का योग है अर्थात् पुरुषार्थ चल रहा हैं तो वह भाव मनोयोग के बिना चल रहा है क्या ? जिस समय सत्य मनोयोग भी नहीं है अनुभय मनोयोग भी नहीं है सत्य व अनुभय मनोयोग भी नहीं है। सत्य व अनुभय वचन योग भी नहीं है। काय योगों भी आहारक काय योग आदि नहीं है- क्योंकि वहां पर नौकर्म रूप वर्गणाओं के आस्रव करने के जा योग थे वे समाप्त हो गए ये आहारक दशा में ही होते है अनाहारक दशा में नहीं होते ।और अनाहारक दशा में द्रव्य मन होता नहीं, समाप्त हो गया तो उस समय साता का आस्रव कैसे कराएगे ? बताओं ?

क्योंकि आप लोगों ने भाव मन तो माना नहीं ? अगर आप कहते है कि द्रव्य मन है तो हमें बताऐं कि ऐसा कहा लिखा है कि अनाहारक अवस्था में केवल द्रव्यमन है।

तो फिर भाव काय योग होगा ? क्यों नही होगा ।क्योंकि इसमें आत्म पुरुषार्थ हो रहा है । चूंकि शरीर नाम कर्म का उदय होते हुए भी नोकर्म वर्गणाओं का आस्रव कराने वाले योग अलग होते हैं। वो आहारक दशा में होते हैं।

हाँ अनाहारक दशा में शरीर नामकर्म का उदय तो है लेकिन कार्माण शरीर नामकर्म का उदय हैं। आत्मा का स्पंदन तो हो रहा है कि नहीं ? हो रहा है (द्रव्य थोड़े ही है अकेला फिर द्रव्य के माध्यम से ही आस्रव होना चाहिए यह आवश्यक हो जाऐगा)

भाव काय योग से आस्रव होगा- आस्रव जो होता हें एक भावास्रव दूसरा द्रव्यास्रव। और ये सभी जानते हैं कि द्रव्यास्रव होगा इसी का नाम योग हैं। तो भावास्रव आत्मक जो योग है जिसके द्वारा कर्मो का आस्रव हो रहा है, वह भाव मनोयोग के रूप में है भाव वचन योग रूप में है उभय, अनुभय, रूप में है, सत्य रूप ये हैं। यह सारा का सारा विवेचन संज्ञिनः समनस्काः सूत्र पर आधारित है।

सर्वज्ञत्व की सिद्धि - कुछ लोग कहते है कि हमारे भगवान तो उस समय पारिणामिक भाव के समान ही भाव करते हैं। यह कहना उचित है, क्या ?

नहीं यह बिल्कुल गलत है, परिणामिक भाव यदि मानते है तो कर्म निरपेक्षक की अपेक्षा पारिणामिक सिद्धावस्था मपि वसते ऐसा कहे सिद्धावस्था में भी ये पारिणामिक भाव मान लो। भगवान तो कुछ करना नहीं चाहते ये तो ठीक है, करते है कि नहीं ये बताओं ? वहां भाव करते है कि नहीं ?

ये बताओ- वहां भाव नहीं करते तो द्रव्यास्रव हो कैसे रहा ये बताओ, बिना भाव के।

उपादान के बिना भी निमित्त काम करता है क्या ?

जैसे आपके यहां निमित्त कार्य हीं नहीं करता, अब उपादान के बिना भी करने लगा।

अब विरोध देगे हम, द्रव्यासव होता है स्पष्ट है कि भावास्रव वहां पर है, भावास्रव है तो अंतमुर्हुत में सत्य मनोयोग, अनुभय मनोयोग भिन्न भिन्न

होगा। इसी प्रकार वचन योग के बारे में भी ये सारे के सारे विवेचन उसी प्रकार बन सकते हैं।

अब भीतर भाव मनोयोग है तो बाहर द्रव्यास्रव रूप जो होगा वह मनोवर्गणाएं आयेगी यह भी सिद्धान्त इसी के ऊपर आधारित है।

काय वाङ्मन कर्म योगः तः सूत्र (६/१)

स आस्रवः तः सूत्र (६/२)

शरीर वचन और मन की क्रिया का नाम योग है वहीं आस्रव है।

आत्मप्रदेश परिस्पन्दो योगः

आत्मा के प्रदेशों का परिस्पन्द हलन चलन योग है। वह निमित्तों के भेद से तीन प्रकार का हैं।

काययोग :- वीर्यान्तरायक्षयोपशमसद्भावे सति औदारिकादि सप्त विधकाय वर्गणान्यतमालवंनापेक्ष आत्मप्रदेशपरिस्पन्दः काययोगः। वीर्यान्त राय कर्म के क्षयोपशम के होने पर औदारिक आदि सात प्रकार की काय वर्गणाओं में से किसी एक प्रकार की वर्गणा के आलम्बन से होने वाला आत्म प्रदेश परिस्पन्द काय योग कहलाता है।

वचनयोगः- शरीर नाम कर्मोदयापादित वाग्वर्गणालम्बने सति वीर्यान्तराय मत्य क्षराधावरण क्षयोपशमापादिताभ्यन्तर वाग्लब्धि सान्निध्ये वाक्परिणामामिमुखस्यात्मनः प्रदेशपरिस्पन्दो वाग्योगः ॥ शरीर नाम कर्म के उदय से प्राप्त हुई वचन वर्गणाओं का आलम्बन होने पर तथा वीर्यान्त राय और मत्यक्षरादि आवरण के क्षयोपशम से प्राप्त हुई भीतरी वचन लब्धि के मिलने पर वचन रूप पर्याय के सन्मुख हुए आत्मा के होने वाला प्रदेश परिस्पन्द वचनयोग कहलाता हैं ।

मनोयोगः- अभ्यन्तर वीर्यान्तराय नो इन्द्रि यावरण क्षयोपशमात्मक मनोलब्धि सन्निधाने बाह्य निमित्तमनोवर्गणा लम्बने च सति मनः परिणामामि मुखस्यात्मनः प्रदेश परिस्पन्दो मनोयोगः वीर्यान्तराय और नो इन्द्रियावरण के क्षयोपशम रूप आंतरिक मनोलब्धि के होने पर तथा बाहरी निमित्त भूत मनोवर्गणाओं का आलम्बन मिलने पर मनरूप पर्याय के सन्मुख हुए आत्मा के होने वाला प्रदेश परिस्पन्द मनोयोग कहलाता हैं ।

विशेष ध्यान देने योग्यः- क्षयेपि त्रिविध वर्गणापेक्षः सयोग केवलिन आत्मप्रदेश परिस्पन्दो योगो वेदितण्यः वीर्यान्तराय और ज्ञानावरण कर्म के क्षय हो जाने पर भी सयोग केवलों के जो तीन प्रकार की वर्गणाओं की अपेक्षा आत्म प्रदेश परिस्पन्द होता है वह भी योग हे ऐसा जानना चाहिए।

सर्वार्थ सिद्धि मूल ६/१/१४७ भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन ६११/२४४ सर्वार्थसिद्धि ग्रंथराज में आचार्य उमास्वामी जी ने मनः परिणामामिमुखस्यात्मनः प्रदेश परिस्पन्दो मनोयोगः तथा क्षयेपि त्रिविध वर्गणापेक्षः सयोग केवलिन आत्म प्रदेश परिस्पन्दो योगो वेदितव्यः यह कथन करके संज्ञिनः समनस्काः (२/२४) सूत्र में आचार्य श्री जी के द्वारा १३वें गुणस्थान मे भाव मनोयोग की सिद्धि हो जाती है। आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी महाराज ने इसी प्रसंग को उद्घृत करते हुए अपने चिन्तन को और दृढ़ता से पुष्पित किया मनः परिणामामि मुखस्यात्मनः तथा वाक्यपरिणामामि-मुखस्यात्मनः इत्यादि कहा है। ऐसी स्थिति में अमिभुख शब्दवता रहा है कि सामान्य जीव अभिमुख होकर के ही काम करते हैं जबकि केवल ज्ञान अवस्था में अभिमुख होकर के वे कार्य नहीं करते फिर भी कोई विवेचन के अभिमुख तो होते हैं , कोई विवेचना करना ही अथवा उस विवेचना के योग्य भूमिका बनाना हो (ये सही माने जाते हैं)

मनोयोग के समय में अंतमुर्हुत में सर्वज्ञ जो जीव है उनमें क्या होता है ? ये बताओं आखिर मनोयोग है कि नहीं ये बताओं ?

मनोयोग के अभिमुख होता है तो सत्यमनो योग के द्वारा वह विषय प्रस्तुत कर सकता है, यह अनुभय मनोयोग के साथ संभव नहीं क्योंकि इसका स्वरूप भिन्न है उसका स्वरूप भिन्न हैं। अनुभय मनोयोग का जो विषय बनेगा वो कैसा बनेगा ? हां हो सकता है संभावना आदि आदि। जो ये प्रस्तुति है ये अनुभय मनोयोग के काल में होती है अथवा वचन योग के काल में होते हैं। वह विषय दूसरा विषय नहीं बना सकता। दूसरे के द्वारा भी नहीं कराया जा सकता इसीलिए सत्य मनोयोग जब होगा तक अन्य मनोयोग व वचनयोग तो क्या माने एक साथ तो हो नहीं सकते।

तो कब ऐसा अवसर केवलि भगवान को प्राप्त होता है जो कि ये चार प्रकार

के योग में परिणत हो सकता है। वो द्रव्य मनोयोग का परिणमन है क्या ? ऐसा तो नहीं कह सकते उस समय जो वर्गणाओं का आना होता है वह द्रव्य मनोयोग कह सकते हैं। वचन योग कह सकते है किन्तु भाव के बिना यह द्रव्य नहीं हो सकता। हां द्रव्य कर्म जो हो रहा है द्रव्य योग। ये भाव मनोयोग, भाव वचन योग का कार्य है, यह नैमितिक है और वह निमितक यह सारे के सारे विवेचन सर्वज्ञत्व की दशा में भी किया हे। गणधर परमेष्ठी ने उसे ग्रंथ का रूप दे दिया।

क्षयेऽपिः- वीर्यान्तराय और ज्ञानावरण कर्म के क्षय होने के उपरान्त भी इससे यहां पर क्षय का यह अर्थ है कि एक मनोयोग और एक क्षायोपशमिक मन।

एक मनोयोग वह है जो मन संबंधी हो गया। एक क्षायोपशमिक मन हुआ वह भाव शुद्धात्मक होता है तो १२वें गुणस्थान तक क्षायोपशमिक भाव चलता है। फिर वीर्यान्तराय और नो इन्द्रियावरण कर्म का क्षयोपशम होना इसके लिए कारण है। तथा नो इन्द्रियावरण कर्म तथा वीर्यान्तराय कर्म के क्षय होने पर भी वह होता है। वह मनोयोगात्मक होता है। ऐसा तो मनोयोग हो तो उसमें यह आएगा किन्तु वह भाव मनोयोग तो है पर क्षायोपशमिकात्मक नहीं है।

द्रव्यमन से आस्रव मानने पर बाधा :- द्रव्यमन हमेशा बना रहता है क्या ? हाँ, ये हमेशा बना रहता है। ऐसी अवस्था में द्रव्यमन से आस्रव मानने पर आस्रव भी हमेशा होना चाहिए प्रत्येक अवस्था में योग भी हमेशा वो ही होना चाहिए।

लोग कहते है द्रव्य मन के द्वारा काम हो जाएगा तो फिर बताओं, द्रव्य मन से क्या काम करवाना चाहते हो,

१४वें अयोग केवली गुणस्थान में मन, वचन, कार्य वर्गणा के अबलम्बन से कर्मों के ग्रहण करने में कारणभूत आत्मा के प्रदेशों का परिस्पन्दन रूप योग क्रिया का अभाव होने से आस्रव का भी अभाव हो जाता हे। ऐसा है बिना भाव मन के आस्रव नहीं होता।

साता की स्थिति समयवर्ती होने पर भी अनुभाग में अंतर क्यों बादर काय

योग,बादर मनोयोग, बादर वचन योग सूक्ष्य काययोग, सूक्ष्म वचनयोग, सूक्ष्म मनोयोग, सूक्ष्म श्वासोच्छवास, बादर श्वासोच्छवास ये चार विषय सिद्धान्त के हैं । ये भाव क्या है ? इसमें सूक्ष्म क्या है ? बादर क्या है ? जिसके माध्यम से भिन्न भिन्न अल्पबहुत्व को लेकर साता के आस्रव निश्चित किए गए है। साता के आस्रव उनको भी हो रहे है, लेकिन उनको साता के साथ और सामान्य रूप से हम लोगों को जो साता का आस्रव हो रहा है उसमें बहुत अंतर है। प्रदेशों की अपेक्षा और अनुभाग की अपेक्षा से तथा स्थिति की अपेक्षा से भी हैं। यद्यपि एक समयवर्ती है। साता वेदनीय का स्थिति बंधसयोग केवली भगवान के लेकिन यह बात तो ठीक है स्थिति में तो ये ही हो सकता है। ११वें १२वें इत्यादि में किन्तु अनुभाग की अपेक्षा से उसकी प्रकृति में भी अंतर आ जाता है। ये विवेचन भाव मनोयोग के बिना केवल द्रव्यमन को लेकर चलेंगे तो आप विषय की सिद्धि नहीं कर सकते द्रव्यास्रव बिना भावास्रव के नहीं :-

सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती नाम तृतीय शुक्ल ध्यान की अवस्था में न मनोयोग रहता है न वचन योग रहता है न काय योग रहता है। बादरपन मिट जाते है, श्वासोच्छवास भी नहीं रहता है। केवल एक मात्र कायगत सूक्ष्मता रहती हे। उसी को सूक्ष्म काय योग कहा गया हैं। और सूक्ष्म काययोग जो कहा है उस समय सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति नामक तृतीय शुक्ल ध्यान होता हैं। तो सूक्ष्म काय योग होता हैं। तब आत्मा के प्रदेशों का परिस्पंदन बहुत सूक्ष्म रह जाता है। जैसे- एक लालटेन जलती है और उसकी बाती जो है उसको आप लोग तेज करके काम कर लेते है। उसके उपरांत मंद कर दो, यूं कर दिया, घुमाते घुमाते मंद करते करते प्रकाश बहुत थोड़ा सा रह जाता है। कभी बाती गिर भी जाती है नीचे, यहां गिराना नहीं फिर भी वह बुझाना भी नहीं वह थोड़ा सा टिमटिमाता टिम टिमाता रहता है उसी प्रकार सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती ध्यान के समय पर सूक्ष्म काययोग अवश्य रहता है। हां इतना सूक्ष्म है यह सारा का सारा विषय कि लगता हे द्रव्यमन काम कर रहा हैं। लेकिन भावास्रव के बिना द्रव्यास्रव को होना असंभव है।

भाव इंदिय से कार्य नहीं हो रहा, मनोयोग से कार्य हो रहा है। इसलिए

तो मन क्या वस्तु है पकड़ो इसको, संज्ञी नहीं है फिर भी मनोयोग है वो भी भावात्मक मनोयोग है, भावात्मक मनोयोग है तो द्रव्यात्मक मनोयोग है इसलिए तेषां कर्मः ऐसा कहा-

काय वाङ्मनः कर्म योगः स आस्रवः वहीं

आस्रव हैं भावात्मक हैं उसको आस्रव कहेंगे, द्रव्यात्मक है उसको आस्रव बाद में कहा जाता हे।

दिव्यध्वनि प्रायोगिक है या वैस्रिसिक :- केवली भगवान विवेचन करते है या अपने आप हो जाता है ? कोई कोई व्यक्ति कहते है केवली भगवान कुछ कहते नहीं किन्तु हो जाता है अपने आप ?

मै आपसे पूछना चाहता हूँ केवलि भगवान की वह दिव्यध्वनि प्रायोगिक है या वैस्रसिक ?

आपकी धारण के अनुसार केवलीं भगवान कुछ करते नहीं है अपने आप हो जाता है इससे दिव्य ध्वनि वैस्रसिक सिद्ध होती है यह हमने नहीं कहा आपकी धारणा हैं।

किन्तु आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की अनुसार दिव्य ध्वनि प्रायोगिक है, प्रायोगिक है तो उसमें पुरुषार्थ है। इसमें इच्छा मात्र नहीं है पुरुषार्थ है और वे पुरुषार्थ केवलज्ञान की विवक्षा में हो रहा है, इसलिए वह पुरुषार्थरत है इसमें इसलिए उसको क्षायोपशमिक नहीं कह सकते उसमें ज्ञानावरणी कर्म का क्षय ही हो चुका है नो इन्द्रियावरण कर्म का भी क्षय हो चुका है इसलिए क्षायोपशमिक नहीं होगा। क्या होगा, क्षायिक होने के उपरांत भी वह मनोयोग करता है और मनोयोग साकार माना गया है निराकार नहीं होता। वह पुरुषार्थ है इसलिए वैस्रसिक नहीं है। वैस्रसिक नहीं है इसलिए प्रायोगिक है इसलिए पुरुषार्थ नहीं है। इससे मनः परिणाम अभिमुखस्य आत्मनः तथा वाक परिणाम अभिमुखस्य आत्मनः इस वाक्य का अर्थ स्पष्ट हो जाता है, वचन परिणाम के योग्य अभिमुख हुआ, इसलिए वह वचन योग कहलाता है इसी प्रकार मनोपरिणाम के अभिमुख हुआ है इसीलिए उसको मनयोग कहते हैं ।

क्षयेपि - क्षय होने के उपरांत भी वहां कार्य होता रहता है। क्यों होता

रहता है ? क्योंकि वह पुरुषार्थरत् है अपने आप नहीं होता है।

यदि केवलि भगवान की दिव्य ध्वनि अपने आप होती है अर्थात् वैस्रसिक स्वीकार करते है तो न्याय का विषय पढ़ने वाला, पढ़ाने वाला या अन्य मत वाले लोगों के सामने आप दिव्यध्वनि की सिद्धि नहीं कर सकते है।

आप चुप रह जायेगे वह पूछेगा यह मनगणन्त विवेचन है आप लोगों का केवलि भगवान का तो कुछ मन मानते ही नहीं आप लोग, हां तो ये हो रहा हैं, तो कैसे हो रहा है, बताओं

आचार्य कुन्द कुन्द भगवान ने प्रवचन सार गाथा ९८ केवली भगवान की चर्या को सहज कहा हैं । इच्छा के अभाव में होते है। इसलिए हम उनको कथंचित सहज कह सकते है।

उनका चलना बोलना वह सहज नहीं , यह पारिणामिक भाव नहीं है। पारिणामिक भाव जैसे है पारिणामिक भाव इसलिए नहीं है, कि इसके पीछे पुरुषार्थ है कर्मो के योग है इसलिए नहीं है कि इसके पीछे पुरुषार्थ है कर्मो के योग है इसलिए वह नहीं हो सकता। तो यह पारिणामिक भाव नहीं, वैस्रसिक भाव नहीं, प्रयोगिक है। प्रायोगिक है यह पौद्गलिक नहीं है किन्तु पुरुषार्थ के ऊपर आधारित है। उसको प्रायोगिक बोलते है। पुरुष यानि वह आत्मा है।

इसके अतिरिक्त मन, वचन, काय तथा उपयोग का व्याघात का प्रकरण भी सिद्धांत ग्रंथो में प्राप्त होता है। इन विषयों से भी भावमनोयोग की सिद्धि सयोग केवली में देखी जा सकती हैं।

सयोग केवली किनका ध्यान करते है

णिहदधणधादि कम्मो पच्चक्खं सव्वभावतच्चण्हू।
णेयंतगदो समणो झादि कमटठं असंदेहो ।।१९७। प्रवचनसार

अर्थ :- १. मोह का सदभाव होने से तथा

२. ज्ञानशक्ति के प्रति बंधक का (ज्ञानावरणी कर्म का)

सदभाव होने से १. लौकिक जीव (छदमस्थ) तृष्णा सहित है, उसे पदार्थ प्रत्यक्ष नहीं है और , वह विषय को अवच्छेद पूवर्क (स्पष्टता से) नहीं जानता, इसलिए वह (लोक) अभिलाषित, जिज्ञासित और संदिग्ध पदार्थ

का ध्यान करता हुआ दिखाई देता है किन्तु केवली भगवान के धनघाति कर्म के नाश हो जाने के कारण

- मोह का अभाव हो जाने पर तथा
- ज्ञान शक्ति के प्रतिबंधक का अभाव हो जाने पर

१. जिनकी तृष्णा नष्ट हो गयी है

२. (जिनको) समस्त पदार्थों का स्वरूप प्रत्यक्ष है तथा (जिन्होंने) ज्ञेयों का पार पा लिया है, इसलिए भगवान सर्वज्ञ देव अभिलाषा नहीं करते, जिज्ञासा नहीं करते और संदेह नहीं करते, तब फिर (उनके) अभिलाषित, जिज्ञासित और संदिग्ध पदार्थ कहां से हो सकता है ? जबकि ऐसा है तब फिर वे क्या घ्याते है। (१९७) प्रवचनसार (१९७/४६२)

इसका उत्तर आचार्य कुन्दकुन्द भगवान ने इसी ग्रंथराज की अगली गाथा १९८ में दिया हुआ है, वे अव्याबाध सुख का ध्यान करते हैं, और अव्याबाध सुख सिद्ध परमात्माओं में पाया जाता है अर्थात् सयोग केवली भगवन सिद्ध परमात्मा का ध्यान करते हैं और यह बिना भाव मनोयोग दशा के संभव नहीं ।

केवली भगवान परम सौख्य का ध्यान करते है-

सव्वाबाध विजुत्तो समतसव्वक्खसोक्खणाणडढो।
भूदो अक्खातीदो आदि अणक्खो परं सोक्खं ।।१९८।।

जब यह आत्मा, जो सहज सुख और ज्ञान की बाधा का आयतन (स्थान) है (ऐसी) जो असकल आत्मा में असर्व प्रकार के सुख और ज्ञान का आयतन है, ऐसी इंद्रियों के अभाव के कारण स्वयं अतीन्द्रिय रूप से वर्तता है , उसी समय वह दूसरों को इन्द्रियातीत (इन्द्रिय अगोचर) वर्तता हुआ

१. निराबाध सहज सुख और ज्ञान वाला होने से सर्व बाधा रहित होता है, तथा

२. सकल आत्मा में सर्वप्रकार के (परिपूर्ण) सुख और ज्ञान से परिपूर्ण होने से समस्त आत्मा में समंत सौख्य और ज्ञान से समृद्ध होता है। इस प्रकार का वह आत्मा सर्व अभिलाषा जिज्ञासा और संदेह का असंभव होने पर भी अपूर्व और अनाकुल त्व लक्षण वाले परम सौख्य को ध्याता है, अर्थात् अनाकुलत्व संगत एक अग्र के संचेतन मात्ररूप से अवस्थित रहता है, (अर्थात्

अनाकुलता के साथ रहने वाले एक आत्मा रूपी विषय के अनुभवनप रूप ही मात्र स्थित रहता है) और ऐसा अवस्थान सहल ज्ञानानन्द स्वभावरूप सिद्धत्व की सिद्धि ही है। (अर्थात इस पकार स्थित रहना, सहजज्ञान और आनन्द जिसका स्वभाव है ऐसे सिद्धत्व की प्राप्ति ही है)

संक्षेप अर्थ अनिन्दिय और इन्द्रियातीत हुआ आत्मा सर्व बाधा रहित और संपूर्ण आत्मा में समंत (सर्व प्रकार के परिपूर्ण) सौख्य तथा ज्ञान से समृद्ध रहता हुआ परम सौख्य का ध्यान करता हैं ।

इसके अतिरिक्त गोम्मटरसार कर्मकाण्ड गाथा २५७ जोगा पयडिपदेशा ठिदियणुभागा कसायदो होंति।

अपरिण दुच्छिण्णेसु य बंध दि्ठदि कारणं णत्थिं ।।२५७।।

इस गाथा में आए अपरिणित व उच्छिन्न शब्दों से भी वहां पर भाव मनेयोग की सिद्धि की गयी है। यहाँ पर आलेख वृद्धि के कार ण अन्य विषयों को छोड़ दिया हैं।

मुझे विश्वास है आप के चित्त में उठने वाले समस्त प्रश्नों का सटीक तथा संतुष्ठि पूर्ण उत्तर गुरुचरणों से प्राप्त हो सकेगा अतः जो भी प्रश्न आपके है गुरुचरणों में जाकर प्राप्त कर सकते हैं।

यह संपूर्ण आलेख का विषय आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी महाराज के द्वारा अतिशय क्षेत्र पपोरा जी में २५/०६/२०१८ को प्रातः ७ बजे विदुषी बहनों को दिए गये चिन्तन के आधार पर लिखा गया है।

सर्वार्थ सिद्धि मूल (२/१४/७५)

पर्याप्ति व प्राण से भाव मनोयोग की सिद्धि- आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने इस सूत्र की टीका करते हुए कतिपुनरेषां प्राणाः द्वीन्द्रियस्य तावत् षटप्राषाः पूर्वीक्ता एव रसनवाक्प्राणाधिकाः। त्रीन्दियस्य सप्त त एव प्राणप्राणाधिकाः। चतुरिंद्रियस्याष्टौ त एव चक्षुः प्राणाधिकाः। पञ्चेन्द्रिस्य तिरञ्चोऽसंज्ञिनो नव त एव श्रोत्र प्राणाधिकाः । सञ्जिनो दश त एव मनोबल प्राणाधिकाः पुनः इनके कितने प्राण होते हैं द्वि इन्द्रिय के ६ (१ इंद्रिय के स्पर्शन इन्द्रिय, कायबलः, आयु, श्वासोच्छवास इसमें रसना इन्द्रिय, वचनबल जोड़कर ६ प्राण होते है) तीन इंद्रिय में घ्राण इंद्रिय जोड़कर ७ प्राण चार इंदिय में चक्षु

इंद्रिय जोड़कर ८ प्राण, पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंज्ञी के श्रोत इंद्रिय मिलाकर ९ प्राण, संज्ञी जीवों में मनोबल मिलाकर १० प्राण होते है। सयोग केवली के संज्ञी असंज्ञीपना नहीं है लेकिन वहां पर आयु, श्वासोच्छवास, कायबल, वचन बल ये चार प्राण पाये जाते है इसी को आधार लेकर के कारण-कार्य व्यवस्था से उनके भाव मनोयोग की सिद्धि होती है जैसे-

इसलिए पर्याप्ति व प्राण में जो अंतर पाया जाता है वहीं अंतर मनोबल व मनोयोग में पाया जाता है यहां पर मनोयोग को प्राण नहीं कहा मनोबल को प्राण कहा है चूंकि सयोग केवली पर्याप्त अवस्था में है (समुद्रघात के तीन समय छोड़कर) इसलिए मनोयोग उनके पास है यह कारण हुआ। इसका कार्य अनन्त बल (वचन बल) है तो यहाँ पर दोनों बल क्यों है ? (मनोबल वचनबल) जबकि आयु व श्वासोच्छवास प्राण भी वहां पर अतः सिद्ध हुआ मनोयोग पूर्वक ही वचन योग होता है। इसलिए सयोग केवली के भाव मनोयोग की सिद्धि होती है, क्योंकि इस कारण के बिना वचन बल आदि कार्य की उपस्थिति नहीं हो सकेगी।यहाँ मन का अर्थ ज्ञान विषयक है और १३वें गुणस्थान सयोग केवली में मन का अर्थ योग विषयक है। जब वचन का प्रयोग होता हे उसमें सहायता मनोयोग करता हैं।

१३वें गुणस्थान वाले सयोग केवली के द्रव्य मनोयोग (मनोवर्गणा) को ग्रहण करने वाला होता है और भाव मनोयोग (आत्म प्रदेशों के परिस्पंद रूप होता है।)

❍❍❍

क्या है चिंतन आचार्य विद्यासागर का लेश्या के संदर्भ में

ब्र. अशोक भैया, (लिधौरा टीकमगढ़)

लेश्या दो प्रकार की होती हे- द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या। लेश्या का अर्थ वर्ण होता है- भावों का वर्ण- भाव लेश्या और शरीर का वर्ण द्रव्य लेश्या है। यहाँ पर जीवों के भावों का अधिकार होने के कारण द्रव्य लेश्या का ग्रहण नहीं किया। चूँकि भाव लेश्या कषाय के साथ अनुरंजित योग की जो प्रवृत्ति है उसको लेकर के औदयिक भाव कहा गया है।

एक विशेष बात यह है कि षडखंडागम आदि ग्रंथो में सूत्रों के अनुसार तेरहवें गुणस्थान तक लेश्या का प्ररूषण किया गया है। और मुख्य रूप से सिद्धांत ग्रंथो में योग प्रवृत्ति लेश्या ऐसा कहा है। इनकी सार्थक संज्ञा जिसके द्वारा आत्मा शुभ और अशुभ कर्मो से लिप्त होता हे। उसका नाम लेश्या है। इस प्रकार की यदि परिभाषा बना देते है तो प्रथम गुणस्थान से तेरहवें गुणस्थान तक लेश्या घटित होती हे। कर्म दो प्रकार से विभाजित किये गये है। १. शुभकर्म २. अशुभकर्म अघातिया कर्मों के अंतर्गत रहने वाले प्रशस्त कर्मों का भी बन्ध दसवें गुणस्थान तक होता चला जाता है। प्रशस्त कर्मों का बढ़ना और अप्रशस्त कर्मों का घटना होने से उत्तरोत्तर गुणस्थानों में वृद्धि होती है किन्तु दसवें गुणस्थान के उपरांत कषाय का पूर्णतः अभाव हो जाता है। आगे उपशांत मोह क्षीण मोह और सयोग केवली तीन गुणस्थानों में भी बंध होता है, किन्तु वह बंध बंध नहीं माना जाता। कर्म बंध की व्यवस्था में यह बात हमेशा ध्यान रखने योग्य है कि जिसके साथ आबाधा काल पड़ जाता है उन्हीं को बंधस्थानों में अंगीकृत किया हे। कर्म बँधन के उपरांत जब तक बाधा नहीं हो, तब तक उसको आबाधा काल बोलते हैं।

सभी कर्म बंधते ही बाधा देना प्रारंभ कर दें ऐसा नहीं है। मान लो दर्शनमोहनीय का सत्तर कोड़ा कोड़ी का उत्कृष्ट बं ध हो गया तो उसके लिए सात हजार वर्ष तक उत्कृष्ट आबाधा पड़ जाएगी। तब तक वह बाधा दे नहीं सकता यदि संक्रमण आदि कुछ करता भी है तो आवली पर्यंत तो विश्राम करना ही पड़ेगा। इस अपेक्षा से सांपरायिक आश्रव के साथ बंध व्यवस्था कही गई।

दसवें गुणस्थान तक तो यह बंध चलता है। ग्यारहवाँ, बारहवाँ और तेरहवें गुणस्थान में भी साता वेदनीय की प्रकृति पड़ती है उसमें अनुभाग भी पड़ता है, स्थिति न पड़े ऐसा भी नहीं है। ये कर्म सिद्धांत है कि प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग इन चारों का बंध होता रहता हे। गौण मुख्यता अलग वस्तु है।

ग्यारहवें बारहवें और तेरहवें गुणस्थान में कर्म एक समय मेंआता है और दूसरे-समय में फल देकर चला जाता है इस अपेक्षा से आबाधा काल नहीं पड़ता अतः उसको बंध की कोटि में नही गिना। इस अपेक्षा से उस योग प्रवृत्ति को हम लेश्या नहीं कहेंगे लेकिन सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो उसको भी बंध की कोटि में गिनेंगे इसलिए तेरहवें गुणस्थान तक आस्रव भी है तो बंध भी है। द्रव्यास्रव यदि होता हे तो भावास्रव भी होना अनिवार्य है। ऐसा आगम ग्रंथो में उल्लेख मिलता है। भाव जो हो रहे है वो अपने आप हो रहें हैं या औपचारिक हो रहें है। वहाँ के भाव औपचारिक होते हैं ऐसा मानोगे तो वहाँ का जो साता का उदय है वह भी औपचारिक सिद्ध हो जायेगा। ऐसी स्थिति में बहुत आपत्ति आयेगी, इसलिए दसवें गुणस्थान तक की जो आस्रव व षटलेश्या व्यवस्था थी उस प्रकार की व्यवस्था ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थान में नही होने के कारण उसको औपचारिक लेश्या के अंतर्गत लिया गया है। उदाहरण सहित- भावों के रंगो का यहकथन हैं आपके भावों के रंग कैसे -कैसे होते हैं। आपके भाव सफेद भी होते हैं, लाल भी होते है, पीले भी होते हैं। और आपके भाव कबूतर के रंग वाले भी होते है, नीले और काले भी होते हैं। जिज्ञासा-उपशांत कषाय, क्षीणकषाय और सयोग केवली गुणस्थान में शुक्ल लेश्या है ऐसा आगम है, परंतु वहाँ पर कषाय का उदय नहीं है इसीलिये औदयिकपना नहीं बन सकता ?

समाधान- यह कोई दोष नहीं है, भूत प्रज्ञापन नय की अपेक्षा से भूत में घटित जो भाव है उसके कारण यहाँ पर भी योग प्रवृत्ति को कषाय अनुरंजित मानकर के उपचार से औदयिक भाव हम कह देते हैं। ये उपचार की विद्या केवल टीका ग्रंथो में ही मिलती हे। किन्तु भूल में सूत्रों बगैरह में इसको औपचारिक कहने का कहीं प्रसंग नहीं मिलता। चौदहवें गुणस्थान में अयोग केवली के योग-प्रवृत्ति का अभाव होने से वे लेश्या से रहित हो जाते हैं।

छह लेश्या वाला उदाहरण – छह व्यक्ति हवा खाने के लिए घूमने गये। घुमते-घुमते जंगल पहुँच गये और भूल गये। कितना समय हो गया पता नहीं चला-सबको भूख लग आई साथ में तो कुछ लेकर गये नही थे एक दूसरे से पूछने लगे तुम्हारे पास कुछ है क्या-नहीं हम कुछ नहीं लाये। चलो आगे देखो कुछ मिलता है तो ठीक है। गर्मी का मौसम था दूर तक देखा एक पेड़ दिखा सभी पास में गये। अरे, ये तो आम का पेड़ है आम मीठे-मीठे पके पके लग रहे हैं। लेकिन बहुत बड़ा पेड़ है। अब चढ़ना तो आता नहीं क्या करें ? एक व्यक्ति किसी साधन माध्यम से काटना प्रारंभ कर देता है नीचे से काटने लगता है तो दूसरा व्यक्ति कहता- भैया इस पेड़ को यहाँ से काटने की अपेक्षा उसके स्कंध जहाँ से टहनी वगैरह फूटें हैं वहाँ से काटना ठीक है वह पेड़ पर चढ़कर वहाँ से काटना प्रारंभ कर देता है। तीसरा व्यक्ति कहता है- भैया अपना समय बरबाद मत करो ऊपर चढ़कर डालियाँ काट लो जिसमें फल लगे हैं और वह काटना प्रारंभ कर देता है इस प्रकार ये तीनों काटने में लग जाते हैं। चौथा व्यक्ति और समझदार था कहने लगा - भैया काटने - पीटने से कोई मतलब नहीं इसमें जो गुच्छे-गुच्छे लगे हे उनको ही तोड़ लो गुच्छों में दो-चार पके कुछ गदरे और कुछ कच्चे आम मिल ही जायेंगे। और वह तोड़ने में लग गया। पाँचवा व्यक्ति सबको देख रहा था कहने लगा- भैया से कच्चे आम किस काम के अतः गुच्छों को हाथ मत लगाओ उनमें जो पके-पके मीठे-मीठे आम तोड़ लो बस।

इस प्रकार ये पाँचो व्यक्ति अपना-अपना कार्य प्रारंभ कर देते हैं छठा व्यक्ति था वो कहता है -भैया इतनी तेज हवा चल रही है कि पके आम तो नीचे गिर जाएंगे कुछ समय पश्चात हवा से आम गिरे और वह नीचे बैठे इन पके फलों को लेता है। अब छह व्यक्ति आम खाकर अपनी क्षुधा शांत करना चाहते हैं। पाँच तो पेड़ पर चढ़े है और एक नीचे बैठा है। पहला व्यक्ति जो कुल्हाड़ी के द्वारा मूल सहित काटने में लगा है। उसका भी भाव खाने का है लेकिन समूल नष्ट करके खाने का है। इसको आचार्यों ने कहा -यह कृष्ण लेश्या का प्रतीक है। दूसरा व्यक्ति तो जड़ सहित ना काटकर स्कंध सहित काटने में लगा है। वह नील लेश्या का प्रतीक है। उसके परिणामों में भी रौद्रता की अपेक्षा कभी नहीं है। तीसरा व्यक्ति जो शाखाओं को तोड़ रहा था वह कापोत लेश्या वाला है। इन तीनों में

काटने की अपेक्षा तोर तम्यता भले ही है लेकिन अशुभ के प्रतीक माने गये हैं। इन तीनों के द्वारा हानि हो रहीं है। खाना इतना सा और नष्ट करना बहुत हो गया।

चौथा व्यक्ति जो गुच्छों को ही तोड़ रहा है वृक्ष का घात नहीं कर रहा लेकिन गुच्छों में कच्चे, छोटे भी फल है सब नष्ट हो जाते हैं इसे पीत लेश्या कहते हैं। इसमें वर्तमान में फलों की हानि हो रही लेकिन अगले साल वह वृक्ष ओर फल दे सकता है। इसमें कोई हानि नहीं। पाँचवा वह व्यक्ति जो पके पके फल तोड़कर खा रहा वह पद्मलेश्या वाला माना जाता है।वह डाल से तोड़कर खा रहा है चूंकि पेड़ के साथ उस फल का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है अतः ये हानि है। समयसार ग्रंथ के आस्रव अधिकार में एक गाथा आचार्य कुंदकुंद भगवन ने लिखी हे।

गाथा-पक्के फलम्मि पडिदे, जहण फलं बज्झदे पुणो बिटे।

जीवस्स कम्मभावे, पडिदे ण पुणोदयमुवेहि ॥१७५॥

गाथा का अर्थ- जिस प्रकार पका हुआ फल एक बार टहनी से टूट जाता हे तो पुनः उस फल को टहनी से लगा नहीं सकते उसी प्रकार कर्म टूटने के बाद उदय में आने के बाद वह बंध को प्राप्त नहीं हो सकता।

पद्म लेश्या वाला पके फल को थोड़ा हाथ लगाता है वह टूट जाता है अतः पेड़ को कुछ विशेष नहीं पहुँचती। और छठा व्यक्ति नीचे बैठा है पेड़ को धक्का भी नहीं लगाता नहीं डंठल को , न ही शाखा को धक्का लगाता। हवा के कारण पृथ्वी पर स्वयं गिरे हुए फलों का उठाकर खा लेता है यह शुक्ल लेश्या कही जाती है।

शुभ लेश्या वालो की उपयोगिता :- शुक्ल लेश्या पद्म लेश्या तथा पीत लेश्या वाले समाज के किस रूप में काम आ सकते है इसका यदि अध्ययन करते हैं तो तीनों शुभ लेश्या सामाजिक विकास के लिए साधक सिद्ध होगी। किन्तु तीन अशुभ लेश्या के द्वारा समाज में विप्लव खड़ा हो सकता है, क्योंकि तीनों अशुभ लेश्या वाले व्यक्ति समाज में अव्यवस्था फैलाते है। और तीनों शुभ लेश्या वाले व्यक्ति समाज के लिए हितकारक सिद्ध हो जाते है। अशुभ लेश्या जब समाज के लिए हानिकारण सिद्ध हो जाती है तो अपने जीवन मे भी कई खामियाँ आ सकती है।

अपने जीवन को भी हम हरे-भरे वृक्ष के रूप में खड़ा करना चाहते है तो अशुभ लेश्या से उसके ऊपर भी इस प्रकार के आघात हो सकते हैं । किन्तु संसारी प्राणी मोही होने के कारण अपना ही अपना सोचता चला जाता हे। दूसरे को वह गौण कर जाता है दूसरे के माल को गौण नहीं करता, दूसरे के माल का अधिकारी बनने का प्रयास करता है इसी कारण सांसर में घूमते रहते हैं। ये ध्यान रखना ये छहों व्यक्ति खाने की ओर दौड़ रहे है ये अपना कल्याण नहीं कर सकेगे ।

एक और सातवाँ व्यक्ति वहाँ पेड़ की नीचे बैठा है वह कहता है- हे आम के पेड़ तुम मेरे लिए फल दो या न दो मुझे तो तुम्हारी छाया ही पर्याप्त है, उस छाया मैं बैठकर हम आत्मस्थ हो सकते हैं। और वह आम के फल को तोड़ता भी नहीं, पेड़ को काटता भी नहीं और पके गिरे हुए फल को खाता भी नहीं यदि टूटा हुआ फल खाता हूँ तो संभव है कि मालिक आकर मेरी पीठ के ऊपर मार भी कर सकता है, क्योंकि बिना दी हुई किसी की वस्तु को ग्रहण करना चोरी पाप हैं। इसीलिए किसी की वस्तु को ग्रहण नही करना चाहिए। सातवाँ लेश्या से रहित होने के कारण आस्रव से रहित हो गया और आस्रव से रहित होने के कारण वह मुक्त हो गया। प्रवृत्ति जब तक चलेगी तक तक निश्चित रूप से हमारे पास कोई न कोई लेश्या रहेगी। असयंमी के भी शुभ लेश्यायें हो सकती है ?

लेश्या और अलेश्या का प्रकरण हमारे लिए बहुत ही मार्के का है - लेश्या के द्वारा हमारा आत्मा निश्चित रूप से शुभ या अशुभ कर्म बंध की प्राप्त होगा इसीलिए लेश्या से रहित होना ही एक प्रकार से ध्यान माना जाता है। और उसी ध्यान के द्वारा आत्मा का कल्याण होता है। जो अलेश्यापरक ध्यान होता है वह तेरहवें गुणस्थानवर्ती महामुनिराज को भी प्राप्त नहीं होता। उनके लिए भी वह आराधनीय है और आपेक्षित है और एक प्रकार से उपादेय है। उसकी प्रतीक्षा करते हैं। श्री वृषभनाथ भगवान से लेकर के जो चौबीस भगवान हुए सभी ने अलेश्यापरक ध्यान लगाया।

कर्म सिद्धान्त का यह कथन है कि कृष्ण, नील ओर कापोत ये तीन लेश्या असंयम का प्रतीक है तथा पीत, पद्म और शुक्ललेश्या ये संयम के प्रतीक हैं । संयमी होगा वह शुभ का अर्जन करेगा और असंयमी होगा वह अपने लिए भी अशुभ का अर्जन करेगा और असंयम के माध्यम से समाज में या अन्यत्र भी

विप्लव कर सकता है। एक प्रकार से मन-वचन काय को संयत बनाकर हम चलेंगे तो निश्चित रूप से आपका जो करोबार है वह ठीक चलता है। उस संयम में यदि कभी कर देते हैं तो सरकार के द्वारा भी, अड़ौस पड़ौस के द्वारा भी, घर-परिवार में भी विप्लव या प्रहार हो जाते है। असंयम भाव को लेकर एक स्थान पर उदाहरण आया है-

उदाहरण - एक पक्षी अपने मुख में खाद्य पदार्थ लेकर पंखो को हिलाते हुए अपने अड़ोस-पड़ोस से बहुत दूर जाना चाहता है। उसी बीच में इस दृश्य को देखकर उसके अड़ोस पड़ोस में रहने वाले सारे के सारे चौकन्ने हो जाते है। ये अकेले क्यों जा रहा उसके मुख में खाद्य पदार्थ क्या है वे पीछे लग गये और वह आगे-आगे भाग रहा है। भागता-भागता -भागता-भागता वह थक गया उसमें असंयम आ गया और खाद्य पदार्थ नीचे गिर गया। यदि हम अपने लिए ही सब कुछ करते हैं तो हमारी रक्षा में कठिनाई होगी। इसीलिए आचार्य कहते हैं कुछ स्वयं के लिए रखों और कुछ अपने अड़ोस-पड़ोस में भी बाँट देना चाहिए ताकि वो भी अपना काम चला सकें।

संसार दशा में शुभ लेश्या के साथ जहाँ भी जाओ वहाँ सुख ही सुख है। अशुभ लेश्या के साथ बहुत कठिनाई होती है इसीलिए असंयम भाव कुलेश्यायें मानी जाती है। इन लेश्याओं के कारण ही सम्यग्दर्शन इत्यादिक में भी तरतम्यता आ जाती है। चार प्रकार के देव होते है और आपको यदि देवायु का बंध हो गया तो यदि लेश्या अशुभ हो जाये तो आचार्य कहते हैं कि ये नियम से अशुभ है तो उसे निश्चित रूप से भवनत्रिक में ही जाना पड़ेगा वैमानिक देवों में जाने के लिए शुभ लेश्या अनिवार्य है। इसीलिए उनको वैमानिक संज्ञा दी गई है। सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से नहीं किंतु उनके पास शुभ लेश्या ही रहती है, इसीलिए वे विमानवासी देव माने जाते हैं ।

कर्म सिद्धांत के अनुसार लेश्या का गठबन्धन :-और मान-सम्मान के साथ वहाँ पर रहते हैं। कल्पवासीं में जन्म लेने के लिए सम्यग्दर्शन हो या न हो इसका कोई नियम नहीं शुभ लेश्या का नियम है। अंत समय में यदि अशुभ लेश्या हो गई तो निश्चित रूप से आपका सम्यग्दर्शन छूट जायेगा और सम्यग्दर्शन यदि छूट गया तो भवनत्रिक में ही जाना पड़ेगा। इसीलिए कर्म सिद्धान्त के

अनुसार लेश्या का भी गठबंधन बड़ा मार्मिक है। संक्लेश परिणाम के साथ अशुभ लेश्या की व्याप्ति कभी नहीं बनाना। क्योंकि संक्लेश परिणामों का होना असाता आदि अप्रशस्त कर्मो के बंध के लिए कारण माना गया है। और वह छठे गुणस्थान तक अस्थिर, अशुभ, असाता, अयशकीर्ति, अरति और शोक का बंध कराता है। इसीलिए भी उसका कोई गठबंधन नहीं होता। गुणस्थान का परिवर्तन संक्लेश के साथ नही जुड़ा है। कर्मसिद्धान्त के अनुसार गुणस्थान का परिवर्तन शुभ तथा अशुभ लेश्या के साथ जुड़ा है। कर्म सिद्धांत में वैमानिक देव मान-सम्मान के पात्र इसीलिए है कि मरण के अंतिम समय उनके शुभ लेश्या थी इसी प्रकार संयम स्थान में जब तक आप रहेंगे तब तक शुभ लेश्या वाले ही माने जाएंगे। शुभ लेश्या के साथ यदि आपका संयम पल रहा है तो निश्चित रूप से आपको स्वर्ग का ही लाभ मिलेगा। वहाँ पर जाने के उपरांत सम्यक दर्शनादि के उत्पत्ति के लिए भी कारण जिनका सम्यग्दर्शन छूट गया है और यदि है तो उसकी दूढ़ता के लिए भी जो योग्य सामग्री है वो सदैव उपलब्ध रहेगी। लेश्याओं के बारे में अपने को हमेशा सोचना चाहिए। यही अपने लिए कार्यकारिणी हे।

उत्थानिका- अब जो तीन प्रकार का पारिणामिक भाव कहा है। उसके भदों के स्वरूप का कथन करने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं -

सूत्र- **जीव भव्याभव्यत्वानि च ॥८॥**

अर्थ- पारिणामिक भाव के तीन भेद हैं - जीवत्व, भव्यत्व और अभंव्यत्व ॥३॥

अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रदेशत्व, प्रमेयत्व और अगुरुलघुत्व ये भाव सामान्य रूप से अन्यत्र भी पाये जाते हैं। इसीलिए यहाँ इनका नामोल्लेख न करके तीन जो असाधारण भाव हैं और ये जीव को छोड़कर अन्यत्र नहीं पाये जाते हैं। इसीलिए उनका यहाँ पर कथन किया जा रहा है।

जिज्ञासा- इन तीनों में पारिणामिकत्व क्यों है ?

समाधान- कर्म का उदय, कर्म का क्षय, कर्म का क्षयोपशम इसमें आपेक्षित नहीं है इसलिये इनको पारिणामिक रहा है।

समाधान- प्रथम से चतुर्थ गुणस्थान तक दर्शन मोहनीय की विवक्षा है किंतु द्वितीय गुणस्थान में दर्शन मोहनीय का उदय भी नहीं है, अतः वहाँ औदयिक भाव कैसे कहें।

❍❍❍

आचार्य विद्यासागर के चिन्तन में द्रव्य का लक्षण

एलक सिद्धांतसागर

पं. गोपालदास जी वरैया का पॉकिट ग्रन्थ जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में द्रव्य की परिभाषा-गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं। यह परिभाषा पूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज को आगम की कसौटी पर उचित नहीं लगी। अतः उन्होंने द्रव्य के लक्षण पर तत्त्वार्थ सूत्र के सन्दर्भ में एवं जैन आगम के सन्दर्भ में गहन चिन्तन करके यह निष्कर्ष निकाला कि गुण और पर्याय के समूह को द्रव्य कहना चाहिए। परन्तु धारा के विपरीत चिन्तन करने वाले सन्त शिरोमणि को विद्वानों के समक्ष यह सिद्ध करना था कि गुण और पर्याय के समूह को ही द्रव्य कहा जाना चाहिए। परन्तु तत्कालीन विद्वत् समूह जैन सिद्धान्त प्रवेशिका के विरुद्ध एक भी शब्द सुनने को तैयार नहीं था परन्तु आचार्य श्री विद्यासागर जी ने अपने विषय को सविनय विद्वानों के समक्ष रखा और उन्होंने तत्त्वार्थ सूत्र का एक सूत्र आधार बनाया- ''गुणपर्ययवद् द्रव्यं ''गुण और पर्याय वाला द्रव्य होता है इसी आशय का कथन अन्य ग्रन्थों में भी उपलब्ध होता है। प्रवचन सार की गाथा २३ की तत्त्वप्रदीपिका टीका में आचार्य अमृतचन्द्र देव ने समगुणपर्याय द्रव्यं इति वचनात् अर्थात गुण और पर्याय के समूह को द्रव्य कहा है इसी का समर्थन करते हुए आचार्य जयसेन जी ने भी समगुणपर्याय द्रव्यं भवति इस प्रकार लिखा है तथा इसी प्रवचनसार ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में आचार्य अमृतचन्द्र देव ने लिखा है- ''इयं हि सर्वपदार्थानां द्रव्यगुणपर्यायस्वभाव प्रकाशिका पारमेश्वरी व्यवस्था साधीयसी, तपुनरितरा।'' इस कथन में भी द्रव्य को गुण और पर्याय को समूह रूप में माना हैं।

आचार्य कुन्द कुन्द देव ने पंचास्तिकाय ग्रन्थ की गाथा १० में द्रव्य के लक्षण करते हुए कहा है -

दव्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्यय धुवत्तसंजुत्त।
गुणपज्जयासयं वा जं जं भण्णंति सव्वण्हू ॥१०॥

द्रव्य का लक्षण सत् है और सत् उत्पाद,व्यय, ध्रौव्य से युक्त होता है तथा गुण और पर्याय के समूह को सर्वज्ञ देव ने द्रव्य कहा है। इससे सिद्ध होता है कि गुणों के समूह को द्रव्य कहना अपने आप में अपूर्ण परिभाषा है।

यदि पर्यायों से रहित गुणमात्र को द्रव्य का लक्षण सिद्ध किया जायेगा तो द्रव्य मात्र ध्रुव रह जायेगा और उत्पाद व्यय का द्रव्य से अभाव हो जायेगा। जबकि आचार्य उमास्वामी जी ने द्रव्य का लक्षण सत् बताया है और सत् को उत्पाद व्यय ध्रौव्य के रूप में देखा है। आचार्य कुन्द कुन्द देव ने यह भी कहा है कि उत्पाद के बिना व्यय नहीं होता है और व्यय के बिना उत्पाद नहीं होता है और उत्पाद व्यय के बिना ध्रौव्य नहीं होता है और ध्रौव्य के विना उत्पाद व्यय भी नहीं होता है। इस सन्दर्भ में आचार्य कुन्द कुन्द देव ने प्रवचन सार की ८वीं गाथा अध्याय में अवलोकनीय है।

ण भवो भंगविहीणो भंगो वा णत्थि संभवविहीणो।

उप्पादो वि य भंगो व विणा द्योव्वेण अत्थेण ॥८॥ प्र.सा. २आ.

तथा इस ग्रन्थ में यह भी विवेचित किया गया है कि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य में समय भेद भी नहीं होता है अर्थात जिस समय उत्पाद होता है उसी समय व्यय होता है और जिस समय उत्पाद, व्यय होता है उसी समय ध्रौव्य होता है। इस प्रंसग में प्रवचन सार की १०वीं गाथा भी द्रष्टवा है -

समवेदं खलु दव्वं संभवठिदिणास सण्णिट्ठे ह।

एक्कम्मि चेव समये तम्हा दव्वं खु तत्तिदयं ॥१० ॥ प्र.सा. २ अ.

द्रव्य का लक्षण बताते हुए वीरसेनाचार्य जी ने कहा है कि एक द्रव्य में अतीत अनागत और वर्तमान पर्याय जितनी है वे अर्थ और व्यञ्जन पर्याय हैं अर्थ और व्यञ्जन पर्याय जितने प्रमाण में हैं उतने प्रमाण में द्रव्य होता है अर्थात् पर्याय मय द्रव्य होता है। इसी आशय से यह गाथा १९९/३८६ पठनीय है।

एय दवियम्मि में अत्थपज्जया वयण पज्जया वावि।

तीदाणागयभूदा तावदियं तं हवइ दव्वं ॥१९९॥ घ.॥१/९.१३६

इसी आशय का सन्दर्भ कषाय पाहुड़ में भी उपलब्ध होता है क.प. १/ ११४ गाथा १०८/२५३।

इसी प्रकार आचार्य समन्तभद्रदेव ने भी अपने अतिप्रिय ग्रन्थ आप्तमीमांसा में कहा है कि जो नैगम आदि नय और उनकी शाखा, उपशाखा रूप उपनयों के विषयभूत त्रिकालवर्ती पर्यायों का अभिन्न सम्बन्ध रूप समुदाय है उसे द्रव्य कहते हैं। इस सन्दर्भ में आप्त मीमांसा का यह श्लोक विचारणीय है।

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः।

अविष्वग्भाव संबन्धो द्रव्यमेक नेकद्या ॥१०८॥ आ.मी.

श्लोकवार्तिक में आचार्य विद्यानन्दि जी ने पर्याय वद् द्रव्यं की मीमांसा करते हुए लिखा है। पर्ययवद्द्रव्यमिति हि सूत्रकारेण वदता त्रिकालगोचरानन्त क्रम भावि परिणामाज्जियं द्रव्य मुक्तम्॥ पर्याय वाला द्रव्य होता है। इस प्रकार कहने वाले सूत्र काटने तीनों कालों में क्रम से होने वाली पर्यायों का आश्रय होकर द्रव्य कहा है॥ (२११/५)

आचार्य अमृतचन्द्र जी ने प्रवचन सार की गाथा ३६ की टीका में कहा है कि -''ज्ञेयं तु वृत्तवर्तमानवर्तिष्माणविचित्र पर्याय परम्परा प्रकारेण त्रिधाकाल कोटिस्पर्शित्वाद नाद्यनन्तं द्रव्यं '' अतीतादि के भेद से उत्पादादि से द्रव्य गुण पर्याय के भेद से तीन प्रकार हुआ द्रव्य ज्ञेय होता है अर्थात् गुण और पर्यावान द्रव्य होता है।

इन सभी प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मात्र गुणों के समूह को द्रव्य कहना अपने आप में दार्शनिक मूल होगी,क्योंकि मात्र गुणों के समूह को द्रव्य मानने पर द्रव्य कूटस्थ हो जायेगा एवं सारूप मत की प्रासंगिकता कभी भी टाली नहीं जा सकती है तथा द्रव्य सामान्य विशेषात्मक भी सिद्ध नहीं होगा। जबकि आचार्य माणिक्यनंदी जी ने परीक्षा मुख के चतुर्थ अध्याय के प्रथम सूत्र में कहा- सामान्य विशेषात्मा तदर्थो विषयः कहा है।

द्रव्य को नित्यानित्यात्मक, भेदाभेदात्मक सिद्ध करना कठिन हो जाएगा

क्योंकि पर्याय, विशेष, भेद, अनित्य, पक्ष को समायोजित करती हुई द्रव्य की पूर्णता करती है।

पर्याय के अभाव में द्रव्य सदैव अधूरा रहेगा अतः जिनेन्द्र भगवान की वाणी में विश्वास करने वाले लोग कभी भी मात्र गुणों के समूह को द्रव्य स्वीकार करने में असमर्थ रहेंगे। तब फिर क्यों ना जैन सिद्धांत प्रवेशिका की दी हुई द्रव्य की परिभाषा के पर्याय शब्द जोड़ दिया जाए और परिभाषा का नया रूप देते हुए यह कथन कर दिया जाए कि द्रव्य, गुण और पर्याय के समूह को द्रव्य कहते हैं। ऐसा करने पर जैन दर्शन की समग्रता का समावेश हो जाएगा और जैन मत की पताका विश्वव्यापी निर्विवाद हो जाएगी।

❍❍❍

आचार्य विद्यासागर के चिन्तन में शिक्षा

ब्र. दिलीप जैन, विदिशा

आचार्य श्री जी के चिंतन में शिक्षा का एक व्यापक स्वरूप परिलक्षित होता है और उसे हम शब्दों में बांधना चाहिये तो हम अपने को बोना पाते हैं फिर भी आचार्य श्री जी के शब्दों में हम शिक्षा को लेते हैं तो आचार्य श्री जी कहते हैं कि हित का सृजन और अहित का विसर्जन करना ही शिक्षा का लक्षण है।

जो हमें हेय और उपादेय का ज्ञान कराती है वही शिक्षा है।

शब्द से अर्थ और अर्थ से भाव तक पहुंचने का नाम शिक्षा है। और जहाँ शब्द भी नहीं मात्र संकेत जो हमें लक्ष्य तक पहुंचा देवें वही शिक्षा है। वह संकेत जो हमें दिशा प्रदान करें, वह संकेत जो हमें मुसीबतों से उबरकर हमें आगे बढ़ाएं,होसला बढ़ाएं वही शिक्षा है। इसलिये हम अपनी समस्त इंद्रियों से जो ज्ञान प्राप्त करते हैं उनके भावों तक हमें जो लेता है उसी का नाम शिक्षा है।

आचार्य श्री जी के चिंतन में शिक्षा के कुछ प्रमुख आयाम इस प्रकार हैं या यूं कहें शिक्षा के माध्यम से जीवन को उन्नत बनाने के यह ७ आयाम है। स्वस्थ तन, स्वस्थ मन, स्वस्थ वचन, स्वस्थ तन, स्वस्थ मन, स्वस्थ वतन और स्वस्थ चेतन।

विराट स्वरूप विद्यासागर

स्वस्थ तन के विषयों में यही कहा जाताहै कि शरीर माद्यं खलु धर्मसाधनम् शरीर ही निश्चय से धर्म का प्रथम साधन है इसलिये सर्वप्रथम हम अपने तन को स्वस्थ रखें यही शिक्षा का प्रथम फल हो सकता है।

स्वस्थ मन एक शिक्षित व्यक्ति की पहचान है।

शिक्षित व्यक्ति की भाषा और उसका कहने का तरीका स्वस्थ यानि शुद्ध और सार्थकता लिये होता है। शिक्षित व्यक्ति वही माना जायेगा जो न्याय नीति से धन का उपार्जन करें औरअपने ही धन में संतोष रखें।

शिक्षित व्यक्ति अपने आसपास के वातावरण पर्यावरण ओर वनों की सुरक्षा रखें यही उसकी शिक्षा का फल है।

स्वस्थ वतन से तात्पर्य वहां के रहने वाले लोगों और उनके आचार-विचारों, संस्कृति आदि में इस प्रकार का समावेश हो कि वह अपने तन की राष्ट्र की चिंता करतेहो और उसी के अनुकूल अपने कर्तव्यों का पालन करते हो यही स्वस्थ वतन की शिक्षा है।

स्वस्थ चेतन में आचार्य श्री मानव मात्र को अपने स्वभाव को समझने की प्रेरणा देते हैं कि मैं कोन हूँ, कहां से आया हूँ, मेरा क्या कर्तव्य है, क्या साथ में ले जाना है।

इन सब का ज्ञान एक शिक्षित व्यक्ति को अवश्य होना चाहिये जिससे कि वह अपने जीवन के अंतिम उत्कर्ष को प्राप्त कर सके यही स्वस्थ चेतन की शिक्षा है।

शिक्षा का उद्देश्य आचार्य श्री के शब्दों में गुणों का चयन और अवगुणों का अपचयन ही शिक्षा का उद्देश्य है। आजकल एक शिक्षित व्यक्ति भी निर्णय नहीं कर पाता कि क्या छोड़ने योग्य है और क्या नहीं। यह शिक्षा ठीक नहीं। परीक्षा उत्तीर्ण का प्रमाण पत्र तो देखा जा रहा है लेकिन व्यक्ति में प्रामाणिकता कितनी आई यह नहीं देखी जा रही है। शिक्षा का उद्देश्य यह कदापि नहीं होना चाहिये।

आचार्य श्री जी का कहना है कि शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति को स्वश्रित होना चाहिये। नौकरी पा जाने वाला अपने को स्वाश्रित मानता है जबकि शिक्षित व्यक्ति वह है जो दूसरों को नौकरी दे सके ना की नौकरी मांगने वाला।

शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि व्यक्ति न्याय-नीति निपुण बने, व्यक्ति में जहां मानवता पनपती हो दया उत्पन्न होती हो, वही सही शिक्षा है। शिक्षा का फल अध्यात्म है।

शिक्षा के माध्यम के विषय में आचार्य श्री का कहना है कि शिक्षा का माध्यम वह होना चाहिये तो व्यक्ति की अपनी मातृभाषा हो, जिसका वह जन्म से सुन रहा हो और शब्दों के माध्यम से भावों तक पहुंचता हो यानि माध्यम ऐसा हो भावों तक सरलता से पहुंचा देवें। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा रहता है तो व्यक्ति भावों तक पहुंच जाते हैं ।

शिक्षा इस प्रकार की भी होनी चाहिये कि व्यक्ति जान सके कि - परिवार कैसे चलाना लोगों के बीच में कैसे संबध स्थापित करना, सामाजिक समरसता को कैसे स्थापित करना ओर अपनी सोच को किस प्रकार विश्वव्यापी बनाया जाताहै यह भी शिक्षा के उद्देश्य होने चाहिये। हमेशा इतिहास को सामने रखकर के शिक्षा की दिशा तय की जानी चाहिये। क्योंकि इतिहास आदर्श होता हे भविष्य नहीं।

अंत में मैं आचार्य श्री की आध्यात्मिक शिक्षा के बारे में कुछ कहना चाहता हूं कि आचार्य श्री जी की एक सूत्र वाक्य मेरे को जो मिला वह यह कि प्रतिक्रिया मात्र की बंध का कारण है इसलिये हमें हमेशा प्रतिक्रियाओं से बचना चाहिये।

दूसरी शिक्षा मौन की शिक्षा- हर विषय में बोलना आवश्यक नहीं हमें जिस विषय में ज्ञान नहीं है वह बात बोलना ही नहीं है और यदि ज्ञान भी है तो चला कर के उस विषय में नहीं बोलना। जिस विषय में आगम मौन हो अथवा जहां आगम में दो विषय मिलते हो वहां पर भी अपना कोई निर्णय नहीं देना यह आचार्य श्री की शिक्षा है लेकिन वर्तमान में इसका पालन उनके हम सभी बहुतायत शिष्य व भक्तगण नहीं करते जबकि आचार्य श्री कभी भी इन विषयों पर नहीं बोलते और लोग अपने मन के अनुसार उनके निर्णय कर लेते हैं , यह उनकी बहुत बड़ी शिक्षा है।

संघ के संचालन के विषय में एक बार मैंने प्रश्न किया कि आचार्य श्री इतना बड़ा संघ और इतने सारे उपसंघ साधुओं के उपसंघ और माताजी के

उपसंघ है उन सब के बारे में आप कैसे क्या निर्ण करते हैं ? तो आचार्य श्री ने अपने बारे में बस यही कहा कि- सब कुछ होता जाता है हम इस विषय में ज्यादा सोचते नहीं। यह उनकी अकर्तृत्व बुद्धि का परिचायक है, जो कि हम सभी के लिये बहुत बड़ी शिक्षा है। बस यही कहकर मैं अपनी बात को विराम देता हूँ।

❍❍❍

मूक माटी : आत्म कल्याण की अविरल यात्रा

डॉ. संगीता मेहता

करुणा सागर, अध्यात्मवेत्ता तपःपूत महाकवि आचार्यश्री विद्यासागर जी कुशल शिल्पी है। वे शब्द शिल्पी हैं या अर्थ शिल्पी, आत्म शिल्पी हैं या अध्यात्म शिल्पी, व्यष्टि या समष्टि के शिल्पी हैं .... आचार्यश्री तो सम्पूर्ण जगत और समग्र जीवन के शिल्पी हैं। कुम्भकार जिस तरह मिट्टी को सुघढ़ आकार देकर मंगल घट बनाता है उसी प्रकार आचार्य श्री की अति व्यापक और अतिसूक्ष्म दृष्टि, व्यक्ति समाज और राष्ट्र का ही नहीं अपितु समग्र विश्व के सर्वतोमुखी मंगल का पथ प्रशस्त करती है।

'मूकमाटी' महाकाव्य इस मंगल का कल्याण का श्रेष्ठ उदाहरण है। यह महाकवि की अन्त प्रेरणा से उद्‌भुत अध्यात्म की अनुगूंज है।

माटी की महिमा और गरिमा जगत में सर्वत्र व्याप्त है। हम मिट्टी से बने हैं, मिट्टी पर स्थित हैं और मिट्टी में ही मिल जाएंगे। मिट्टी अनमोल है, यह ध्रुव सत्ता सम्पन्न है। इसीलिए ये माटी मूक रहकर भी सर्वत्र अपनी सजीव अभिव्यक्ति देती है। आचार्य श्री ने इस मूकमाटी को भाषा दी है और उसे पूर्ण चैतन्य के रूप में स्थापित किया है।

मूक माटी नीचे से उठकर उत्थान की ओर जाने की यात्रा है, पतित से पावन होने की यात्रा है । सत्पथप्रदर्शक आचार्य श्री भारतीय संस्कृति के क्षरण से आहत हैं । धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों के पतन से दुःखी, राष्ट्रभाषा की अस्मिता की रक्षा के लिए चिन्तित और पर्यावरण के प्रति सचेत है। पतन

की गर्त की अग्रसर होते हुए समाज में जीवन मूल्यों की पुर्नस्थापना के लिए संवेदनशील करुणाकर महाकवि आचार्य विद्यासागर जी के अन्तः से मूकमाटी प्रस्फुटित हुी और मूकमाटी के माध्यम से उन्होंने वर्तमान परिस्थितियों में नवाचार के लिए, नव विषय लेकर, नव विद्या में नव प्रयोग कर जन भाषा में नी दृष्टि दी।

मूकमाटी प्रतीकात्मक महाकाव्य है। धर्म, और नीति, दर्शन और अध्यात्म का मणिकांचन संयोग है। धर्म और दर्शन का सीधा संबंध मानवजीवन से है। इसीलिए महाकाव्य में लोकसृजन के साथ अध्यात्म चिन्तन है। जैन धम७ और दर्शन के शास्त्रीय पक्षों की व्यावहारिक और प्रसंगानुकूल व्याख्या है। जीवन और जगत की भीषण समस्याओं के सहज समाधान है। अल्प शब्दों में व्यापक अर्थ है। चार खण्डों की इस रचना में चार पुरुषार्थों का पोषण है। अर्थगाम्भीर्ययुक्त इस महाकाव्य में प्रकृति है, पर्यावरण है, समग्र जीवन है, यह आत्म कल्याण की अविरल यात्रा है।

आत्मशुद्धि प्राप्ति हेतु जीव की यात्रा चार खण्डों में विकसित हुी -

(१) संकर नहीं : वर्ण लाभ (सम्यक् दर्शन)
(२) शब्द सो बोध नहीं : बोध सो सोध नहीं (सम्यक् ज्ञान)
(३) पुण्य का पालन : पाप का प्रक्षालन (सम्यक् चारित्र)
(४)अग्नि की परीक्षा : चांदी सी राख (सम्यक् तप)

प्रथम खण्ड में अध्यात्म यात्रा के लिए प्रारंभ के लिए वर्ण का लाभ, वर्ण की शुद्धि को आवश्यक माना है, मंगल घट के लिए सर्वप्रथम मिट्टी की पवित्रता अनिवार्य है इसके लिए कुम्भकार कंकड़ आदि बीन कर अलग करता है और मिट्टी को शुद्ध करता है। उसी प्रकार जीव के लिए कषायादि विकारों और पापों से विरति आवश्यक है। महाकवि आत्मशुद्ध के लिए 'संयम की राह चलो' का संदेशदेते हैं, और कहते हैं राही बनना हो तो हीरा बनना है। धम्मोदया विसुद्धो, धम्म सरणं गच्छामि कहकर अहिंसा से कल्याण का पथ प्रशस्त करते हैं।

द्वितीय खण्ड से शब्द बोध (ज्ञान) के माध्यम से आत्मशोध का प्रवर्तन है। इसमें अहं का विसर्जन और समर्पण है। कुंभकार द्वार छने जल में भीगी माटी फूलने लगती है। मिट्टी और जल दोनों को ही नया प्राण और नया ज्ञान मिल जाता है। चेतन में नया परिवर्तन होता है, और वह बोध से अनुभूति की ओर बढ़ता है। इस खण्ड में अनेक प्रसंग हैं, लोकाख्यान हैं, नव रस और ऋतुओं का जीवन प्रभाव, उपदेश और दर्शन भी है।

तृतीय खण्ड पुण्य का पालन : पाप का प्रक्षालन में माटी की विकास कथा के माध्यम से दर्शाया गया है कि जीव के पुण्य का पथ ग्रहण करने से पाप स्वयं पृथक होकर छुटने लगते हैं। पुण्य क्रियाओं से श्रेयस्कर ऋद्धियों की प्राप्ति तथा लेश्याओं की परिणति के प्रलयकारी चित्रों के साथ अनेक आध्यात्मिक भावों की अभिव्यक्ति, अनेक शब्दों की अनूठी अर्थाभिव्यक्ति इसमें हैं।

चतुर्थएवं अंतिम खण्ड - अग्नि की परीक्षा चांदी सी राख अपवर्ग का पथ प्रशस्त करता है। कुम्भ हो या जीव, उसको परम पवित्रता प्राप्ति के पूर्व अग्नि परीक्षा से गुजरना पड़ता है। परिपक्वता के लिए कुम्भ को अवे की अग्नि में और जीव को कठिन साधना एवं संघर्ष की अग्नि में तपकर, शुद्ध रूप की प्राप्ति होती है। इस खण्ड में सर्वाधिक समसामायिक, समाज, देशकाल आदि से संबंधित कथा एवं प्रसंग है। घट का अवे में तपना, सेठ द्वारा ठोक बजाकर खरीदना, साधु के आहारदान की प्रक्रिया में उपयोग, स्वर्ण-रजत कलशों का कुम्भ सेीर्ष्या और प्रतिशोध, आतंकवादी प्रसंग, हृदय परिवर्तन, क्षमा याचना, आदि प्रसंग और अंत में उन्हें शाश्वत सुख का लाभ हो यह आशीर्वाद-आत्म सुद्धि की प्राप्ति कराता है। आत्म कल्याण की इस अविरल यात्रा मूकमाटी में शुद्ध मानव धर्म है इसमें दार्शनिक महाकवि आचार्यश्री का तत्त्वचिंतन, दर्शन अध्यात्म धर्म और सम्प्रदाय से परे है। उनकी दृष्टि में आद्योपान्त लोक मांगल्य का स्वर मुखरित होता है।

क्षिति, जल, पावक, गगन तथा समीर से निर्मित शरीर में क्षिति अर्थात् माटी ही प्रथम तत्त्व है। माटी प्रकृति प्रदत्त तत्त्व है।

कुम्भ के प्रतीक के रूप में मानव जीवन का चित्रण है। इसके केन्द्र में सृष्टि सृजन है। कर्तृत्व और कारणत्व का अवगाहन है।

मिट्टी तथा जीव-आत्मा उपादान है। शिल्पी के रूप में कुम्भकार तथा गुरु दोनों प्रेरक निमित्त है। विशिष्ट गुरु का योग और सान्निध्य माटी और शिष्य को मिल जाता है। वह समर्पित होता चला जाता है और कुम्भ के समान मंगलमय होकर चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

महाकवि आचार्य विद्यासागर जी शब्दचेता या अर्थचेता नहीं वे तो आत्मचेता साधक है। 'अधोमुखी जीवन ऊर्ध्वमुखी हो' (पृ. ४३) कहकर उन्होंने शब्द को अर्थ और अर्थ को परमार्थ दिया। अल्प शब्दों में लघु कथनों के माध्यम से यत्र-तत्र वृहत् सन्देश दिये हैं। जैसें -

- ओंकार को नमन किया है /अहंकार का वमन किया है (पृ. २८)
- बहना ही जीवन है - पृ. २
- लघुता का त्यजन ही/गुरुता का यजन ही /शुभ का सृजन है
- आस्था के बिना रास्ता नहीं/मूल के बिना चूल नहीं।
- जैसी संगति मिलती है/वैसी मति होती है। पृ. ८
- असत्य की सही पहचान ही/सत्य का अवधान है।
- विचारों के एक्य से/आचारों के साम्य से/सम्प्रेषण में निखार आता है। पृ. २२

साधकों के लिए कथन है -

- आपने ही बहुओं से तैर कर/ तीर मिलता नहीं बिना तेरे। पृ. २६७
- कोष के श्रमण बहुत बार मिले है/ होश के श्रमण होते हैं बिरलें। पृ. ३६१

आत्म कल्याण के लिये दर्शन के गूढ़ तत्त्वों को सहजता से प्रस्तुत कर दिया। जैसे 'उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्' को आना जाना लगा हुआ है' क़ह कर समझा दिया।

आना यानी जनन - उत्पाद है,
जाना यानी मरण - व्यय है,.
लगा हुआ यानी स्थिर -ध्रौव्य है। पृ. १८५

'मोक्ष' की सरलतम परिभाषा दी -

बन्धन रूप तन/मन और वचन का/आमूल मिट जाना ही /मोक्ष है। पृ. ४८६

'सल्लेखना' यानि /काय और कषाय को कृश करना है।

'परिणमन शील स्वभाव' को जल की धारा के माध्यम से समझाया है कि जल की धारा धूल में मिलकर दलदल बन जाती है, नीम की जड़ में मिलकर कटु बन जाती है, सागर में मिलकर लवणाकर बन जाती है, विषधर के मुख में जाती है तो विष बन जाती है और वही बूंद जब स्वाति नक्षत्र में सीप में जाती है तो मोती बन जाती है।

अतः हमारा कार्य ही हमें उर्ध्वगामी या अधोगामी बनाता है, कर्म आधारित संस्कृति का ही गुणगान किया है। मूकमाटी में प्रतिपादित उपादन और निमित्त का सूक्ष्म चिन्तन ही ग्राह्य है। पृ. ४८१

अनेकान्तवाद (प. १७२, १७३) से विचारों में सकारात्मकता आती है यह विश्वशान्ति का मूल है।

'ही' एकान्तवाद का समर्थक है और 'भी' अनेकान्त, स्याद्वाद का। लोकतन्त्र में आस्था रखते हुए कवि का कथन है कि सदाचार के बीज 'भी' में है, 'ही' में नहीं 'ही' देखता है हीन दृष्टि से पर को 'भी' देखता है। समीचीन दृष्टि से पर को। इतना ही नहीं 'ही' और 'भी' बीजाक्षरों की संज्ञा दे दी यह एक दार्शनिक सन्त कवि की ही सामर्थ्य है।

सम्पूर्ण महाकाव्य में प्रकृति का मानवीकरण किया है। नदी, पर्वत, ऋतुएं, वृक्ष वनस्पति पशुपक्षी, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारे आदि उपादानों के रूप में प्रकृति मानव की सहचरी बनी है। महाकवि ने प्रकृति में जीवत्व की अवधारणा को पुष्ट और 'परस्परोग्रहो जीवानाम्' की उक्ति को सार्थक किया

है। यथा -

दया का होना जीवन विज्ञान का सम्यक् परिचय है। पृ. ३७

दया अर्थात् हिंसा पूर्वक इस पंचकायिक सृष्टि की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। महाकवि ने सदैव अहिंसात्मक संघर्ष की प्रेरणा दी है -

संहार की बात मत करो/संघर्ष करते जाओ।

हार की बात मत करो /उत्कर्ष करते जाओ। पृ. ४३२

अध्यात्म की जीवन्त मूर्ति आचार्य विद्यासागर जी ने नवरससिक्त 'मानव जीवन' को शान्तरस से अभिसिंचित किया। क्षमा को आत्मा का श्रेष्ठ गुण कहा। कुरीतिया व रूढ़ियों को समाज के विकास में बाधक बताया। महाकवि के प्रत्येक कथन राष्ट्रभक्ति की भावना से ओतप्रोत है। राष्ट्र ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य, भी उनके दृष्टिपथ में था। पाकिस्तान द्वारा संचालित आतंकवाद भी कवि के मानस को उद्वेलित कर देता है। और मूकमाटी में वे जिया उल हक से समष्टि और सदाशयता के लिये कहते हैं (पृ.१४९) उनका आर्त स्वर है -

जब तक जीवित है आतंक,

शान्ति सांस ले नहीं सकती। पृ. ४४१-४४२

अर्थगाम्भीर्य से परिपूर्ण मूक माटी में व्यक्ति स माज और राष्ट्र ही नहीं अपितु विश्व कल्याण की भावना के स्वर सर्वत्र मुखरित हुए हैं। धर्म के सभी लक्षण, दर्शन के सभी सिद्धांत जीवन में ही घटित होते हैं। नीति के सभी सूत्र आचरण में ही प्रतिफलित होते हैं ये सभी आत्म कल्याण की यात्रा के अविरल सोपान हैं। नियति और निर्मिति को समझकर मानव नियत लक्ष्य की ओर अग्रसर हो। स्व के साथ पर का कल्याण करें, भौतिक और आध्यात्मिक पर्यावरण को शुद्ध करे और मूकमाटी के प्रयोजन को सार्थ करें।

मूकमाटी मृण्मय से चिन्मय की ओर, भोग में योग की ओर, लघुता से महत्ता की ओर प्रयाण का पथ है तथा शब्द से शब्दातीत हो जाने की अविरल यात्रा है।

❍❍❍

मूकमाटी (तुलनात्मक) समीकरण

डॉ. रेखा जैन, बैंगलोर

अखिल भारत में प्रसिद्ध जैन धार्मियों के मेरुमणी विद्वान, प्रतिभावंत, संत शिरोमणि आचार्य १०८ विद्यासागर मुनिराज का यह संयम स्वर्ण महोत्सव सम्पूर्ण देश में बड़े धूमधाम से मनाया जा रहा है। उनकी प्रतिभा और उनके प्रवचन का अनुभव याने अमृत कुंभ का पान करने जैसा लगता है। उस में भी 'मूकमाटी' जैसा महाकाव्य उनके प्रतिभा का मनोरम स्वप्न मानो शुद्ध रूप हुआ है।

मेरे भाग्य से उनका बहुत सारा साहित्य, समग्र प्रवचन ग्रन्थ पढ़ने का मौका मुझे मिलाथा। 'विद्या से विद्यासागर' इस छोटे चरित्रात्मक किताब का मराठी भाषानुवाद भी मैंने किया था। इन सबके कारण उनके विचारों का प्रभाव मुझ पर था। इसी दरम्यान अचानक 'मूकमाटी' महाकाव्य पढ़ने की और उसका मराठी भाषानुवाद करने की सूचना मुझे मिली। यह महाकाव्य पढ़ना, उसका रस ग्रहण करना और उसके साथ मराठी भाषानुवाद करना यह मेरे लिए सौभाग्य था। यह स्वर्ण संधी मेरे लिए आनंद देने वाली घटना थी।

सामान्य लोगों की दृष्टि से 'मट्टी' एक तुच्छ पददलित उपेक्षित वस्तु समझी जाती है। लेकिन 'मट्टी' एक सृजन की जननी; सृष्टि निर्मिती व गंगोत्री, चेतन अचेतन का विकास करने वाली, प्राणिमात्रों का संवर्धन करने वाली वह एक दिव्य भूमि भी है। वह इतिहास की जीतीजागती बखर; एक चिरंतन जन्म स्थान एक शाश्वत पुण्य भूमि है, और उत्तम क्षमा की आदर्श मिसाल भी है।

इस चिरंतन 'मट्टी' की युग-युग से चल रही कर्म कहानी, वर्तमान, भूत, भविष्य में उसका न बदलने वाला स्वरूप, उसका मूक रुदन सदैव चल रहा है। ऐसी मट्टी की तुच्छता से चरम भव्यता का दर्शन, उसका शुद्ध स्वरूप की ओर जाने का प्रयास इन सबका वर्णन आचार्यश्री करते हैं। इस में आचार्यश्री की प्रतिभा, उनकी कल्पना शक्ति, आध्यात्म शक्ति, अभ्यास की उत्तुंगता दिखायी

देती है। उनकी निर्मल पवित्र वाणी 'मुक्त छंद' काव्य प्रकार की परियोजना यह सब 'मूकमाटी' की काव्यानुभूति अंतरंग को लयबद्ध बना देती है। आचार्यश्री का त्यागी जीवन, उनकी तपस्या, अलौकिक बुद्धिमत्ता, अपार कल्पना सामर्थ्य, आध्यात्मिक काव्य प्रतिभा, जिसकी प्रचीति इस महाकाव्य में जगह-जगह पर आती है। 'शुद्ध चेतन' ही अणु की उपास्य देवता है।

क्षण भंगुर जीवन का अर्थ बताने वाला, आक्रोश करने वाला यह मट्टी का मूक रूदन समझ लेना जरूरी है। उसके साथ मर्त्य मट्टीका यह अमर गान हृदय से गाना चाहिए और उसमें छिपा हुआ अमरत्व खोजना चाहिए।

कंकर पत्थरों से भरे हुए इस पददलित स्वरूप से मट्टी का प्रयास शुरु होता है, कुंभकार उसका मंगल कलश बना देता है; इस परिवर्तन का दीर्घ प्रवास आचार्यश्री वर्णन करने है। यह करते समय अनेक प्रसंग, घटना, लोकजीवन के अनेक उदाहरण देते हैं। निसर्ग वर्णन करते समय सृष्टि का सूक्ष्माति सूक्ष्म दृष्टि से किया हुआ अवलोकन, सरीता, सागर, सरोवर, पशु, पंछी, भ्रमर, वृक्ष, लता इन सबका वर्णन, उनका वैशिष्ठय और उसका घटना प्रसंग बताते हुए किया हुआ समयोचित नियोजन, यह सब उनकी उच्चकोटी की प्रतिभा शैली का दर्शन देती है और अपना मन प्रसन्न कर देती हैं। इनके माध्यम से किया हुआ तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन हम आसानी से समझ सकते हैं। इस महाकाव्य में शुब्दों कोअर्थ मिला है, और अर्थ को परमार्थ का संयोग मिला है। मनुष्य जीवन का गूढ़ रहस्य, नश्वरता मे अमरता, मृत्यु की मूढ़ता इन सबका आशय़ सम्पन्न भाव काव्य में ़दृष्टि गोचर होता है। शुदत्ध चेतन दर्शन ही अन्तिम ध्येय माना है। समता, संयम, अपरिग्रह, अहिंसा इन शाश्वत जैन तत्त्वों का उद्घोष इस काव्य में समाया हुआ है। मन, वचन, काया की शुद्धता रखना यही मनुष्य जीवन की सार्थकता बताती है। यह शाश्वत जैन तत्त्वज्ञान बताते समय वे महाकाव्य में बीजाक्षरों के चमत्कार, मंत्र विद्या का आधार, आयुर्वेद शास्त्र का महिमा, अंकों के चमत्कार, शब्दों की कसरत, आधुनिक जीवन प्रणाली की मिसाल इन सब की जानकारी भी देते हैं। इसलिए 'मूकमाटी' यह एक अध्यात्म प्रचूर, रोचक, महाकाव्य बना है।

आचार्य श्री के यह सभी भावतरंग और विचारों की उत्तुंगता मराठी भाषानुवाद महाकाव्य में भी रुबरु आती है, उसके कुछ उदाहरण यहाँ देना चाहती हूँ।

पहिले खंड के शुरुआत में निसर्ग वर्णन करते हैं-

हिन्दी- ''लज्जा के घूंघट में डुबती सी कुमुदिनी
प्रभाकर के कर छुवन से बचना चाहती है वह,
अपनी पराग को-सराग मुद्रा को
पांखुरियो की ओट देती है।''

मराठी भाषानुवाद- '
'सलज्ज पदरा आंड लपत से, विकासोन्मुख कुमुदिनी,
प्रभाकराचे मृदुकर देखिल, नकोत तिजला त्याचे स्पर्शन
पराग रूपि सराग मुद्रा, पाकुलीयांचे घेते चुंबन''

इस तरह का कोमल, भावपूर्ण, शद्धाविष्कार आचार्यश्री के विचार तरंग रुबरु दिखाते हैं। ऐसे ही दूसरी जगह सरिता तट की मट्टी अपना हृदय खोलती है।

हिन्दी -

''स्वयं पतिता हूँ और पातित हूँ औरों से
अधम पापियों से पददलित हूँ माँ
सुख मुक्ता हूँ दुःख युक्त हूँ तिरस्कृत त्यक्ता हूँ माँ
इसकी पीड़ा अव्यक्तता है,व्यक्त किसे सम्मुख करु''

मराठी भाषानुवाद -

''स्वयं पति मी वरि पतिता, अधम पापी पद स्पर्शे दलिता
विन्मुख सुखाशी सन्मुख दुःखा तिरस्कृत मी अन् परित्यक्ता
व्यथा तयाची अंतरी सलते, कशी करुं मीतिजला व्यक्ता''

यहाँ भी मट्टी का दुःखी अंतरंग भाव रुबरु प्रतित होता है । इस तरह 'कुंभकार' के नामकरण के बारे में आचार्यश्री लिखते हैं -

(३) हिन्दी -

युग के आदि में इस का नामकरण हुआ है कुंभकार
'कु' यानी धरती और 'भ' याने भाग्य यहा पर जो
भाग्यवान भाग्यविधाता हो कुंभकार कहलाता है।
यथार्थ में प्रति-पदार्थ वह स्वयंकार होकर भी
यह उपचार हुआ है, शिल्पिका नाम कुंभकार हुआ है

मराठी भाषानुवाद -

युगारंभी कुंभकार नामकरण होते
कुंभकार 'कु' घोतक धरती चे
'भ' कारआहे भाग्याचा जो, जो कोणी भाग्य विधाता
नसे कशी त्या कुंभकारिता
उपादान मृत्तिका खरे तर कुंभाकार तर निमित्त कारण
समवायाहान महत्त्व त्याला त्यावाचून नच कार्य प्रेरण-
कुंभकारता म्हणून त्याला

यहाँ उपादान कारण से कर्तृत्व वाचक निमित्त कारण श्रेष्ठ दिखाया है।
एक जगह आचार्य श्री लेखनी द्वारा पूछना चाहते हैं -

४) हिन्दी-

''यहाँ पर इस युग से लेखनी पूछती है कि
क्या इस समय मानवता पूर्णता मरी है ?
क्या यहाँ पर दानवता आ उभरी है...
लग रहा है कि मानवता से दानवता कहीं चली गयी है?''
और फिर-दानवता में दानवता पली ही कब थी वह ?

मराठी भाषानुवाद -

''इथे नांदत्या कलि युगाला सत्य लेखणी प्रश्न करी
मानवता या भू लोकावर मरुन गेली कां सगळी ?
दानवतेची पिकली पोळी दान भावना लुप्त लळी
मुळात दानवतेच्या हृदयी दान भावना होती कधी ?''

'वसुधैव कुटुम्बकम्' इस भारतीय पुरातन उदात्त भावना का आधुनिकीकरण कैसे हुआ है इसका वर्णन करते हैं -

५) हिन्दी -

''वसुं यानी धनद्रव्य, धन ही कुटुम्ब बन गया है
धन ही मुकुट बन गया है जीवन का''

मराठी भाषानुवाद -

''वसुधा माझे कुटुम्ब म्हणण्या, व्यक्ति उरलया नाही कुठे
एक बदल परि निश्चित झाला कुटुम्ब वसुधा अर्थ बदलला
वसु शुद्धाचा द्रव्य अर्थ तो कुटुम्ब बनला कायमचा
मुकुट बनला स्वार्थाचा''

इस तरह के कितने सारे सैद्धांतिक उदाहरण पहिले खंड में हमें मिलते हैं।

दूसरे खंड में साहित्य क्षेत्र के अनेक आयाम उद्घटित होते हैं। षड्रसों का वर्णन, शांत रस का महिमा जो संतों के अंतरंग में सदैव गूंजन करता है, इसका अलौकिक वर्णन, बदलते ऋतओं की महिमा और सृष्टि में होने वाला परिवर्तन उसकी मौलिकता और इनके माध्यम से किया हुआ तत्त्वदर्शन सराहनीय है।

(१) ''राग द्वेष आदि वैभाविक अध्यावसन का कारण है।''
चक्रि का चक्र वह जो भौतिक जीवन के अवसान का कारण है कुलाल चक्र यह वह सान है।''[६]

(२) ज्ञान ज्ञेयाकार हुआ और ध्यान ध्येयाकार

(३) जब रति साथ देती है जो मान से प्रमुख होती है

इस तरह की मौलिक सिद्धांत की काव्य पंक्तियां इस महाकाव्य में सभी जगह बिखरी हुयी मिलती है।

शुद्ध का अर्थ समझना बोध है और यही बोध आचरण में लाना शोध है। ''उत्पाद, व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्'' इस सृष्टि के नियम का व्यावहारिक भाषा में विवेचन किया है, कहते हैं ''आना'' याने जनन उत्पत्ति ''जाना'' याने मरण व्यय, ध्रौव्य याने स्थैर्य, स्थिरता है। यह संसार का सत्य और तथ्य है, यह शाश्वत सत्य इस सूत्र से समझाया है।

तीसरे खण्ड में ''दया'' धर्म का मूल है, इसका प्रतिपादन किया है। इस खंड में, माता का सन्मान, महिला, नारी, कुमारी, सुता, इन शब्दों के अर्थ, और यह अर्थ महिलाओं के लिए, उनका व्यक्तिमत्त्व दिखाने के लिए कितने महत्वपूर्ण है। इसका वर्णन सुलभता से किया है। माटी के विकास के लिए पुण्य कर्म श्रेयस्कर है और पापकर्म कितना अनर्थकारी है इसका विवेचन भी करते हैं। सत्यधर्म का जयजयकार और महती बताते हैं। चंद्र, सूर्य, तारामंडल, मेघ, जलधी, इनकी विशेषता और भावतरंग दिखाने के लिए उनका यथोचित इस्तेमाल किया है। भेद से अभेद की ओर प्रवास करते समय समत्व दृष्टि का महत्त्व कथन करते हैं। साधक की अंतरदृष्टि में निरंतर **साधना** की यात्रा होनी चाहिए, यह संदेश भी हमें मिलता है।

चौथा खंड बड़ा और विस्तृत वर्णनात्मक है। मट्टी का कुंभ बन जाता है, उसके जीवन की इतिश्री हो जाती है तब साधक पूछतेहैं मुक्ती-तृप्ति किससे मिलती हैं ? तब संतश्री उत्तर देते हैं मर्म बताते हैं ''अध्यात्म सदा चिद्रुपात् चि, भास्वत है शाश्वत है।'' सेवक परिपक्व कुंभ हात में लेता है और हाथ से बजाकार देखता है। उसमें से मानो सा, रे, ग,म की ध्वनि निकलता है, सका आचार्यश्री अद् भुत अर्थ निकालते हैं सा-रे-ग-म, याने सभी प्रकार के दुःख प..ध.. याने पद स्वभाव और नि, याने नही, दुःख आत्मा का स्वभाव नहीं है। ''ऐसी ही यह अद्भुत शक्ति अपूर्व संगीत कैसे आता है ?'' इस सवाल का जवाब देते हैं - **''अविरत श्रम दृढ़ संकल्पि मन। सत् संस्कार का सार्थक''**

यह संदेश युवा नयी पीढ़ी को मार्गदर्शन देता है।

ऐसे ही मृदुंग का ध्वनि - **''धा धिन् - धिन् धा...।''**

इस संगीत सुरों में चित्त की चिन्ता चली जाती हुयी संतश्री को दिखती है। इस खंड में मुनि आहार का विधिवत् विस्तृत वर्णन किया है। भक्तों की भावना आहार देने का आनंद, आहार होने के बाद लौटते समय आने वाली तृप्ति और विशाद ऐसे समिश्र भावतरंगों को आचार्यश्री वर्णन करते हैं।

इस खंड में पूजा-उपासना के उपकरण आपस में वार्तालाप करते हैं इससे मानव जाति के गुण-अवगुण और मनोभाव प्रतीत होते हैं । स्वर्ण कलश और आतंकवाद के उदाहरण से आज के भौतिक सुखवादी जीवन के संदर्भ मिलते हैं । इससे आज की समाज व्यवस्था का विश्लेषण हो जाता है। सुख, शांति, संपदा के बारे में कहते हैं धन, द्रव्य से सुख लाभ होगा ऐसा नहीं है धन के पीछे मत पड़ो यह संदेश देते हैं । तन और मन के स्वास्थ्य और आरोग्य के लिए कहते हैं । **श, ष, स,** यह तीन बीजाक्षर महत्वपूर्ण हैं। **'श'** से कषायों का शमन होता है **'स'** से समता प्राप्त होती है, और **'ष'** से पाप और पुण्य के चक्कर से बच जाते हैं । जिससे आंतरिक परिवर्तन होता है। और बाह्य शरीर चिकित्सा के लिए - माती पाणि और हवा शत रोगों की एक दवा इस तरह का संदेश देते हैं। आयुर्वेद चिकित्सा करने में उपाय नहीं, असात्म्य नहीं और खर्चा भी नहीं ऐसे आयुर्वेद वैद्यक शास्त्र की प्रशस्ती करते हैं पथ्य का महत्त्व चिकित्सा में महत्त्व बता देते हैं।

यह समग्र संसार दुःख से भरा हुआ है, सुख क्षणभंगुर वैषयिक स्वरूप का है। शाश्वत, अविनश्वर सुख कहाँ है। हमें इसकी जानकारी दो जिस तरह का आतंकी प्रश्न पूछते हैं, तब संत श्री कहते हैं। गुरु तो प्रवचन दे सकते हैं, मार्ग दिखा सकते हैं, **''आत्मा का उद्धार''** तो अपने पुरुषार्थ से करना पड़ता है; शाश्वत सुख वचनों से बताया नहीं जा सकता, उसका अनुभव करना पड़ता है। यह कहकर गुरुवर एकाग्रचित्त होते हैं और मूकमाटी परिसर निहारती रहती है।

इस मूल हिन्दी भाषा में लिखा हुआ महाकाव्य का मराठी भाषानुवाद **''मुनि समाधिसागर जी''** ने किया है; और इस तरह मराठी भाषा रूपांत का प्रयास **''प्रो. डॉ. रेखा जैन''** ने भी किया है। मूल हिन्दी महाकाव्य में जो आचार्यश्री के उत्तुंग विचार; कल्पना वैभव, भाव तरंग, अध्यात्म प्रतिपादन यह पैलू मराठी भाषा रूपांतरण में यशस्वी प्रयत्न हुआ है। भाषानुवाद करते समय मूल संहिता में आने वाला विषय, शब्दार्थ, भावार्थ, इसमें थोड़ी सी गलती और बदल न करने का प्रयास लेखक द्वयों ने किया है। दूसरी बात यह है कि, हर एक भाषा का अपना अलग अलग सौंदर्य है। जिन की जो मातृभाषा है उन्हें उनकी मातृभाषा में साहित्य पढ़ने का आनंद मिलता है; उनके लिए उसका अर्थ समझना, रस लेना आसान हो जाता है।

हिन्दी और मराठी भाषा में मुहावरें और कहावते लगभग एक जैसे हैं इसलिए अनुवाद करने में आसानी भी होतीहै और अनुवाद अर्थपूर्ण होता है। मराठी भाषा में अनुप्रास, यमक, वृत्त इनकी योजना सुलभ तरीकों से की है। इसलिए मराठी अनुवादित काव्य को संगीतमय गेयता आयी है। इसलिए दोनों मराठी भाषा रूपांतरित दोनों ग्रंथ अतुलनीय हुए हैं।

हिन्दी महाकाव्य में आचार्यश्री के तत्त्व विचार हैं;जो कहना चाहते हैं वह परिपूर्णतः मराठी अनुवादित ग्रंथों में आ चुका है।

इस अध्यात्मिक सरल महाकाव्य निर्मिति से आचार्य शिरोमणि १०८ विद्यासागर मुनिश्री ने वीतरागी श्रमण संस्कृति चिरंतन रखने में महान योगदान दिया है। उसी का लाभ सभी भक्तगण , अध्यात्मक के अभ्यासक संशोधक, साहित्य रसिक लेते रहेंगे ऐसी शुभकामना व्यक्त करती हूँ और परम पूज्य आचार्यश्री का भाव भरा वंदना करते हुए समीक्षण पूर्ण करती हूँ।

❍❍❍

आचार्य विद्यासागर एवं मूकमाटी

- बिन्दु बहिन, राजकोट

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य ही धर्म, संस्कृति, कला, ज्ञान, विज्ञान का आधार है और साहित्यकार वह नेता है, जो व्यक्ति के भावों को नियंत्रित करते हुए उन्हें कल्याण के मार्ग पर ले जाता है। ''सहित्स्य भावः साहित्यम्'' व्युत्पत्ति में यही भाव समाहित है। यदि साहित्यकार कोी साधक हो, धर्मनेता हो, धर्मनिष्ठ, धर्मप्राण या धर्मधुरीण हो तो कहना ही क्या ! वह तो व्यक्ति को मोक्ष-पथ का पथिक बनाता हुआ उनके अशेष दुःखों का शमन कर देता है।

जैन परम्परा में पुष्पदंत, भूतबलि, कुंदकुंद, समन्तभद्र, उमास्वामी, अकलंकदेव आदि अनेक आचार्यों की महती परम्परा रही है, जिन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम से असंख्यात भव्यों को मोक्षमार्ग का राही बना दिया। वर्तमान बीसवीं शताब्दी में आचार्य ज्ञानसागरजी सम साधक साहित्यकार ने इस परम्परा को कायम रखा, तो आचार्य ज्ञानसागर रूपी पारस पत्थर का स्पर्श पाकर आचार्य विद्यासागर रूपी स्वर्ण की वाग्धारा में प्रवाहित अनेक संस्कृत, व हिन्दी साहित्यदृष्टि ने समग्र साहित्यसृष्टि को स्वर्णिम बना दिया और इसमें छंदोमुक्त अध्यात्मपरक प्रथम हिन्दी महाकाव्य मुकुट शिरोमणि समान है।

तपस्वी संत उत्कृष्ट, साहित्य साधक और विरल मनीषी की यह महाकृति भारतीय महाकाव्यों की समग्र सृष्टि में इसीलिये विरल एवं विशिष्ट कही जानी चाहिए कि इसमें किसी प्रभावी राजवी के चरित्र-चित्रण किसी ऐतिहासिक प्रसंग या धार्मिक विषय के बजाय तुच्छ, पददलित व साधारण सी लगने वाली माटी इसके विषयवस्तु के रूप में उभरती है। किसी महाकाव्य की रचना मूकमाटी को लक्ष्य में रखकर करना स्वयं में एक चुनौती है, या कहें कि मौलिकता का चमत्कार है। यहाँ माटी के उपर अनेक क्रिया-प्रक्रिया

दिखाते हुए अंततः उसमें से प्राप्त होने वाले शांत एवं शीतल जल सभर मंगल कलश के साथ साथ मनुष्य जीवन के फेरे गूंथ लिये गये हैं । माटी अपना अहंकार छान कर आदर-अनादर सह कर असीम समता और प्रबल सहिष्णुता का परिचय देकर सारी अग्निपरीक्षाओं से गुजरते हुए कुंभकार के हाथों कुम्भ का रूप पाती है। वह साधारण माटी से असाधारण मंगल कलश में रूपांतरित होती है, पतित से पावन बन जाती है। इस प्रकार माटी के उद्धार के प्रतीक के द्वारा कवि ने मानव-चेतना के उत्थान के अपने विराट दर्शन को बखूबी संवारा है। सामान्य बात को असामान्य बनाने वाली उनकी सर्जक प्रतिभा का तिलिस्मी स्पर्श इस ग्रन्थ में पद पद पर अनुभूत होता है।

मूकमाटी आचार्य विद्यासागर जी की आत्मचेतना पर सम्यक् साहित्यिक प्रवाह है। इसकी रचना के मूल में है - सम्यक् दृष्टि, जिसके एक छोर पर दर्शन है, तो दूसरे पर है, अध्यात्म। जैसे कि -

तैरने वाला तैरता है सरवर में
भीतर नहीं/बाहरी दृश्य ही दीखते हैं उसे।
वहीं पर दूसरा डूबकी लगाता है,
सरवर का भीतरी भाग
भासित होता है उसे,
बहिर्जगत से सम्बन्ध टूट जाता है।

मूकमाटी दिव्य मानव का अप्रतिम काव्य अवदान है। आचार्य श्री ने अपनी अध्यात्म अनुभूति को काव्य के माध्यम से उंदेल दिया है। प्रत्येक संत के पास अपना निजी भावविश्व होता है। क्रौंचयुग्म के वध की वेदना से ऋषि -कवि रामराज्य की मंगल भावना में प्रत्यावर्तित कर देते हैं। तो अपने चारों ओर बिखरी पड़ी पद-दलिता माटी की पीड़ा से स्फूट महाकाव्य में कवि एक संत-दृष्टि से जगत को देखते हुए संवेदना द्वारा विश्व की विसंगतियों को प्रकट करते हुए अंततः उसे सत्यम-शिवम-सुंदरम में समन्वित करते हैं।

मूकमाटी युगबोध का सटीक चित्रण है, तो भारतीय संस्कृति का पर्याय भी है। वर्तमान सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक और प्राकृतिक परिस्थितियों से कवि/आचार्यश्री भलीभाँति परिचित हैं। अपने वर्तमान समय, परिवेश, परिस्थितियों से बचकर, अलग रहकर, उन्हें भुला कर कोई भी कवि अपना साहित्यसृजन नहीं कर सकता। मूकमाटी में समकालीन समस्या, वातावरण से चिंतित कवि के भावों से हम बार-बार रूबरू होते रहते हैं।

ही और भी इन दो बीजाक्षरों के द्वारा भी कविश्री ने भारतीय सभ्यता, संस्कृति और पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति एवं राजतंत्र, सदाचार, अनाचार, एकांतवाद-अनेकांतवाद का सटीक चित्रण दर्शाया है।

'भी' के आसपास
बढती सी भीड़ लगती अवश्य
किन्तु भीड़ नहीं.
'भी' लोकतंत्र की रीढ़ है,
लोक में लोकतंत्र का नीड
तब तक सुरक्षित रहेगा।
जब तक 'भी' श्वास लेता रहेगा
'भी' से स्वच्छंदता-मदान्धता मिटती है
स्वतंत्रता के स्वप्न साकार होते हैं
सद्विचार सदाचार के बीज
'भी' में हैं, 'ही' में नहीं।

क्या यह कृति तपस्वी संत की है या फिर उत्कृष्ट साधक की है ? वास्तविकता यह है कि यह कृति उस संत कवि की रचना है, जो अध्यात्म एवं काव्यत्व के शिखर पर विराजमान है। और यही कारण है कि मानवीय वेदना के साथ साथ आतंकवाद जैसी जागतिक समस्या की वास्तविकता दर्शा

कर उसमें से अंततः सर्वमंगल की भावना दर्शाते हैं। इसके वास्ते उन्होंने जैन धर्म के सिद्धांतों का आलेखन किया है। अनेकांतवाद, रत्नत्रय, मोक्ष, कर्मसिद्धांत जैसे दार्शनिक विषयों को समकालीन समस्याओं के हल के रूप में दर्शाया है। किन्तु, उन्हें शास्त्रीय रूप में रखने के बजाय सर्वजन स्पर्शी बना दिए हैं। उनकी दृष्टि तो अस्तित्ववाद, अतियथार्थवाद जैसी विचारधारा के साथ साथ योग और अद्वैत की विचारधारा तक हो आती है और महाकाव्य के रचयिता की विराट विचार सृष्टि का यहाँ पर साक्षात अनुभव होता है। जहाँ जैन केवल शास्त्र-ग्रन्थों वा साधना तक सीमित रहने के बजाय समकालीन जीवन के उत्थान का सोपान बनता है।

'मूकमाटी' आत्मचरित्रात्मक महाकाव्य है। It is an autobiograrhical eric जो कवि की कलम से सहज, स्वयं, अनायास स्फूरित हुआ है। कवि के समस्त जीवन के दर्शन का यह मानो प्रतिबिम्ब है। संतकवि का समग्र व्यक्तित्व इसमें झलकता है।

मनुष्य की जीवनयात्रा का प्रारंभ मृण्मय शरीर धारण करने से होता है। एक छोटा सा तरुण अपने मृण्मय में विद्यमान चेतन जीवंतता का संस्कार एवं जीवन की कृतार्थता का अनुभव, आविष्कार करने के लिये निकल पड़ा मंगल यात्रा के लिये, बिल्कुल माटी की भांति और सदलगा का बाल ब्रह्मचारी माटी की तरह पहुँच गया गुरु के उपाश्रम में, गुरुचरण की निश्रा में। फिर गुरु की अनेक कसौटियों पर खरा उतरना अर्थात् रचनाकार स्वयं तप रूपी अग्नि की आंच में दग्ध होकर खरे सोने जैसी अपनी रचनाओं के माध्यम से खड़ा है।

आचार्यश्री स्वयं संगीत के उत्तम ज्ञाता है। उनका संगीत के प्रति पारमार्थिक प्रेम झलक रहा है निम्नलिखित पंक्तियों में :

सा रे ...ग...ग.... यानी
स भी प्रकार के दु :ख

प ध यानी पद-स्वभाव
और
नि यानी नहीं ,
दुःख आत्मा का स्वभाव-धर्म नहीं हो सकता
मोह-कर्म से प्रभावित आत्मा का
विभाव-परिणमन मात्र है यह ।

तो मंगल कलश के ऊपर विविध चित्रकारी के माध्यम से चित्रकार विद्याधर उभर रहा है। मुनि की आहारचर्या के वर्णन को तादृश करते समय हमारे जेहन में आचार्यश्री के अलावा और कोी मुनि आ नहीं सकते हैं। समग्र आहारचर्या के दौरान आचार्यश्री ने मानों स्वयं को ही ढाला है। आचार्यश्री अपनी निसर्गोपचार /आयुर्वेद के प्रति अटूट श्रद्धा सेठ की परिचर्या में दर्शा रहे हैं। कलश अपने चरित्र से स्वयं एक आदर्श स्थापित करता है तथा अपने साथ समाज को भी अपने मार्ग पर लिये चलता है। यही तो उद्घाटित हो रहा है, आचार्यश्री के जीवन में। सैकड़ों त्यागी, व्रती और भक्तों की जीवननैया पार उतर रही है आज उनके ब ोध से, उनकी चर्या से। तथापि, इन सब से परे, अलग थलग, निस्संग रह कर मूकमाटी के संत की भांति आचार्यश्री निमग्न हो जाते हैं महामौन में, अपने शुद्धोपयोग में।

ध्यान करने योग्य, शरणदायक, आत्मरूप होने से सुगम, सभी आनंदों की संपदा स्वरूप और अतिशय प्रसन्न चिदाकाशरूप परमात्मा में जो स्थित है, जो नित्य आत्मविचार में तत्पर रहते हैं, नित्य अंतर्मुख और सर्वदा सुखी, प्रसन्न हैं, और नित्य ही पुनःपुनः आदर से चित्त के आस्वादन में रममाण है, जिनका चित्त शोक, राग-द्वेष से पीड़ित नहीं हैं, ऐसे आचार्यश्री के श्री चरणों में नमोस्तु करते हुए मैं अपनी वाणी को विराम देती हूँ।

❍❍❍

आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती की जैन सिद्धांत को देन

ब्र. जिनेश मलैया, इन्दौर

श्रवणबेलगोला के पावन प्रांगण में बैठकर नेमीचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती को स्मरण करना सातिशय पुण्य का ही प्रभाव है। मेरा पूर्व जन्म का कोई महान उदय आया है जो मैं आज इस संगोष्ठी के माध्यम से गोम्मटेश के चरणों में बैठकर गोम्मटेश मूर्ति के प्रतिष्ठापक आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती द्वारा जैन सिद्धांत को दिये हुए अवदान की एक झलक प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ।

आचार्य नेमीचन्द्र जी नन्दी संघ प्रभाचन्द्र के शिष्य और भानुचंद्र के गुरु ईसवी ५५६ और ५६५ के बीच हुए। ये श्री नेमीचन्द्र आचार्य हमारे प्रस्तुत आलेख के मुख्य पात्र से भिन्न हैं। मेरे प्रस्तुत आलेख के विषयभूत आचार्य नेमीचन्द्र जी नन्दी संघ देशीगण के अभयनन्दी आचार्य से दीक्षित शिष्य हैं। वीर नन्दी और इन्द्र नन्दी आपके दो गुरु लघु भी हैं अथवा विद्या शिष्य हैं। गंग वंस के सम्राट राजमल्ल के मंत्री सेनापति वीरचामुण्डराय के गुरु हैं। प्राकृत भाषा के अधिकृत विद्वान एवं जैन सिद्धांत के पारगामी आचार्य नेमीचन्द्र जी के बिना जैनाचार्य परम्परा ही अधूरी हो जाती है। ईसवी सन् १९८१ में जैन सिद्धांत की पताका को विश्व के आंगन में स्थापित करने वाले सिद्धांत चक्रवर्ती की उपाधि से विभूषित आचार्य नेमीचन्द्र जी सिद्धांत चक्रवर्ती का जितना भी गुणगान किया जाये उतना कम है। हजार वर्ष के बीत जाने के बाद भी जैन मनीषियों के हृदय में आप आज भी विराजमान है।

जैन सिद्धांत क्रमबद्ध विधिवत वस्तुनिष्ठ होकर तत्त्व का प्रतिपादन करता है। करणानुयोग को आयाम देने का कार्य सिद्धांत से ही संभव होता है। जैन सिद्धांत में तीन विभाग बनाये जा सकते हैं।

जीव सिद्धांत विभाग, कर्म सिद्धांत विभाग और लोक सिद्धांत विभाग।

जीव सिद्धांत के अंतर्गत पूज्य आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती जी ने गोम्मटसार जीवकाण्ड ग्रंथ की रचना की तथा कर्म सिद्धांत विभाग के अंतर्गत गोम्मटसार, कर्मकाण्ड लब्धिसार, क्षपणासार जैसे महान ग्रंथों का सृजन करके जैन सिद्धांत को प्रवाहमान बनाया। लोक सिद्धांत विभाग को जनमानस तक प्रेषित करने के लिए त्रिलोकसार ग्रंथ की रचना की। तथा स्फुट रचना में गोम्मटेश थुदि लोकप्रिय बनी। गोम्मटसार ग्रंथ की रचना आचार्य नेमीचन्द्र जी ने अपने परम भक्त चामुण्डराय के संबोधनार्थ की थी।

गोम्मटसार जीवकाण्ड ग्रंथ में पूज्य आचार्य श्री ने ७३५ गाथाओं का सृजन किया। प्रस्तुत ग्रंथ में गुणस्थान का बहुत ही रोचक वर्णन किया है। प्रमाद का सविस्तार विवेचन इस ग्रंथ की खास विशेषता है एवं अधा प्रवर्तकरण अपूर्व करण और अनिवृत्ति करण का एवं प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्पत्ति का अनूठा वर्णन है जीव समास के अंतर्गत जाति योनि अवगाहना कुलकोटि का वर्णन करके जैन सिद्धांत को सरल और सरस बनाया है। प्राण पर्याप्ति संज्ञा का विषद विवेचन किया है। गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी, आहारक, उपयोग सहित बीस प्ररूपणानाओं का सटीक सुन्दर वर्णन किया है।

आलाप अधिकार के माध्यम से मार्गणाओं का पर्याप्त अपर्याप्त की दृष्टि से समन्वय किया है। ज्ञान मार्गणा में जिस प्रकार विस्तार पूर्वक पाँच ज्ञानों का वर्णन किया गया है ऐसा वर्णन कहीं देखने को नहीं मिलता है। जैन सिद्धांत के लिए यह उनकी अपूर्व देन है।

गोम्मटसार कर्मकाण्ड में देन - प्रस्तुत ग्रन्थ में ९७२गाथाओं के माध्यम से पूज्य आचार्यश्री ने कर्म सिद्धांत संबंधी अनेक नये विषयों को प्रस्तुत किया है। उनमें प्रकृति समुत्कीर्तन बन्ध उदय सत्व भंग नव प्रश्न चूलिका दसकरण पंचभागाहार स्थान समुत् कीर्तन आश्रव प्रत्यय भाव त्रिकरण चूलिका आदि। अनेक विषयों को विस्तार से समझाया है। कर्म सिद्धांत की समग्रता इस ग्रंथ में निहित है एवं प्रस्तुत ग्रंथ के माध्यम से कर्म

सिद्धांत की अनेक समस्याओं को मतभेदों के बाद भी सहज समाधान प्रस्तुत किया है। वैज्ञानिक कसौटी पर आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती का प्रस्तुत किया हुआ कर्मवाद सटीक सिद्ध होता है।

लब्धिसार – प्राकृत भाषा के इस ग्रंथ में आचार्य नेमीचंद्र जी ने ३५१ गाथा लिखकर प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति की प्रक्रिया और विधि को क्षयपोशम एवं करणलब्धि का स्वरूप बताते हुए करणलब्धि का विस्तार किया है। करणलब्धि के अंतर्गत अधःप्रवर्तकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण एवं अंतरकरणों का विशदसूक्ष्म विवेचन किया है। क्षायिक सम्यक्त्व के उत्पत्ति के नियमों एवं प्रक्रिया को भी अपना विषय बनाया है। क्षयोपशम सम्यक्, संयम लब्धि आदि अनेक विषय इस ग्रंथ में समाहित है।

क्षपणासार की देन – प्राकृत भाषा के प्रस्तुत ग्रंथ में ६५३ गाथाएं हैं। इन गाथाओं के माध्यम से श्रेणी क्षपणा विधि एवं मोक्ष के पूर्व होने वाली तेरहवें चौदहवेंगुणस्थान की प्रकिया को विस्तार सहित हृदयंगम कराया है।

त्रिलोकसार – सृष्टि विद्या का यह अनमोल ग्रंथ है। इस ग्रंथ में प्राकृत भाषा की एक हजार अठारह (१०१८) गाथाएं है जैन सृष्टि विज्ञान बहुत ही गंभीर रूप से प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत ग्रंथ में लोक के सामान्य स्वरूप को गणतीय आधार पर प्रमाणिक बनाया है। नरक वर्णन में सचमुच मे वैराग्य पैदा करने के लिए पर्याप्त हैं तदोपरांत भवनवासी व्यंतरह ज्योतिर्लोक जम्बूद्वीप एवं वैमानिक देव तथा द्वीप सागर का क्रमबद्ध प्रमाणिक वर्णन किया गया है। यह ग्रंथ सृष्टि संबंधी अनेक मिथ्या भ्रांतियों को समाप्त करने में समर्थ है।

गोम्मटेश थुदि – गोम्मटेश भगवान बाहुबली के शारीरिक सौन्दर्य के साथ उनकी अतुलनीय साधना एवं आध्यात्मिक जीवन पक्ष को बखूबी प्रस्तुत किया है। आठ इन्द्रव्रजा छन्दों के माध्यम से प्राकृत भाषा की सबसे सुंदर कृति आज भी प्रासंगिक है।

आचार्य नेमीचन्द्र जी सिद्धांत चक्रवर्ती जी ने ३७२९ गाथाओं का सृजन करके जैन सिद्धांत को समृद्धशाली बनाया है। उन्होंने जीवन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, सृष्टि विज्ञान, मानव विज्ञान, मनोविज्ञान, गणित, ज्यामिति, ठोसमिति, छाया गणित, रेखा गणित, भाषा विज्ञान, प्राकृत व्याकरण, जैसे गहन विषयों का सविस्तार गंभीर विवेचन किया है। विस्तार भय से प्रस्तुत आलेख का यही विश्राम देना मैं उचित समझता हूँ। मेरे इस छोटे से आलेख को मैंने पर्याप्त बनाने का प्रयास किया है।

जय गोम्मटेश ...

❍❍❍

चन्द्रगुप्त मौर्य और श्रमण संस्कृति

अभिनंदन सांधेलीय, पाटन

तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं

हमारी सद्आस्था को आधार देने वाले, हमारे जीवन को कल्याणमय बनाने वाले, हमारी धार्मिक परम्परा को अहिंसा मूलक संस्कृति की ज्योति प्रकाशमान रखने वाले, जन-जन का कल्याण करने वाले हमारे तीर्थंकर ही है। जन्म-मरण के भवसागर से उठाकर अक्षयसुख के तीर पर ले जाने वाले हमारे तीर्थंकर प्रत्येक युग में तीर्थ का प्रवर्तन करते हैं अर्थात् मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करते हैं। जिन बाहुबली की चरण वन्दना से यह आलेख प्रारम्भ हुआ वह तीर्थंकर नहीं है, दक्षिण भारत में उनका जन्म नहीं हुआ, किन्तु कैसी शुभ स्थिति है कि वह भगवान आदिनाथ से पहले मोक्षगामी हुए। जिन परम पूज्य भद्रबाहु ने ७०० से अधिक दिगम्बर मुनियों के साथ दक्षिण भारत की धरती को अपने चरणरज से पवित्र किया, उनका अनुगामी शिष्य एक ऐसा सम्राट जिसके शौर्य और युद्ध का चातुर्य का बखान विश्व इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य के नाम से करता है।

इतिहास संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। इतिहास हमें प्राचीन सभ्यता से परिचय कराता है। इतिहास की सुरक्षा ही संस्कृति की सुरक्षा है। एक सच्चे इतिहासज्ञ को धर्म के व्यामोह और जातिगत पक्षपात से बहुत दूर रह कर सोचना होता है।

चन्द्रगुप्त के जैन धर्मानुयायी होने के विषय में **इतिहासवेत्ता रीस डेविड्स** का निम्न कथन अवलोकनीय है -

''चूँकि चन्द्रगुप्त जैन धर्मानुयायी हो गया था, इसी कारण जैनतरों द्वारा वह अगली दस (१०) शताब्दियों तक इतिहास में उपेक्षित बना रहा।'' - बुद्धिस्ट इंडिया, पृष्ठ १६४

श्रमण संस्कृति और वैदिक संस्कृति में जितना जातिगत अन्तर आज देखने में आ रहा है, उतना महावीर से पहले के युग में नहीं था। लोग भोगवाद से ऊबकर आत्मिक शांति की खोज जीवन के अंतिम पायदान पर अवश्य करते थे। वैदिक परम्परा और जैन परम्परा में चार आश्रमों की व्यवस्था प्रायः सर्वमान्य है। अन्त में संन्यास आश्रम को स्वीकारना जनमानस में सहज रूप से स्वीकार्य था।

जैन शास्त्रों में जो पौराणिक पुरुषों के आख्यान और चरित्र प्रस्तुत किये गये हैं उनमें ब्राह्मण जाति के बहुत पुरूष है। भगवान महावीर के बाद भी बहुत से महान जैनाचार्य जाति से ब्राह्मण थे। **आचार्य समन्तभद्र, पूज्यपाद, विद्यानन्द** आदि आचार्यों के नाम इस संदर्भ में ज्ञातव्य है। **'संस्कृति के चार अध्याय'** नाम पुस्तक में **रामधारी सिंह दिनकर** ने जिस उदारता से और निष्पक्षता से सभ्यता और संस्कृति का अलोड करके साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं, वे पठनीय है। कैसे श्रमण संस्कृति को अपना कर ब्राह्मण लोग आत्मकल्याण करते थे। इतिहास की दृष्टि से यह सुप्रसिद्ध है और जैन धर्म ग्रन्थ में भी इस बात का उल्लेख मिलता है कि 'मुकुटबद्ध राजाओं में अंतिम सम्राट चन्द्रगुप्त हुआ जो अन्त समय में दीक्षा लेकर सन्यास धारण कर मरण को प्राप्त हुआ।'

भारत सरकार ने इस महान शासक पर एक डाक टिकिट जारी करके गौरव का अनुभव किया है। उस डाक टिकिट के ब्यौरे में लिखा है कि - 'चन्द्रगुप्त ने लगभग २५ वर्ष तक शासन किया था। जैन मान्यता के अनुसार मुनि भद्रबाहु से प्रभावित होकर उन्होंने जैन धर्म अपना लिया था। ऐसा माना जाता है कि अपने पुत्र बिन्दुसार को राजपाट सौंपने के बाद उन्होंने आध्यात्मिक जीवन व्यतीत किया था।'

श्रवणबेलगोला का सबसे प्राचीन नाम 'कटवप्र' है। यह नाम ईसा की छठी शताब्दी के शिलालेख में है। जिसके अनुसार श्रुतकेवली भद्रबाहु और आचार्य प्रभाचन्द्र (चन्द्रगुप्त मौर्य का मुनि अवस्था का नाम) ने कटवप्र (पहाड़ी) पर समाधिमरण किया था। यहाँ के चन्द्रगिरि छोटी पहाड़ी पर श्रुतकेवली भद्रबाहु से लेकर अब तक सैकड़ों की संख्या में मुनियों एवं श्रावकों-श्राविकाओं ने सल्लेखना विधि द्वारा अपना शरीर त्यागा है और इसी से सम्बन्धित अनेकों लेख एवं बहुत चरण चिन्ह भी यहाँ है। चूंकि सम्राट चन्द्रगुप्त ने यहाँ अपने अंतिम दिन बिताये थे, इसीलिए यह पर्वत **'चन्द्रगिरि'** भी कहलाया जो आज सर्वाधिक प्रचलित है।

उत्तरापथ यदि गौरवान्वित है तीर्थंकरों की जन्मभूमि होने के कारण तो दक्षिणापथ भी पावन हुआ उनके विहार से। दक्षिणापथ की गरिमा इसीलिये भी है कि तीर्थंकरों की लोक कल्याणी वाणी को प्रसारित करने वाले गुरु, उनके साधना मार्ग को जीवन में उतारकर साक्षात् दिखने वाले आचार्य प्रायः दक्षिण में ही जन्में हैं। यहीं उन्होंने अपनी साधना के द्वारा श्रमण संस्कृति की प्रभावना की है। शास्त्रों की रचना और उनका दीर्घकाल तक संरक्षण भी यहीं हुआ है।

भद्रबाहु स्वामी ऋषिराज थे। सम्राट चन्द्रगुप्त 'प्रभाचन्द्र स्वामी' बनकर राजर्षि हुए। मौर्य साम्राज्य की स्थापना के समय से ही चन्द्रगुप्त और चाणक्य दोनों पर आचार्य भद्रबाहु का प्रभाव था। इसी का फल था कि दोनों ही महापुरुषों ने दिगम्बरी दीक्षा धारण करके अपने जीवन का परिष्कार किया।

चाणक्य ने मुनिपद की साधना उत्तरापथ में सम्पन्न की। आचार्य भद्रबाहु के सम्पर्क के कारण चन्द्रगुप्त के विचारों में धीरे-धीरे उदासीनता आती गयी। मगध का शासन अपने पुत्र बिन्दुसार को सौंपकर शान्त जीवन व्यतीत करने के लिए उन्होंने अपने साम्राज्य की उप-राजधानी उज्जयिनी को अपना निवास बना लिया। आज का उज्जैन ही यह उज्जियनी है।

महावीर के पश्चात् इस देश में अनेक शताब्दियों का इतिहास, इसी श्रमण संस्कृति का इतिहास है। श्रेणिक बिम्बसार के सम्बन्ध में महावीर का आख्यान अत्यन्त मुखर है। थोड़े बहुत व्यवधान को छोड़क़र उत्तरापथ के राजाध्यक्षों और सम्राटों के मस्तक जैन मुनियों के चरणों में सदैव नमनशील रहा है। जैन संस्कृति के संरक्षण में इन सबका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त इसी श्रृंखला की एक कड़ी थे। आचार्य भद्रबाहु चन्द्रगुप्त के कुल गुरु थे।

चन्द्रगुप्त मुनिराज की साधना और सल्लेखना के दो स्मृतिचिन्ह आज भी चन्द्रगिरि पर्वत पर सुरिक्षत है। पहिला 'कटवप्र' का नाम चन्द्रगिरि उन्हीं के नाम पर, छोटे जिनालय का पुननिर्माण होने पर उसका नाम **'चन्द्रगुप्त बसदि'** है। चन्द्रगुप्त बसदि के एक विशाल, शिलाफलक पर भद्रूबाहु और चन्द्रगुप्त की वह गौरव गाथा, जिसमें उत्तरापथ से दक्षिणापथ के लिए उनके निष्क्रमण का सम्पूर्ण आख्यान पाषाण फलकों पर अंकित कर दिया है। इन पाषाण फलकों पर चन्द्रगुप्त-भद्रबाहु की कथा मूर्ति-चित्रों के रूप में उत्कीर्ण हैं। उनकी संख्या ९० हैं।

चन्द्रगुप्त के जीवन में कितने आरोह-अवरोह घटित हुए थे। इतिहास के इस अद्वितीय ऐश्वर्यशाली सम्राट का राजसिंहासन से असमय उतरना, सम्राट के मुकुट और छत्र का अनायास त्याग कर देना, अकारण नहीं था। चिन्तन की ठोस धरातर पर ही सम्राट चन्द्रगुप्त के अनुपम त्याग का भवन स्थापित हुआ था।

जीवन के प्रारम्भ में ही अपनी महत्वाकाँक्षाओं से प्रेरित चाणक्य के मार्गदर्शन में उत्कर्ष की ओर एक-एक पग धरता हुआ, हर पग पर बाधाओं का संहार और कष्टों का विमोचन करता हुआ चन्द्रगुप्त साम्राज्य के सिंहासन तक पहुँचा था। वह सिंहासन किसी का व्यक्त उपकर नहीं था, किसी का भोगा हुआ विभव नहीं था, जिसका निर्माण चन्द्रगुप्त ने अपने पुरुषार्थ से किया था। हिमालय से लेकर दक्षिण समुद्र तक, दक्षिणावर्त, आर्यावर्त और उसकी सीमाओं के पार तक, एक-एक अंगुल भूमि पर अपनी भुजाओं के बल पर चन्द्रगुप्त ने अपनी प्रभुता स्थापित की थी। वह साम्राज्य सही अर्थों में उसका स्वभुजोपार्जित साम्राज्य था। इतने बड़े साम्राज्य के विधिवत् संचालन के लिये चन्द्रगुप्त ने प्रांतीय राजधानियाँ स्थापित की, जहाँ उसके राज्यपाल शासन-सूत्र का संचालन करते थे। गृहप्रदेश में पाटिलपुत्र में सम्राट स्वयं शासन की बागडोर सम्हालते थे।

चन्द्रगुप्त के जीवन में कुछ ऐसी घटनाएं घटी थी जिनसे उसे चिन्तन के अनेक आयाम प्राप्त हुए थे। नन्दों का मूलोच्छेद करके उसने अपने हाथों ही एक शक्तिशाली राजवंश को इतिहास के गर्त में गाड़ दिया था। इस प्रतापी सम्राट ने अपनी मातृभूमि के सीमान्तों से भी विदेशी सत्ता का उन्मूलन कर दिया था। चन्द्रगुप्त की राज्य सीमाओं को आदर्श मानकर ही कौटिल्य(चाणक्य) ने अपने ग्रन्थ में चक्रवर्ती-क्षेत्र की परिभाषा का विधान किया था।

राजनीति के संचालन में किस प्रकार राजा और सम्राट कठपुतली बनकर रह जाते हैं, सिंहासन की मर्यादा कितनी पराधीनताओं में उन्हें जकड़ देती हैं, यह अनुभव चन्द्रगुप्त प्राप्त कर चुके थे। तत्कालीन कूटनीति में प्रयुक्त होने वाली विषकन्याओं से चन्द्रगुप्त के जीवन की सुरक्षा के लिये, उन्होंने बिना बिताये चाणक्य उनके भोजन में संतुलित विष का प्रयोग करते थे। धीरे-धीरे चन्द्रगुप्त को विष का ऐसा अभ्यस्त बना दिया, जिसमें विषकन्याओं का सम्पर्क उन्हें हानि न पहुँचा सके।

एक दिन अपने उसी क्वचित विषाक्त भोजन का एक ग्रास कौतुहल एवं स्नेह वश अपनी प्रिया को खिला दिया। क्षण मात्र में ही उस गर्भवती रानी पर विष का प्रभाव परिलक्षित होने लगा। चाणक्य ने शल्य चिकित्सा के साधन जुटाकर गर्भस्थ शिशु को जीवित बचा लिया, किन्तु रानी के प्राण रक्षा न हो सकी। विष के प्रभाव से मस्तक पर एक श्याम बिन्दु बन गया। उसी बिन्दु को देखकर और जीवन का सार पुत्र में सोचकर उसका नाम बिन्दुसार रखा, वही बिन्दुसार, युवा होकर साम्राज्य का उत्तराधिकारी हुआ।

अपनी प्राणप्रिया की मरण वेदना से छटपटाती ही देह का स्मरण कर चन्द्रगुप्त कांप जाते थे। निरीहता और विवशता ने महीनों चन्द्रगुप्त को निद्रावरोध किया। जब-जब वे सोचते कि षड़यन्त्र भरी राजनीति के चक्र का एक निर्जीव सा यन्त्र बन जाने के कारण उन्हें अप्रिय घटना झेलना पड़ी, दारुण दुःख उठाना पड़ा, तब अपने साम्राज्य की अटूट सम्पदा के प्रति उनका मन विरक्त से भर उठता था।

इस घटना ने चन्द्रगुप्त के जीवन की दिशा ही बदल दी। राजकाज करते हुए भी उसमें कोई आनंद अब उनके लिये शेष नहीं था। राज्य, लक्ष्मी और भोगों के रस अब उन्हें बे-रस लगने लगे। चाणक्य की अनेक वर्जनाओं को टालते हुए उन्होंने साम्राज्य संचालन से अपने आपको मुक्त करने का निर्णय लिया। अपने निर्णय को क्रियान्वित करने के लिए सुदृढ़ योजनानुसार बिन्दुसार को पाटिलपुर का उत्तरदायित्व सौंप कर चन्द्रगुप्त का उज्जयिनी निवास इसी योजना का प्रथम चरण था।

सम्राट चन्द्रगुप्त के उज्जियनी पहुँचने पर उसी वर्ष ऐसा सुयोग हुआ कि उसके गुरु, आचार्य भद्रबाहु ने उज्जयिनी में ही अपना वर्षावास स्थापित किया। चार माह तक गुरु के सान्निध्य में दार्शनिक ऊहापोह का दुर्लभ अवसर, चन्द्रगुप्त को प्राप्त होता रहा। गुरु के प्रति अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति होते हुये भी चन्द्रगुप्त के व्यस्त जीवन में ऐसे अवसर बहुत ही कम आये, जब निश्चिन्त और निर्द्वन्द्व भाव से गुरु-वाणी का श्रवण करने की, उस पर चिन्तन, मनन करने की सुविधा उपलब्ध ही हो।

वीतराग निर्ग्रन्थ आचार्य की जीवन पद्धति को पहली बार उन्होंने निकट से देखा। **आचरण में अहिंसा, वाणी में स्याद्वाद और चिन्तन में अनेकांत का समावेश हो जाने पर मनुष्य का जीवन कितनी महानताओं से मण्डित हो जाता है, वह चमत्कार वे प्रत्यक्ष देख रहे थे। समता परिणामों से जिस निराकुलता की प्राप्ति होती है, उसका अनुभव उन्हें हो रहा था।**

जब चातुर्मास के थोड़े-थोड़े दिन शेष थे, तब एक दिन रात्रि के पिछले पहर में सम्राट चन्द्रगुप्त ने सोलह दुःस्वप्न देखे। आचार्य महाराज ने निमित्त ज्ञान के आधार पर इन स्वप्नों का अर्थ कहा, उस वाणी ने सम्राट के भीतर पनपती ही वैराग्य की भावनाओं को प्रोत्साहित किया। सम्राट के स्वप्नों की परिभाषा ने सभी को अकुलित कर दिया। आचार्य भद्रबाहु द्वारा विचारित बारह वर्ष के अकाल की भविष्यवाणी, अब लोगों को और भी भयानक लगने लगी। सम्राट चन्द्रगुप्त की मनोदशा इन स्वप्नों के उपरान्त और भी अशान्त हो गयी। उनके मन का वैराग्य, समुद्र में ज्वार की तरह हिलोरें लेने लगा।

आचार्य भद्रबाहु आहार के लिये नगर में आये। पालना में झूलते हुए बालक ने कहा, 'मुनिराज! यहाँ से शीघ्र चले जाओ। इस घटना से भद्रबाहु ने निमित्तज्ञान से जाना था कि बारह वर्ष का दुर्भिक्ष पड़ने वाला है। भद्रबाहु आहार लिये बिना लौट गये। संघ में उन्होंने कहा, अब संघ को समुद्र के समीप दक्षिण देश में जाना होगा।'

इस बार चन्द्रगुप्त की दक्षिण यात्रा एक विलक्षण यात्रा थी। अब वे मौर्य साम्राज्य के विस्तार के लिये विजय यात्रा पर नहीं निकले थे, वरन् स्व साम्राज्य का स्वामित्व पाकर श्रमण संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिये विहार कर रहे थे। **अब उनके साथ चतुरंगणी की नहीं, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपरूप चार आराधनाओं की शक्ति थी। अब पूर्व-पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, इन चार दिशाओं की विजय के लिये नहीं क्रोध-मान-माया और लोभ इन चार कषायों को जीतने के लिये उनका अभियान था। अब धनुष-बाण तलवार के स्थान पर सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र के रत्नत्रय का त्रिशूल ही उनका अस्त्र था। जन-मन को आतंकित करने वाले**

राजदण्ड के स्थान पर अब उनके हाथों में जीव मात्र के अभय का आश्वासन देने वाली मयूर पंख वाली पिच्छी शोभायमान थी।

चन्द्रगुप्त मुनिराज की समाधि साधना भी उनके गुरु भद्रबाहु की साधना की तरह निर्दोष और दृढ़ परिणामों के साथ सम्पन्न हुई। भारत भूमि के विशालतम साम्राज्य के अधिपति महान् सम्राट चन्द्रगुप्त ने जीवन के सन्ध्याकाल में समस्त बहिरंग और अंतरंग परिग्रह का त्याग करके, उत्कृष्ट आराधनापूर्वक, अपनी पर्याय के विसर्जन को बड़ी कुशलता से नियोजित किया। जीवन के अंतिम चरण में, अवश्यम्भावी मरण को सोत्साह साधने वाले उनका वह संयत आचरण सचमुच अनुकरणीय योग्य था।

इस प्रकार भगवान महावीर की परम्परा की दो अनुपम और अंतिम विभूतियों ने अपनी साधना द्वारा चन्द्रगिरि पर्वत को पवित्र किया। समस्त आगम के पारगामी श्रुतज्ञों की श्रृंखला में जैसे भद्रबाहु अंतिम श्रुतकेवली थे, वैसे ही मुकुट उतारकर केशलोंच करने वाले राजभवन से सीधे ही वनगमन करने वाले, अंतिम मुकुटधर नरेश सम्राट चन्द्रगुप्त। उनके पश्चात् किसी मुकुटबद्ध नरेश ने जिनदीक्षा धारण करने का साहस नहीं दिखाया।

'उड़ीसा में जैन धर्म' के कृतिकार डॉ. लक्ष्मीनारायण साहू ने लिखा है कि श्रवणबेलगोला की प्राचीनता के बारे में स्पष्ट कहा है कि दक्षिण भारत में श्रुतकेवली भद्रबाहु अपने शिष्य चन्द्रगुप्त मौर्य को और अनेक जैन साधुओं को साथ लेकर सबसे पहले ईसा पूर्व २९८ में पहुँचे थे।

'कल्याण' मासिक पत्रिका ने १९५० में अंक में लिखा है - **भारत सीमान्त से विदेशी सत्ता को सर्वथा पराजित करके भारतीयता की रक्षा करने वाले सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य जैन आचार्य भद्रबाहु स्वामी से दीक्षा ग्रहण की थी। उनके पुत्र बिन्दुसार थे। सम्राट अशोक उनके पौत्र थे। कुछ दिन जैन रहकर बाद में वे बौद्ध हो गये थे।**

ooo

आत्मानुशासित आचार्य महासंत श्री विद्यासागर जी महाराज ८१ गुणों के स्त्रोत गंगा

बाल ब्र. अजित सोंरई (संस्थापक :चमत्कारिक श्री पद्मप्रभ मंदिर सम्मेदशिखर)

आचार्य परमेष्ठी- जो सर्वकाल सम्बन्धी आचरण को जानते है, योग्य आचरण करते है और अन्य साधुओं को आचरण कराते है।

३. जो संघ के संग्रह निग्रह, सूत्र, सारण, वारण, साधन आदि कार्य में निरन्तर उद्यत रहा है। आचारवान, आधारवान, व्यवहारवान, प्रकारक,आयापाय दृग, उत्पीड़क, सुखकारी और अपिस्त्रावी ऐसे आठ गुणों से युक्त हैं। बारह तप, छह आवश्यक, दस धर्म, पाँच आचार ओर तीन गुप्ति ये प्रसिद्ध छत्तीस मूलगुण।

४. जो चतुर, प्रोढ़, ज्ञान विशाल है जिनका चरित्र अत्यन्त निर्मल, क्षमा शील, गंभीर, प्रसन्न, निर्लेप अपरिग्रही, धैर्यशाली आचार्य उपाध्याय, प्रवर्तक स्थविर, गणधर नाम से जाने जाते हैं।

५. तत्कालीन स्वसमय और परसमय में पारंगत, मेरू के समान निश्चल, पृथ्वी के समान सहनशील और समुद्र के समान मल अर्थात दोषों को बाहिर फैंकने वाले, अनुशासन करने में कुशल और अवसर आने पर अपने शिष्य की यथायोग्य परिचर्या भी करते है। सल्लेखना संभालते अतः अच्छे निर्यापक हैं।

आर्यिकाओं का आचार्य परमेष्ठी- इन्द्रिय विजय गंभीर, परीषहजयी, मितभाषी, सम्यग्ज्ञानी और उत्कृष्ण चरित्र शील साधु हैं।

आचार्य की प्रशंसा- आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है परहित सम्पादनैक कार्य आचार्य वर्य दूसरे का कल्याण करना, दूसरे के कल्याण में निमित्त बनना ही एक महत्वपूर्ण कार्य है जिनका, ऐसे आचार्य भगवन्त प्रशंसनीय हैं। वे एक नाव की तरह है जो स्वयं पार होती है। और बैठने वालों को भी पार लगाती है।

आचार्य महाराज महासंत संघ का कुशलतापूर्वक संचालन करते हैं- मेरे जीवन का सुखद दिन आचार्य श्री के दर्शन सर्व प्रथम आहार जी में हुये, चार

माह में प्रायः रविवार को श्री वर्णी दिगम्बर संस्कृत महाविद्यालय साढूमल से जाता था पर कभी आचार्य श्री से अपनी बात नही रख सका। फिर सौभाग्य से पपौरा जी में चातुर्मास हो गया। क्रम प्रवचन सुनने का चल रहा था अन्तिम समय में दृढता से सोचा आज रात यही रहकर आचार्य श्री से मिलने जाना है, प्रातः ४.३० पर आचार्य श्री के मंदिर में गया। आचार्य श्री महासंत ने अपने हाथ से संकेत किया बाद में आना। हम ५.३० पर फिर गये आचार्य श्री ने कहा शौच क्रिया के बाद आज फिर गया लगभग ४५ मिनट बात चली और तीन बार पिच्छी से प्रसन्न मुद्रा में आशीर्वाद दिया। अभी तक हमने अनुभव किया कि आचार्य श्री दो बार कम से कम रूककर आशीर्वाद प्रायः प्रत्येक शिष्य को देते हैं, अब सभी के मन में यह प्रश्न उठना सहज है कि ऐसा क्यों इस संघ के आचार्य महासंत करते हैं ? क्योंकि अनुशासन, शिष्यों को अनुग्रह, आस्था, दृढ़ना, शुद्ध और अनुराग भरपुर है यह देखकते ही आचार्य श्री महासंत ऐसा करते हैं।

आत्मानुशासित- एक वीतरागी के द्वारा सिखाया गया अनुशासन का पाठ हमें आत्मानुशासित होने की प्रेरणा देता हैं। वीतरागी के द्वारा किया गया अनुशासन राग-द्वेष से प्रेरित नहीं होता। ओर मजे की बात तो यह है कि शिष्य स्वयं स्वप्रेरणा से बिना बुलाये आता है। अनुशासन का पाठ सीखने अशरण को शरण मिली है इस पंचम काल विषय कषाय की दुर्गंध वाली में से निकालकर ऊंचे स्थान पर रखने वाले आचार्य श्री महासंत की आज्ञा सहर्ष स्वीकार की है।

अन्तरंग क्षण- के समय संतो से सहज ही आचार्य श्री महासंत कहते है कि देखो, मुझे तुम लोगों को आज्ञा देने का मन करना पड़ता है, विकल्प करना पड़ता है फिर स्वयं प्रसन्न मुद्रा में कहते है कि मुझे वेतन भी इसी बात का मिलता है दृग (हठा) हुआ अंश। ये तो हमारा कर्तव्य है कितनी निस्पृहता और कितना करूणा-भाव है आचार्य महांसत को हम सब गद्‌गद है ऐसे महान गुरु को पाकर, पूर्वोपार्जित पुण्य का फल पाकर। कृपा दृष्टि आर्शीवचन पाकर।

आचार्य परमेष्ठी ८१ गुण- छत्तीस मूलगुण समानता सुने होंगे जिसका महासंत विद्यासागर जी निरन्तर पालन करते रहते हैं। इसके आगे के गुणों में पारंगत-**१. आचारवान-** जो स्वयं चारित्रवान है और दूसरों को सच्चा आचरण

सिखाते हैं। साथ में यह भी देखते रहते है कि आचरण का पालन निर्दोष रूप से किया जा रहा है या नहीं। आचरण में शिथिलता तो नहीं आ रही है। निर्दोष आचरण का पालन पूरी ब्रह्म समर्पण और प्रसन्नता से वे स्वयं करते हैं जिसमें सभी साधुओं को भी वैसा ही करने की प्रेरणा आपो-आप मिलती रहती है। हम ललितपुर दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर में लगभग तीन साल रहे वहाँ स्वप्न में अनेक बार मार्ग दर्शन किया अभी भी एक बात याद है कि कभी भी एक बहिन में क्लास नही, कम से कम तीन होना चाहिये। **२. सर्वकाल सम्बन्धी आचरण-** जो जिसमें हो, उसे उसके बारे में सारी जानकारी, अनुभव होता है। महासंत आचार्य श्री अपनी जानकारी, गुरु जी के अनुभव के माध्यम से सकुशलता पूर्वक संघ का संचालन करते हैं। महासंत जानते हैं कि किस देश-काल में कैसा आचरण करना चाहिये। कैसी और कितनी तपस्या करनी चाहिये। किसकी कितनी क्षमता है। किसी को उपवास आदि करने को मना करते हे, किसी को प्रेरणा देकर उपवास आदि कराते हैं।

३. आधारवान- समय पर शिष्य को सँभालते है, मोक्षमार्ग से विचलित नहीं होने देते। कुण्डलपुर में मेरा मन कमेटी के कुछ कार्यकर्त्ता के कारण विचलित हुआ। मैंने आचार्य श्री से कहाँ आपका व्रत आपको देता हूँ। उस समय महासंत की मुख मुद्रादि से करूणा और अमृतवाणी से जो आनंद आया उसको शब्द नहीं है परन्तु आजतक बाल ब्रह्मचारी का ब्रह्म रत्न मेरे पास है। साधक के जीवन में कर्म का तीव्र उदय आने पर परिणाम में शिथिलता आ जाती है। वह स्वयं को कमजोर महसूस करने लगता है। ऐसे समय में आचार्य श्री कहते हैं कि घबराने की कोई बात नहीं है, डरो मत मैं तुम्हारे साथ हूँ। शिष्य को आश्रय मिला, आधार मिला, खड़े होने को जीवन मिला।

४. व्यवहारवान- संघ के नायक साधुजनों को प्रायश्चित आदि देकर निर्दोष बनाने का प्रयत्न करते हैं दूसरे को प्रायश्चित देना और स्वयं भी गलती होने पर प्रायश्चित करना- ऐसी व्यवहार-कुशलता होती है आचार्य परमेष्ठी में- शिष्य ने जान बूझकर दोष किया, अनजाने में, अज्ञानतावश दोष किया, पश्चाताप का अनुभव करेगा, विनय पूर्वक स्वीकार करेगा, अहंकारवश अपने दोषों को नहीं बतायेगा या इसे अपराध- बोध नहीं है ? अपने शिष्यों का सारा व्यवहार वे

जानते-देखते और समझते हैं। उसी के अनुरुप एकान्त में या सभी के सामने अत्यन्त कुशलतापूर्वक प्रायश्चित देकर दोष मुक्त करते हैं।

५. प्रकारक- प्रकर्त्ता गुण- विपत्ति आने पर संघ की रक्षा करना। अज्ञानी जीव मोक्षमार्ग में रूचि नहीं रखते, मोक्षमार्ग से दूर रहते हैं। और मोक्षमार्ग की निंदा करते हैं। अज्ञानी जीवों द्वारा अज्ञानतावश या अभिमानवश मोक्षमार्ग पर चलने वाले साधुजनों पर आपत्ति-विपत्ति आ जाती है। ऐसी स्थिति में साधुजनों की रक्षा करना, उन्हें विपत्ति से बचाना, उनके समता परिणाम बने रहें ऐसा प्रयन्त करना। धर्मात्मा की रक्षा करना अपने ही आत्म-धर्म की रक्षा करना है।

आचार्य महासंत का जब संघ ईसरी चातुर्मास करके उड़ीसा प्रांत की ओर गमन कर रहा था तब कई जगह मुश्किले आई, एक बार सारा संघ सामायिक करने बैठा था हथियार सहित बहुत लोक मुख्य दरवाजा पर जमा हो गये। ध्यान के बाद आचार्य महासंत पीछे के दरवाजे से सकुशल सम्पूर्ण संघ को निकाल कर ले गये थे।

६. चतुरता- समता धैर्य पूर्वक सारे संघ का ख्याल रखते हुए, सबको सँभालते हुए गमन कराया। विपत्ति आपो-आप टलती हटती गई। माँ जैसे बालक का पालन पोषण और संरक्षण सहज मातृत्व भाव से करती है, ऐसा ही सहज वात्सल्य भाव रखते हुए संघ का पोषण और संरक्षण करते हैं। शिष्यों के अस्वास्थ होने पर उनका वात्सल्य झलकता है। औषधि, पथ्य आदि का मार्गदर्शन देकर रोगमुक्त होने का उपाय करते हैं। स्वस्थ होने पर प्रसन्नता व्यक्त करते हैं।

७. आयापाय-दृग, अपाय- उपायदर्शी- समस्या का निराकरण और समाधान दोनों बड़ी कुशलता से करते हैं। इसकी प्रतिकृति प्रतिभावान भाई-बहिन सहस्त्रों की संख्या में आज आत्मकल्याण के साथ धर्म प्रभावना कर रहें है। आचार्य महासंत रत्नत्रय की स्थिरता कैसे आए, रत्नत्रय का संवर्धन कैसे हो, इस बात को खूब अच्छी तरह जानते हैं।

८. उत्पीड़क सुखकारी, अवपीड़क- शरीर में फोड़ा होने पर जैसे उसकी पीप कठोरता से निकाली जाती है वैसे ही अभिमानवश या भयवश शिष्य अपने दोषों का निवेदन नहीं करता तो डॉट- डपटकर, समझा बुझाकर दोष कहलवा

देते हैं। शुद्धि का उपाय कर शुद्ध कर देते है। आचार्य महांसत का यह आचरण घड़ा मिट्टी का बनाने वाले कुम्भकार की तरह होता है। वह घड़े को तोड़ना नहीं चाहता, उसे सुन्दर आकार (शेप) देना चाहता है। ऐसे ही चोट तो बाहर से दिखती है खोट निकालने के लिए।

९. अपरिस्त्रावी- रोटी जिस पर सिकती उस तबा पर पानी की बूंद की तरह शिष्यों के अपने कहे हुए दोषों को अपने भीतर नष्ट कर देते हैं। किसी को बताते नहीं लीक नही करते। पाचन शक्ति बहुत अच्छी हैं। अपन कहते हैं कि इस व्यक्ति के पेट में बात नहीं पचती। परन्तु आचार्य महांसत दोषों को जानकर भी शिष्य के प्रति घृणा का भाव नही लाते, उस शिष्य का सम्मान भी कम नहीं होता, क्योंकि शिष्य दोषों को छोड़कर प्रायश्चित कर शुद्ध हो गया है।

१०-१९ आचारवत्व- दश प्रकार के स्थितिकल्प में स्थित आचार्य महासंत आचारवत्व गुण के धारक है १०. अचेलकत्व- सब प्रकार के वस्त्र आवरण से रहित अवस्था। ११. उद्दिष्ट आहार का त्याग चौका में अनेक बार हमने सुना है तरह-तरह के व्यंजनादि बनायें तब आचार्य श्री की चर्या नहीं हुई जिस दिन स्वयं का भोजन बनाया उस दिन पड़गाहन हो गया। व्रती श्रावक- श्राविका का व्रत सार्थक हो गया। १२. शय्याग्रह अर्थात् वसतिका बनवाने या सुधरवाने वाले के आहार का त्याग। १३. राजपिंड -राजाओं के आहर का त्याग। १४. कृतिकर्म- साधुओं की विनय हमने सुना है। हे ब्रह्मचारी जी। १५. व्रत- जिसे व्रत का स्वरूप मालूम है या अच्छी तरह व्रत को बताकर व्रत देते है। १६. ज्येष्ठ अपने से अधिक की योग्य विनय करते हैं। १७. प्रतिक्रमण नित्य होने वाले दोषों का शोधन। १८. मासैकवासता छह ऋतुओं में एक-एक पर्यन्त निवास। १९. पद्य- वर्षाकाल में चार मास पर्यन्त एक स्थान पर निवास।

अस्वस्थता- के बावजूद आचार्य महासंत खूब हंसे। सन् १९७६ गर्मी में कटनी नगर में आचार्य श्री को तीव्र ज्वर आने लगा। पण्डित जगमोहनलाल जी निरन्तर आचार्य महाराज के समीप रहकर उनकी साधना में सहयोगी थे। एक दिन मच्छरों की बहुलता देखकर पण्डित जीने रात्रि के स मय आचार्य महाराज के चारों और बहुत दूरी पर मच्छरदानी लगवा दी ताकि आचार्य महासंत को

बाधा न हो। सुबह जब आचार्य श्री ने मौन खोलते ही पण्डित जी को कहा कि पण्डित जी ! यह क्या किया आपने। पण्डित जी ने तो जबाव पहले ही सोच लिया था। सो बोले कि हे महाराज आप तो शरीर के प्रति निर्मोही है सो शरीर की सुरक्षा आपको जरूरी नहीं है पर क्या करें बुखार के कीटाणुओं से आपका शरीर इतना विषाक्त हो गया है। कि आपको काटने वाले मच्छरों को पीड़ा हो सकती है। उन बेचारों की सुरक्षा के लिए यह उपाय करना पड़ा।

सारी बात सुनकर आचार्य महासंत अपनी अस्वस्थता के बावजूद खूब हंसे। और कहा कि पण्डित जी, सारे के सारे प्राणी अपने शरीर के प्रति मोहवश ऐसे ही तर्क देकर उसकी सुरक्षा में लगे हैं और दुःख का अनुभव कर रहे हैं। मोक्षमार्ग पर चलने वाले साधक के लिए यह ठीक नहीं है। इससे धीरे-धीरे शिथिलता बढ़ती जाती है। सुरक्षा का उपाय तो ऐसा करो जिससे साधना में कमी न आए और साधना भी निरन्तर निर्बाध्य रूप से चलती रहे।

अतिथि सत्कार- सन् १९८० की बात है। आचार्य महासंत के चरणों में बैठकर बड़े-बड़े विद्वान, सागर-नगर में आगम ग्रन्थों का स्वाध्याय कर रहे थे। चर्चा आयी कि दान देने वाला बढ़ा है। उसके दान से धर्म और धर्मात्मा की रक्षा होती है। आहार-दान देते समय श्रावक का हाथ साधु से ऊपर रहता है। सभी लोग हँसने लगे। आचार्य श्री भी हंसकर बोले कि हे पण्डित जी यह भी तो बताओं कि ऊपर वाले का हाथ काँपता रहता है या नीचे वाले सब लोक चकित रह गए। इतना सटीक जबाब था कि देने वाला बड़ा नहीं है बड़ा तो लेने वाला है जो देने वाले पर कृपा करके उसके दान को स्वीकार कर रहा है। अगर लेने वाला, दान को स्वीकार न करे तो दान देने वाले का दान, सेवा करने वाले की सेवा व्यर्थ हो जाएगी।

२०-२४ संघ के आधार- २०. आचार्य, २१. उपाध्याय, २२. प्रवर्तक, २३. स्थविर और २४. गणधर ये पाँच जहाँ पर हो वहां ही साधु को रहना चाहिये संघ में। २०. **आचार्य महासंत** शिष्यों पर अनुशासन करने में कुशल। २१. **उपाध्याय महासंत** धर्म का उपदेश करने में कुशल । २२. **प्रवर्तक महासंत** मर्यादा योग्य आचरण ज्ञान में कुशल । **२३. स्थविर** शिष्यों का पालन करने में कुशल । **२४. गणधर** लोक कल्याण के लिए जिनवाणी का सार द्वादशांक के

रूप में जगत को प्रदान करने में कुशल ।

२५-३१ अपने कार्य में सप्तगुण में निरन्तर उद्यत- २५. संग्रह संघ- दीक्षा देने में कुशल । **२६. निग्रह-** शिक्षा या प्रायश्चित देने में कुशल । **२७. सूत्र-** परमागम के अर्थ में विशारद। **२८. कीर्ति-** संघ की यशोगाथा जगत में फैल रही। **२९. सारण-** रत्नत्रय की दुकान सदा चलाने वाले। **३०. वारण-** पाप, दोषों से रोकने वाले। **३१. साधन-** व्रत पालन के योग्य साधन जुटाने वाले।

हृदय से नौ स्थानों पर पिच्छी से आशीर्वाद- भक्ति रस से रंगा गुरुचरणों में पड़ा, तब शिर को मिला तीन बार पीछी से खरा। पपौरा जी, नौनागिरि जी, ललितपुर, सोनागिर जी, जबलपुर, मुक्तागिरि जी, इन्दौर, तारंगा, नेमावर में तीन-तीन बार पीछे से प्रसन्नता युक्त आशीर्वाद। बाल ब्रह्मचारी अजित को मिला।

३२-४० प्रसन्नता के नौ स्तोत्र गुण -३२ .चतुर- जो शिष्यों का संग्रह और संग्रह किये हुये का अनुग्रह उपकार करने में चतुर है। **३३. प्रौढ़-** चरित्र और ज्ञान में प्रौढ़ है। अर्थात् जिनका ज्ञान विशाल है और चारित्र अत्यन्त निर्मल है। **३४. क्षमाशील-** जो पृथ्वी के समान क्षमाशील है। **३५. गंभीर-** समुद्र के समान गम्भीर है। **३६. प्रसन्नता -** निर्मल जल के समान अत्यन्त प्रसन्न है। **३७. निर्लेप-** आकाश के समान निर्लेप है। **३८. अपरिग्रही-** वायु के समान अपरिग्रही है। **३९. छेदक-** संसार रूपी ज्वर के संताप छेदक है। **४०. धैर्यशाली-** मेरू के समान धैर्यशाली है।

बड़ो को सब सुनना पड़ता है- सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर में लगभग पांच माह सवा दो घंटा सामायिक आचार्य महासंत विद्यासागर जी महाराज के सान्निध्य में सुअवसर मिला। दोपहर की सामायिक पूर्ण होने वाली थी संत भवन के पहले जो मंदिर है उसमें एक ओर गुरुवर खड़े थे, एक और हम थे। इसी बीच में एक व्यक्ति आया जिसकी बेटी आचार्य श्री से ब्रह्मचर्य व्रत लिया था। बीच में बैठकर लगभग २५ मिनट तक क्या अपने पैदा किया है आदि अनेक कठोर, कड़वे तीखे बाण चलाये। हमको गुरुवर देख रहे थे, हम जैसे ही पैर आगे करते वैसे ही आचार्य श्री अपने हाथ के ईशारे से रोक देते ऐसा लगभग पांच बार हुआ

हमको गुस्सा तीव्रता से आ रही थी कि इस व्यक्ति को तालाब तक खीचके ले जाऊं। गुरुवर की दृष्टि और हाथ का इशारा हमें रोके रखा था। जब वह व्यक्ति चल गया तब गुरुवर हंसकर कहते है कि बड़ों को सब सुनना पड़ता है। ये है महांसत की धैर्य- क्षमाशीलता.....धन्य....धन्य.... धन्य हो।

जीवन स्मृति में गुरुवर के मुखारविन्द- ललितपुर ग्रीष्मकाल श्री अभिनंदन मंदिर की छत पर आचार्य महासंत विद्यासागर जी विराजमान थे। हमने गुरुवर से निवेदन किया प्रतिमा दीजिये। पीयूष वाणी खीरी मंदिर में से ऊठा लों जितनी चाहो।

यही पर श्रुत पंचमी के दिन आचार्य महासंत प्रवचन सभा में विराजमान थे। हमको बोलने के लिये कहा ४५ मिनट बोलने के बाद गुरुचरणों में मस्तक रखा पीछी और हाथ से तीन-तीन बार आशीर्वाद के साथ कहा कि अजित को कोई जीत नही सकता। सोनागिर में महावीर जयन्ति पर भव्य मुनि दीक्षा के बाद ४५० ग्राम का भेला (नारियल गोला) लेकर चरणों में झुका। गुरुवर हंसकर बोले कहां से उठा लाये, हमने कहा दुकानदार से माल लेकर आये तब लेने पीछी हाथ सिर पर तीन बार रखकर आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत दिया मांग की अपेक्षा प्यास अधिक हो उसी को यह रत्न गुरुवर देते हैं।

मुक्तागिर सिद्धक्षेत्र में खुले गगन में महासंत विराजमान थे। आचार्य श्री के दोनों और ब्र. राकेश जी शास्त्री, ब्र. अजित, ब्र. चन्द्रशेखर, ब्र. अरविन्द बैठे हुए थे। गुरुवर ने कहा कि ये है गुरु नक्षत्र, हमने कहाँ, तब महासंत गुरुवर अपने दोनों हाथ ह्रदय के दोनों ओर रखकर कहते है ये तो है इतने बड़े हमने भी दोनों हाथो से दोनों चरणों को स्पर्श किया। शिर को झुका ही था फिर सुअवसर मिला पीछी और हाथ का तीन-तीन बार आशीर्वाद। मन कितना भी दुःखी हो, ये प्रसंग आनंद गंगा में कललोरे करा देता है। मूकमाटी में गुरुवर कहते है कि जिस पर करूणा की जा रही है वह स्वयं को शिशु- शिष्य अवश्य समझता है।

दोनों का मन द्रवीभूत होता है शिष्य शरण लेकर गुरु शरण देकर कुछ अपूर्व अनुभव करते हैं दुःख को भूल जाते हे इस घड़ी में निशानी प्रसन्नता आसन्न भव्य की माली है। भाग्यशाली भाग्यहीन को, कभी भगाते नहीं ,प्रभो भाग्यवान्

भगवान बनते हैं।

ज्वर (बुखार) के समय चिन्तन धारा- शास्त्र में उपदेश में उसी को रस, आनन्द आता है,जिसे धर्म में प्रीति हो और संसार से भीति हो। इंदौर में समवसरण विधान के अवसर पर आचार्य महांसत विद्यासागर जी ने कहा कि तीव्र ज्वर शरीर में था फिर भी चिन्तन धारा चल रही उस चिन्तन को सुनाता हूँ-

जीवन समझो मोल है, न समझो तो खेल।
खेल-खेल में युग गया, वही खिलाड़ी खेल॥
खेल सको तो खेललो, एक अनुखा खेल।
स्वयं खिलाड़ी खेल भी, बनो खिलाड़ी खेल॥

खेल के लिए खिलौना ओर खेलने वाले की आवश्यकता होती है। जैसे ही खिलौना टूट जाता है तो बच्चें रो देते है, बड़े हंस देते है। बचपन में कपड़े के पुतरा-पुतरिया से खेलता है। जवानी में मिट्टी के और वृद्धापन में सब न पंसद हो जाता है। जब कोई तुम्हें पसंद न करे तो तुम अपने आपको पसंद कर लो आनंद आने लग जाएगा। जीवन का मोल तभी समझोगें जब अपने आपको समझोंगे। खेल में नाटक परिवर्तन होता रहा है जैसे बाल अवस्था में भाई-बहिन, युवावस्था में पति-पत्नि, वृद्धावस्था में माता-पिता। ब्रह्मचर्य है क्या ? अपने आपसे मिलन का नाम ही तो ब्रह्मचर्य है, अपने आपसे जो बात करे, अपनी मस्ती में मस्त रहे।

४१-४५ पंचाचार में रत आचार्य महांसत विद्यासागर जी - **४१. दर्शनाचार-** समस्त पर द्रव्यों से भिन्न यह निज शुद्धात्मा ही उपादेय है रूचि जिनकी ऐसा जो आचरण का परिणमन निश्चय दर्शनाचार है। सम्यग्दर्शन आठ अंगों से युक्त रूप आचरण करते सो व्यवहार दर्शनाचार है। **४२. ज्ञानाचार-** जिन शुद्धात्मा को स्वसंवेदन रूप भेद ज्ञान द्वारा मिथ्यात्म रागादि परभावों से भिन्न आचरण रूप परिणमन निश्चय ज्ञानाचार है। काल, विनय, उपधान, बहुमान, अभिनन्दन, अर्थ, व्यंजन और तदुभय सम्पन्न व्यवहार ज्ञानाचार है। **४३. चारित्राचार-** निज शुद्धात्मा में रागादि विकल्प से रहित स्वाभाविक सुखास्वाद में निश्चय चित्तरत वीतराग चारित्राचार है। मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति के कारणभूत पंचमहाव्रत

सहित तीन गुप्ति और पांच समितिरत व्यवहार चारित्राचार है। **४४. तपाचार-** स्वरूप में परद्रव्य की इच्छा का निरोध कर सहज आनन्द रूप तपश्चरण स्वरूप परिणमन निश्चय तपाचार है। अनशनादि ब्राह्यतप में रत व्यवहार तपाचार है। **४५. वीर्याचार-** निज शुद्धात्मा स्वरूप में अपनी शक्ति को प्रकटकर परिणमन निश्चय वीर्याचार है। अपनी शक्ति प्रकटकर मुनिव्रत का आचरण करते सो व्यवहार वीर्याचार है।

४६-६२ बारह तप- तप रूपी स्फुरायमान अग्नि के द्वारा कामदेव को भस्म कर दिया है, संसार समुद्र से तिरने के लिए नौका के समान आचार्य महासंत विद्यासागर जी भक्त जनों के सुख वर्द्धक है, शिष्य गणों को मुक्ति पथ के दर्शक का पहला तप। **४६. अशन त्याग-** चार प्रकार के आहार का त्याग अनशन तप साकांक्षा और अनाकांक्षा भेद वाला है। जहां एक दो दिन आदि से लेकर छह महीना पर्यंत भोजन का त्याग साकांक्षा अनशन तप है। यावज्जीवन आहार का त्याग अनाकांक्षा अनशन है। सिद्ध निष्क्रीड़ित चारित्रशुद्धि, षोड़शकारण, रत्नत्रय आदि साकांक्षा उपवास स्वयं करते है और शिष्यों के प्रेरणास्त्रोत है। आयु के अन्त में समाधि मरण के समय प्रायोपगमन में भक्त प्रत्याख्यान और इंगिनीमरण निष्कांक्षा (अनाकांक्षा) अनशन तप की सदा भावना भाते है।

४७. अवमौदर्य- ध्यान, स्वाध्याय के लिए, निद्रा को जीतने के लिये तप है। पुरुष का स्वाभाविक आहार बत्तीस ग्रास प्रमाण है। उनमें से एक ग्रास आदि हीन करके लेना अवमौदर्य तप है, जो सदा गुरुवर करते है।

४८. वृत्ति परिसंख्यान- तृष्णा को नाश करने के लिये गली, घर, दिशा, सुवर्ण, कांसी, चांदी के वर्तन पात्र, ब्रह्मचारी, कुमारिका आदि का नियम दाता संख्या, वृत्ति परिसंख्यात तप सहिजता से लेते है गुरुवर गृह, भाजन (यानी वर्तन) दाता और भोजन (सामग्री) एक दो प्रकार की लूंगा इस तरह वृत्ति चार प्रकार से आचार्य महासंत करते है। **४९. रस परित्याग-** जितेन्द्रिय गुरुवर के कायकांति प्रद मद और इन्द्रिय रूपी हाथियों के क्षोभ का निराकरण करने के लिये घी, दूध, दही, नमक, शक्कर और तेल ये छह रस में एक दो रस मात्र लेते है। नीरस आहार रूचि पूर्वक प्रसन्नता से लेते है।

५०. विविक्त शय्यासन- अध्ययन और ध्यान के बाधाओं के समूह से रहित एकांत स्थान में शयन करना दृढ़ आसन लगाकर बैठना। यह हम सबने खुब देखा गुरुवर को। **५१. कायक्लेश-** तप सूखपूर्वक लालन पोषण किया हुआ शरीर, सदध्यान की सिद्धि के लिये समर्थ नहीं होता है दमन करना, अपने आधीन करना। वीरासन कमलासन, गवासन, वज्रासन, खड़गासन में ध्यान करना, कायक्लेश - व्युत्सर्ग तप यह विचार कर करते है कि शरीर अनादिकाल का शत्रु हैं ममता के कारण इसने पूर्व में मुझे बहुत दुःख दिये हैं, इसलिये यह मर्दनीय है। ऐसा चिन्तन कर ही आचार्य महासंत सवा दो घंटों की सामायिक सदा करते हैं।

आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने भगवान कुन्थुनाथ जी की स्तुति करतेहुए लिखा बाह्यं तपः परम दुश्चरमा चरंस्त्व, माध्यात्मिकज्यपसः परिबृंह्मणार्थम् हे भगवन् ! आपने अंतरंग तप की सिद्धि के लिये कठिन से कठिन बाह्य तप किया। अंतरंग निर्मलता पर गुरुवर जोर देते है।

५२. प्रायश्चित- प्रमाद वा अज्ञान जन्य दोषों के निराकरण करने का नाम प्रायश्चित है। उत्कृष्ट चारित्र धारी या मानवों को प्रायः कहते हैं। और मन को चित्त कहते हैं। अतः मन की शुद्धि करने में आचार्य महांसत सदा करते रहे है, जिसको प्रायश्चित कहते है। पुरातन कर्मों का क्षेपण, निर्जरा, शोधन,धावन, निराकरण, उत्क्षेपण, छेदन यह सब प्रायश्चित के नाम हैं । प्रायश्चित चित्र को निर्मल बनाने की प्रकिया है। स्वयं को अपराध जनित मलिनता से मुक्त करने की कला है। विवेक, श्रद्धान, आलोचना, प्रतिक्रमण आदि दश बातें शामिल है। गुरु महाराज के समीप में जाकर वाम पार्श्व में बैठकर, पश्चाताप करना, बालकवत् सरल-भाव से अपने दोषों का निवेदन करना, अपराध-बोध होना, अपराध से मुक्त होने की भावना निरंतर आचार्य महासंत भाते हैं।

५३. विनय- पूज्य पुरुषों में यथा योग्य नम्रता आदर भाव सहज होना। आचार्य महांसत कहते हैं कि विनय अंतरंग में हो तो मुख पर वाणी में आँखों में, और समूचे व्यवहार में प्रकट होने लगती है। ५४.सम्यग्दर्शन विनय, ५५.

सम्यग्ज्ञान विनय, ५६. सम्यकचारित्र विनय, ५७. तप विनय और ५८. उपाचार विनय के भेद से पांच प्रकार की हैं। विनय से जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पालन होता है, जगत में निर्मल सत्कीर्ति रूपी लता विस्तरित है इसी गुण के कारण आचार्य महासंत विद्यासागर जी का।

५९. वैयावृत्ति- मुनियों पर व्याधि, परीषह आदि उपद्रव होने पर प्रासुक औषधि आदि से प्रतीकार होता है। आचार्य महासंत जब रोगी के सामने आ जाते है तो आधी व्याधी तो दूर हो जाती है, उसके मुख पर प्रसन्नता आ जाती। वैयावृत्ति निर्विचिकित्सत्ता, वात्सल्यत्व, सनाथता, यथोभ्युदय, निश्रेयः सुख, तीर्थंकर प्रकृति का बंध आदि अनेक गुणों की प्राप्ति कराती है। जो शरीर से थक गये हो यो मन से हार गये हों, ऐसे थके हारे तन और मन दोनों के स्वास्थ्य लाभ का उपाय करना वैयावृत्ति है सच्चे मार्ग पर चलने वाले की। आचार्य महासंत हमेशा कहा करते है कि अपने आस-पास ऐसा अनुकूल वातावरण बनाओ जिससे सभी लोग निर्विकल्प होकर अपना धर्मध्यान कर सकें। धर्म करने में बाधा न आये, इस बात का ध्यान रखना भी वैयावृत्ति है।

६०. स्वाध्याय- आत्मी हितकारी शास्त्र वाचना अध्ययन करना। स्वाध्याय करते समय मन समीचीन अर्थ के विचार करने में लग जाता है, वचन पाठ करने में नेत्र वर्णों को देखने में और कर्ण शब्दों के सुनने में लीन हो जाते है तथा सर्व इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो जाती है। इसलिए स्वाध्याय में पूर्व एकाग्रता होती है। आचार्य महासंत कहते है कि अनेक ग्रंथो की अपेक्षा एक ग्रंथ को बार-बार पढ़े। स्वाध्याय से तत्त्वों का अभ्यास होता है, प्रशम भाव वैराग्य की उत्पत्ति होती है।

६१. व्युत्सर्ग- अंतरंग और बहिरंग के भेद से परिग्रह दो प्रकार का है। उनमें अंतरंग शरीर का ममत्व क्रोधादि कषायों का त्याग करना अभ्यन्तर व्युत्यर्ग है और क्षेत्र, वस्तु आदि बहिरंग परीषह का त्याग करना, बहिरंग व्युत्सर्ग है। यह व्युत्सर्ग ही आचार्य महासंत विद्यासागर जी को ध्यान की सिद्धि का कारण है।

६२.ध्यान- अन्तर्मुहुर्त्त पर्यंत चित्र का एकाग्र होना ध्यान है। समस्त चित्तवृत्ति को रोककर आत्म स्वरूप में लीन हो जाना ही ध्यान है। आचार्य महासंत का ध्यान प्रभाव वर्तमान में दिख रहा है, अतिदूरस्थ, अतिदुर्लभ इष्ट विशिष्ट कार्य सिद्धि।

तप के द्वारा स्वयं का कल्याण तो होता ही है साथ में परोपकार भी होता है। आचार्य महासंत गुरुवर अपने आत्म-कल्याण के लिये निरन्तन तपस्या करते रहते हें और साथ में अपनी शरण में आने वाले हम जैसे पतित जीवों को बार-बार सच्चे मार्ग पर चलने का साहस जाग्रत करते हैं, जीवन को सँभालते और सँवारते हैं।

६३ से ६८ षट् आवश्यक - अवश्य करने योग्य कार्य, स्वाधीन होकर। समता, स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग। **६३. समता-** शुभ अशुभ नाम को सुनकर रागद्वेष रहित नाम समता (सामायिक) है। मनोहर और अमनोहर स्थापनादि में रागद्वेष नही सो स्थापना सामायिक है। सुवर्ण मिट्टी आदि रम्यारम्भ द्रव्यों में समदर्शी होना द्रव्य सामायिक है। सर्वजीवों में मैत्रीभाव तथा अशुभ भावों का त्याग भाव सामायिक आचार्य महासंत सदा करते रहते है। सम का अर्थ इन्द्रियों को अपने अपने विषयों में निवृत्त करके अय अपने आप में लीन होना है। अर्थात ब्राह्ममुखी प्रवृत्ति को छोड़कर अन्तर्मुखी प्रवृत्ति करना समय है और समय का भाव सामायिक है। सामायिक का ही नाम समता है।

६४. स्तवन- शुद्ध मन वचन काय से युक्त, परम आनन्द में लीन साधु, हाथ पैर धोकर, अनन्त संसार की संतति का छेद करने के लिए चैत्य (जिन प्रतिमा) चैत्यालय आदि के स्तवन परम भक्ति से जिन भगवान की स्तुति करते हैं। चौबीस तीर्थंकरों का एक साथ गुणगान करना स्तुति कहलाती है। आचार्य महासंत स्वयं प्रतिदिन पढ़ते है।

६५. वन्दना- किसी एक तीर्थंकर, क्षेत्र गुरु का गुणगान करना वंदना है। जैसे पुष्प के सम्बंध से सूत्र पवित्रता को प्राप्त होता है, इक्षुरस के संयोग से अन्न मधुरता को प्राप्त होता है, उसी प्रकार पूज्य पुरुषों के संयोग से सम्मेद शिखर जी चंपापुर, गिरनार, कैलाश, पावापुर आदि निर्वाण क्षेत्र पवित्र और वंदनीयता को प्राप्त हुये है।

६६. प्रतिक्रमण- किये गये अपराधों की स्वीकृति। व्रतों में अतिचार होने पर दैवसिक प्रतिक्रमण में १०८ श्वासोच्छवास में कायोत्सर्ग, रात्रिक प्रतिक्रमण ५४, पाथिक प्रतिक्रमण में ३००, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण ४००,

वार्षिक प्रतिक्रमण में ५००, छह प्रकार प्रतिक्रमण भक्ति के अन्त में २५ आहार करने के बाद २५, जिन साधुओं की निषद्या तीर्थयात्रादि के गमनागमन और मलमूत्र के बिसर्जन में भी २५ श्वासोच्छवास में कायोत्सर्ग करना आचार्य महासंत की विशेषता है।

६७. प्रत्याख्यान–आगामी काल में अपराधों की निवृत्ति के प्रति तत्परता। दैवसिक रात्रिक प्रतिक्रमण में सिद्ध, प्रतिक्रमण, निष्ठितकरण वीर, चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति करना। केशलोंच -दीक्षा के ग्रहण में, सिद्ध, योग, समाक्ति में भक्ति पढ़ते हैं। प्रत्याख्यान प्रतिष्ठापन क्रिया में सिद्ध, योग, आचार्य भक्ति पढ़ते है। निष्ठापन में सिद्धभक्ति पढ़ते हैं।

६८. कायोत्सर्ग – परिमित काल के लिए शरीर से ममत्व का त्याग शरीर आदि पर-पदार्थों में ममत्व छोड़कर आत्म-ध्यान में लीन होना। दैवसिक आदि निश्चित क्रियाओं में यथोक्त काल पर्यन्त उत्तम क्षमा आदि जिनगुणों की भावना सहित देह में ममत्व को छोड़ना कायोत्सर्ग है। कायोत्सर्ग के समय प्राण वायु के साथ णमोकार मंत्र का चिंतन करना। सत्ताइस श्वांसोच्छवास में नौ बार णमोकार मंत्र का प्रयोग से चिरसंचित महान कर्म राशि नष्ट हो जाती है। आचार्य श्री विद्यासागर जी महासंत कहते हैं कि जो छह माह तक निरंतर अभ्यास करता है उसके बेहोशी के समय में भी उसके श्वांसों में महामंत्र चलता है।

६९-७१ तीन गुप्ति– योगों का सम्यक् प्रकार से निग्रह करना।

६९. मनोगुप्ति– रागद्वेष आदि अशुभ भावों का परिहार करना और समता भाव में स्थिर रहना।

७०. वचनगुप्ति– असत्य भाषण आदि में निवृत्त होना अथवा मौन धारण करना।

७१. कायगुप्ति– हिंसा आदि पाप क्रिया से दूर रहना अथवा शरीर की समस्त क्रियाओं से निवृत्त होना। जैसे खेत की रक्षा के लिये बाड़ होती है अथवा नगर की रक्षा के लिये कोट होता है, उसी प्रकार पाप के रोकने के लिये संयमी साधु के गुप्तियां आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज गुप्ति ओर दर्शधर्म के प्रतिमूर्ति है।

७२-८१ दश धर्म – उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य।

७२. उत्तम क्षमा – शरीर की स्थिति का कारणभूत आहार लेने के लिए दूसरों के घर जाते समय असह्य गाली देना, कर्कश-कठोर बोलना, अवहेलना (तिरस्कार) करना, पीड़ा देना और काय के विनाश आदि कारणों के उपस्थित हो जाने पर भी मन में किसी प्रकार की कलुषता नहीं लाते।

७३. उत्तम मार्दव – महाकाव्य के नायक, सर्वाधिक दीक्षा दाता, मृदुभाषी, फिर भी भीतर और बाहर निराभिमानता रखते हैं।

७४. उत्तम आर्जव – मन, वचन और काय में सरलता रखने वाले।

७५. उत्तम शौच – लोभ और अपेक्षा रहित सर्व भव्यात्मा का कल्याण करते हैं। स्व और पर विषय जीवन लोभ, आरोग्य लोभ, इन्द्रिय लोभ और उपभोग लोभ से भी रहित हैं।

७६. उत्तम सत्य – हित-मित-प्रिय वचन सदा ही बोलते हैं। साधर्मी साधुओं व भक्तजनों की धर्मवृद्धि निमित्त ज्ञान-चारित्र आदि की शिक्षा हेतु मीठे कटु वचन भी नहीं बोलते।

७७. उत्तम संयम – छह काय के जीवों की विराधना और पांच इन्द्रिय व मानसिक विषयों से विरक्त। जिनवाणी, कामण्डलादि उपकर भी असंयमी द्वार ले जाना स्वीकार नहीं करते।

७८. उत्तम तप – उपार्जित कर्मों का क्षय करने के लिए १२ प्रकार का तप करते रहते हैं।

७९. उत्तम त्याग – छहों रसों के त्यागी।

८०. उत्तम आकिंचन्य – मोबाईल, गाड़ी न घोड़ा, कुछ भी नहीं जिनके निष्परिग्रही।

८१. उत्तम ब्रह्मचर्य – सदा आत्मा में स्मरण करने वाले आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के गुणों को कहना, सूरज को दीपक से देखना है। गुरुवर जैसा बनना ही गुरुवर का गुणगान है। त्रिकाल त्रियोग नमोस्तु इति अलम्।

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी आचार्य श्री विद्यासागर जी

अभिनंदन सांधेलीय, पाटन

जैन श्रमण परंपरा के साधक आत्मकल्याण की भावना से साधना पर अग्रसर होते हैं । इसी बीच अपनी योग्यतानुसार कतिपय साधक साहित्य सृजन में तत्पर रहते हैं। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, मराठी, गुजराती, राजस्थानी आदि विविध भाषाओं में जहाँ निवृत्ति परक आध्यात्मिक चेतना से साहित्य आलेखन किया, वहीं स्वपर कल्याण की भावना से समाज एवं राष्ट्रोउथान के सूत्र भी उन्होंने प्रदान किये ।

सुदूर कर्नाटक प्रांत में जन्में कन्नड़ भाषा-भाषी युवक विद्याधर ने पारसमणि स्वरूप आचार्य श्री ज्ञानसागर जी का सान्निध्य पाकर जहाँ आत्महित हेतु को अंगीकार किया वहीं दीक्षा-शिक्षा गुरु महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के स्पर्श से मुनि विद्यासागर जी द्वारा साहित्य की जो अविरल धारा बहना प्रारम्भ हुई शनैः शनैः वह वृद्धिगत होकर विराग रूप धारण करती गई। उसी के फलस्वरूप आपके द्वारा संस्कृत के ६ शतक, शारदा स्तुति, धीवरोदय, चम्पूकाव्य, आलेखित किया गया वहीं २२ पद्यानुवाद पूर्ण आचार्य प्रणीत संस्कृत, अपभ्रंश प्राकृत भाषा के ग्रंथो का हार्द राष्ट्रभाषा हिन्दी में पद्यानुवाद किया । ३ मौलिक काव्य संग्रह, एक प्रतिनिधि काव्य संग्रह, हिन्दी शतक, स्तुतियां, भक्तिगीत के अतिरिक्त प्राकृत, बंगला तथा कन्नड़ भाषा में भी आपकी कलम चली।

आपके द्वारा नगर एवं ग्रामों का पद विहार करते हुए जो सदुपदेश जनमानस को प्रदान किया उनमें से अनेक प्रवचन संग्रह के रूप में जनमेदनी को पढ़ने को उपलब्ध हो चुके है।

आचार्य श्री विद्यासागर के रचना संसार में सर्वाधिक चर्चित ओर महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में मूकमाटी महाकाव्य ने हिन्दी साहित्य और हिन्दी सन्त साहित्य जगत में आचार्य श्री को काव्य की आत्मा तक पहुँचाया है। इस महाकाव्य में राष्ट्रीय अस्मिता को पुनः जीवित किया है। सामाजिक

न्याय और धार्मिक एकता/ समता के लिये आचार्य श्री ने मानों आचरण संहिता प्रस्तुत की है। परस्पर मिलन और सौहार्द के भावों को अभिव्यक्त करती हुई यह कृति कालजयी बन पड़ी है।

मूकमाटी जहाँ जीवन का चिरन्तन ऊर्ध्वमुखी सात्विक वृत्तियों एवं गहन दार्शनिक पक्षों को अनावरण किया है। वहीं समकालीन समस्याओं के संकेतों को विस्तृत पीठिका पर विवेचित किया है। युग की अर्थलिप्सा, यशोलिप्सा, अहंकारिक और आतंकवादी समकालीन उग्रवृत्तियों स्वयं रचनाकार ने रेखांकन किया।

दरअसल मूकमाटी स्वयं को और अपने भविष्य को समझने की नई दृष्टि देता है और दलितों व शोषितों को उत्थान की आस देता है कि कुम्भकार किस तरह मिट्टी को शुद्ध बनाकर उसे मंदिर का पवित्र कलश बनाने की क्षमता रखता है।

मूकमाटी महाकाव्य अंग्रेजी, बंगला, कन्नड़, मराठी और गुजराती में अनवरित हो चुका है। आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज द्वारा रचित वाङ्मय पर तुलनात्मक दृष्टिकोण से देश के अनेक विश्वविद्यालयों में हुये शोधकार्यों में ४ डी. लिट् , २२ पी. एच. डी. ७ एम.फिल. २ एम.एड. तथा ६ एम. ए. शोध/ लधुशोध प्रबंध हो चुके है। रहे हैं ।

मूकमाटी कृति पर भारत के सुप्रसिद्ध ८०० से अधिक सभालोचकों ने आद्योपांत अवलोका कर उस पर अपनी कलम चलाई जिसमें से लगभग ३५० सभालोचकों के शोध निबंधों को विख्यात विद्वान डॉ. प्रभाकर माचवे एवं आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी के सम्पादकत्व में मूकमाटी मीमांसा नामक ग्रन्थ के रूप में तीन खण्डों में (लगभग १८५० पृष्ठों) भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली से प्रकाशित है। The Silent Earth के नाम से अंग्रेजी में अनुवादित मूकमाटी की प्रथम प्रति महामहिम राष्ट्रपति श्रीमति प्रतिभादेवी सिंह पाटिल, भारत सरकार, ने राष्ट्रपति भवन में जैन समाज के बीच लोकार्पित की।

आचार्य श्री द्वारा रचित भावना शतकम् गोमटेश थुदि आदि रचनाएं डाँ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) के एम. ए. संस्कृत पाठ्यक्रम

में सम्मलित है। मूकमाटी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के. एम.ए. द्वितीय वर्ष के पाठ्यक्रम में चयनित कर ली गई है। मध्यप्रदेश शासन के उच्च शिक्षा विभाग ने एम.ए. पाठ्यक्रम में भी सम्मलित की है। माध्यमिक शिक्षा मंडल मध्यप्रदेश ने आचार्य श्री की रचनाओं को कक्षा ९वीं की हिन्दी की पुस्तक नवनीत में भी सम्मलित किया है।

सूर्य से तेजस्वी, चन्द्र से शीतल, समुद्र से गम्भीर, पृथ्वी से सहनशील, हिमालय से विशाल और वायु से प्रणाहित कीर्ति के धारी आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की जीवंतकृति है। आचार्य श्री ने विपुल साहित्य सृजन किया है। वहीं चेतन कृतियों का भी सृजन आपके करकमलों से हुआ है।

कहते है द्वापर युग से जब श्री कृष्ण जी की वंशी बजाते थे तब सैकड़ो गोपियॉ दोड़ी आती थी। इस पंचम काल में जब पाश्चात्य संस्कृति एवं भोग लिप्सा का तांडव चल रहा है। तब आचार्य श्री विद्यासागर जी वीतराग की वंशी बजाते है तब सैकड़ो युवक युवतियां जो उच्च शिक्षित (एम.ए., बी.ई., एम.टेक, मेडीकल, एम.बी.ए.) तथा उच्च पदस्थ अधिकारी दौड़े आ रहे है। भारत के १० राज्यों से २० मुनि, १७२ आर्यिकायें (साध्वियां), ५७ एलक, ६४ क्षुल्लक, ३ क्षुल्लिका इस प्रकार ४१६ साधकों को सभी योग्यताओं को ध्यान में रखते हुए दीक्षा देकर भगवान महावीर स्वामी के पथ पर अग्रसर किया।

४०० युवक ६०० युवतियां जिनमें अधिकांश उच्च शिक्षित है, ने अपना जीवन गुरु चरणों में समर्पित कर आजीवन ब्रह्मचर्य व्रतों को अंगीकार कर लिया है। अनेक गृहस्थ श्रावक- श्राविकायें श्री आजीवन, ब्रह्मचर्य व्रत लेकर साधना के पथ पर चल रहे हैं। सुशिक्षित प्रतिभाशाली बाल ब्रह्मचारीयों शिष्यों का इतना बड़ा समूह अनुशासित है। शिष्यों की गुरु के प्रति समर्पण और अनुशासन की विशेषता से युक्त वैरागी परिवार का प्रतिनिधित्व आचार्य श्री विद्यासागर जी के हस्तकमलों में है।

विलक्षण प्रतिभा के धनी आचार्यश्री विद्यासागर जी चर्या को कठोरता से पालन करते हुए त्याग और तपस्या का अनूठी और बेमिसाल बानगी प्रस्तुत कर रहे है आपने ५० वर्षों से न नमक खाया। न ही चीनी आदि। अलियत

बिहारी बनकर नंगेपांव नगर-नगर, गॉव-गॉव विचरण करते हुए अभी तक ५० हजार किलो मीटर पद यात्रा कर अपनी द्दद साधना के बीच जनकल्याण, राष्ट्रीयता एवं मानवता के अनेक आदर्श पर चिन्हों को स्थापित किया है साथ ही साथ स्वस्थ्य मनन, चिन्तन के साथ सतत् लेखन कर अपनी अदभुत कार्य क्षमता का परिचय भी दिया।

आचार्य न केवल तपस्वी है बल्कि दार्शनिक तथा समाज सुधारक भी है। शिक्षा, स्त्री शिक्षा, पशुकल्याण, भ्रष्टाचार रहित ईमानदार प्रशासन, पर्यावरण, स्वरोजगार, मानवीय संवेदना, असहाय विधवाओं को स्वावलंबी बनाना, अहिंसक कृषि के क्षेत्र में आपकी प्रेरणा से कितनी ही परियोजनायें संचालित है। हो रही है।

विगत ४० वर्षो से आचार्य श्री का विहार मध्यप्रदेश विशेषकर बुंदेलखण्ड में सर्वाधिक रहा हैं। आवागमन के साधन विहीन इस क्षेत्र के प्राचीन तीर्थो की दशा देखकर आचार्य श्री ने अधिकांश समय इन तीर्थों पर ही व्यतीत किया। उसका सुफल यह रहा बड़ी संख्या में जीर्ण-शीर्ष मंदिरों के जीर्णोद्धार के सत्कार्य समाज द्वारा सम्पन्न हो रहे है। अतिशय क्षेत्र कोनी जी (पाटन जबलपुर), सिद्ध क्षेत्र कुण्डलपुर (दमोह) अतिशय क्षेत्र बीना (बारहा) सागर, अतिशय क्षेत्र पटनागंज रहली, सागर आदि।

समय की माँग को देखते हुए आवश्यकतानुसार नई तीर्थो की परिकल्पना को मूर्तरूप प्रदान करने हेतु प्रेरणा और आशीर्वाद पाकर नए तीर्थो का भी सृजन हुआ जैसे सर्वोदय तीर्थ अमरकटंक (शहडोल), भाग्योदय तीर्थ सागर, दयोदय तीर्थ जबलपुर, सिद्धोदय सिद्ध क्षेत्र नेमावर (देवास), अतिशय क्षेत्र चन्द्रगिरि डोगरगढ़।

आचार्य श्री की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से संचालित प्रकल्पों में सबसे चर्चित है। प्रतिभास्थली भाग्योदय तीर्थ, दयोदय तीर्थ, प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थान, हथकरघा , शांतिधारा दुग्ध योजना प्रमुख है। व्यावसायिक संस्कार विहीन शिक्षण युवतियों की भ्रमित कर कुल परिवार समाज संस्कृति के संस्कारों से रहित कर दिया तथा सह शिक्षा के दुष्परिणामों को देखकर आचार्य श्री की

प्रेरणा और आशीर्वाद से देश-समाज के समक्ष आधुनिक एवं संस्कारित शिखा के तीन आवासीय विद्यालय प्रतिभास्थली तिलवारा घाट-जबलपुर, रामटेक महाराष्ट्र, चंद्रगिरी डोंगरगढ़ जहाँ सैकड़ों बालिकायें अध्ययनरत है इसी वर्ष से पपौरा-टीकमगढ़ एवं इंदौर में भी प्रतिभाशाली का शुभारंभ हो चुका है।

प्रदूषण के युग में बीमारियों के अम्बार और व्यावसायिक चिकित्सा के विकृत स्वरूप के कारण गरीब- मध्यम वर्ग चिकित्सा से वंचित रहने लगा। मानवीय संवेदना मसीहा आचार्य श्री की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से सागर (म.प्र.) में भाग्योदय तीर्थ धर्मार्थ चिकित्सालय की स्थापना हुई।

अहिंसा के पुजारी आचार्य श्री का दयालु हृदय की विशालता एवं करूणा सिर्फ मानव तक सीमित नहीं है, अपितु उनके दिल में पशुओं-पक्षियों की जिंदगी की सुरक्षा के विषय में मानवीय संवेदनाये है, फल स्वरूप आपकी प्रेरणा से दयोदय संवर्धन प्रकल्प का प्रारंभ दयोदय, (गौशालाएं) के नाम पर जबलपुर से प्रारंभ हुआ। आज मध्यप्रदेश और देश में १७५ गौशालायें संचालित है जहाँ हजारों मूक पशु कत्लखानों में कटने के बजाय निरामय जीवन जी रहे है। और समाज लाभन्वित हो रही है।

भ्रष्टाचार से मुक्त, ईमानदार प्रसाशन एवं राष्ट्र सेवा से नवयुवकों को आदर्श नागरिक बनाने के लिये प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थान मढ़िया जी जबलपुर को आचार्य श्री का शुभाशीष एवं मार्गदर्शन मिला एवं दिल्ली में प्रशासनिक प्रशिक्षण केन्द्र अनुशासन के नाम से स्थापित हुये। इसी वर्ष अनुशासन की एक शाखा भोपाल में भी प्रारंभ हो चुकी है। आचार्य श्री के शुभाशीष से जयपुर, आगरा, हैदराबाद, इंदौर, जबलपुर आदि में छात्रावास खुले जहाँ बालक रहकर उच्च अध्ययन हेतु संलग्न है। प्रतिभा प्रतीक्षा के नाम से इन्दौर में कन्या आवासी छात्रावास ब्रह्मचारी बहिनों के मार्ग दर्शन में संचालित है जहाँ छात्रायें उच्च अध्ययन प्राप्त कर रही है तथा अपने संस्कारों को भी जीवंत रखने में समर्थ है। जबलपुर में भी शीघ्र व्यवस्था प्रारंभ होने जा रही है।

गरीब एवं विधवाओं की तंग स्थिति देखकर करूणा के सागर आचार्य

श्री की सत्प्रेरणा से जबलपुर में लघु उद्योग पूरी मैत्री संचालित है। जहाँ शुद्ध एवं सात्विक खाद्य पदार्थ एवं गृहस्थी उपयोगी शुद्ध मसाले उपलब्ध है। म.प्र. एवं अन्य प्रांतो में लगभग ३५० जैन पाठशालायें संचालित है जहाँ हजारों बालक बालिकायें धार्मिक संस्कार प्राप्त कर रही है। यह प्रेरणा भी है गुरुदेव की।

आचार्य श्री ने अपने पद विहार में ग्रामीण अंचलों की जीवन शैली का सूक्ष्मता से अध्ययन किया है। शिक्षा के दुष्प्रभाव के कारण तेजी से बेरोजगारी बढ़ रही है। ग्रामीण परिवेश मेंचलने वाला कला कौशल से लोग विमुख हो रहे है। पलायन बढ़ रहा है। आजीविका का संकट खड़ा हो रहा है। ग्रामीण जनता की दीन-हीन दशा से आचार्य श्री द्रवीभूत हो गये। तब आचार्य श्री ने स्वदेशी अहिंसक आजीविका हथकरघा की प्रेरणा दी। अनेक स्थानों पर हथकरघा उद्योग प्रारंभ हुये। यह आपकी दिव्य दया का प्रतिफल ही है कि इस स्वदेशी रोजगार प्रकल्प की बागडोर एम. टेक., वी. ई., एम.बी.ए. जैसे उच्च शिक्षित नवयुवकों के हाथ में है। जिन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लेकर संयम मार्ग के साथ-साथ जन कल्याण के माध्यम से सेवारत है। इन नवयुवकों ने हथकरघा के क्षेत्र में नये-नये कीर्तिमान स्थापित कर सभी को आकर्षित कर रहे हैं।

हथकरघा प्रकल्प से निर्मित शाल गोम्मटेश्वर बाहुबलि स्वामी के महामस्तिकाभिषेक के पावन प्रसंग पर भारत के राष्ट्रपति को कर्मयोगी श्री चारूकीर्ति भट्टारक स्वामी जी ने भेंट कर उन्हें जानकारी दी कि यह आचार्य श्री के शुभाशीष से निर्मित उपक्रम का है। तब महामहिम राष्ट्रपति महोदय ने अपना नमोस्तु आचार्य श्री के चरणों में ज्ञापित करने की भावना भट्टारक जी से प्रगट की।

आचार्य श्री के आशीष से अनेक लोग जानलेवा बीमारियों से रोगमुक्त हुये है। सैकड़ो श्रावक-श्राविकाओं ने आचार्य श्री के मार्गदर्शन में सल्लेखना धारणा कर अपना जीवन सार्थक करने संकल्पित है। अनेक श्रावक-श्राविका आचार्य श्री के मार्गदर्शन में सल्लेखना समाधिमरण कर अपना जीवन सार्थक कर चुके है।

आचार्य श्री से देश के राजनेता, चिंतक, विचारक, साहित्यकार शिक्षाविद, कानूनविद, न्यायाधीश, धर्माचार्य, डॉक्टर, पत्रकार, अधिवक्ता, जिलाधीश, पुलिस अधीक्षक, विश्वविद्यालय के कुलपति, प्रशासनिक अधिकारी, बहुराष्ट्रीय कंपनियों में सेवारत अधिकारी आदि आकर देश, समाज एवं शान्ति के लिये दिशा निर्देश, मार्गदर्शन प्राप्त करते रहते हैं।

आपने सन् १९६८ से लेकर सन् २०१८ तक ५० वर्षों में स्वर्णीम सुदीर्घ संयम पर्याय में वाणी से तथा अपनी त्याग तपस्या से लाखों लोगों के मन-जीवन एवं परिवार में शील, सदाचार सौहार्द व श्रद्धा की प्रतिष्ठा की हैं। आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज वीतरागी, निस्पृह करूणा पूरित परिषहजयी समदृष्टि साधु के आदर्शमार्ग के लिये परम आदर्श हैं।

संयम स्वर्ण मुनि दीक्षा महोत्सव के वर्ष २०१७-१८ संपूर्ण भारत वर्ष में उनके शिष्यों ने अनेक रचनात्मक कार्य कर अपने विनम्र श्रद्धा प्रणाम विवेदित किये। यह भी सुखद संयोग ही है कि किसी राजा/चक्रवर्ती के इतने कीर्ति स्तंभ नहीं बने जितने संयम स्वर्ण दीक्षा महोत्सव में आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के बने है।

वेदों की ऋचायें तुम से हे, तुमसे है गीता के छंद।
णमोकार की मधुर ध्वनि तुम, उपनिषदों के मूलमंत्र॥
मरणासन्न श्रमण संस्कृति को, तुमने अब जीवंत कर दिया।
मूकमाटी के अमर कलश में ,दर्शन और अध्यात्म भर दिया॥
विश्व प्रेम की गंगा हो तुम, और सम्यक्त्व दिवाकर हो।
मेरे मन मंदिर में बैठे,गुरुवर विद्यासागर हो॥

५० वर्ष पूर्व विद्याधर से मुनि विद्यासागर बने थे। अतः ऐसे स्वर्णिम संयोग के अवसर पर भारत स्वाभिमान के रक्षक गुरुदेव के चरणों में कोटिशः नमन। जन-जन के प्रेरणादायी संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज जयवंत हो।

OOO

अतिशयों के महा अतिशय आचार्य विद्यासागर जी

ब्र. देवेन्द्र भैया मुबंई

एक दिन संघ आहारचर्या को निकलने के लिये आचार्य विद्यासागर सभागृह के पीछे की ओर बने मन्दिर जी में एकत्रित हुए वही बाजू में एक गैलरी भी है जिसमें दोनों छोर से हवा आने जाने का मार्ग खुला हुआ है लेकिन वही ऊपर की ओर पाँच छः छत्ते मधुमक्खियों ने बना रखे हें चुकि छत्ते होना एक सहज बात थी सो कुछ साधु वहां खड़े होकर आपस में एक दूसरे की कुशलक्षेम पूंछ रहे थे।

आचार्य श्री विधि लेकर निकले ही थे कि ना जाने अचानक क्या हुआ सभी छत्ते की मधुमक्खियां एक साथ छत्ता छोड़ कर भिनभिनाने लगी, मधुमक्खियों का भिनभिनाना देखकर सभी महाराज अंदर मन्दिर जी में आ गये ओर जाली का दरवाजा बंद कर लिया लेकिन मुनि श्री धीरसागर जी महाराज वहां खड़े हो कर जाप कर रहे थे सो वे निश्चल वहीं खड़े रहे ।

अगले ही पल का दृश्य बड़ा ही भयावह था देखने वालों की तक आत्मा सिहर गयी क्योंकि जितनी भी मक्खी थी एक साथ उनके शरीर पर बैठती चली गयी एक मिनिट में ही उनका पूरा शरीर मधुमक्खियों से ढक गया था हिम्मत करते हुये एक मुनिराज ने पिच्छी से हटाते हुए सभी मक्खियों को उनके ऊपर से अलग किया तब तक शरीर के प्रत्येक हिस्से में बे बड़ी बेदर्दी से काट चुकी थी। यहाँ तक कि आंख नाक कान के अंदरूनी भाग में भी काटने के डंक स्पष्ट रूप से देखे जा सकते थे किंतु धीरसागर जी अब भी वैसे ही कायोत्सर्ग की मुद्रा में खड़े हुए जाप दे रहे थे।

मधुमक्खियों के उड़ते ही जब संघ के सभी मुनिराजों ने आकर उन्हें सम्हाल कर नीचे लकड़ी के पाटे पर लिटाया ओर उनके डंक निकालने लगे सभी हमप्रभ थे हजार से ज्यादा काटे निकल चुके थे फिर भी सारे शरीर में कांटे अभी भी दिखाई दे रहे थे।

कांटो के निकालते धीरसागर जी का शरीर विष के प्रभाव से काफी फूल गया था देखने में ही ऐसा प्रतीत होने लगा था जैसे किसी गुब्बारे में पानी भर दिया गया हो। अब तो काटे निकालने में भी डर लगने लगा था किंतु मुनि धीरसागर जी के धीरज को देखियें मुँह से आह भी नहीं निकल रही थी, इतने में शोर होने लगा आचार्य श्री आहार के उपरांत वापिस आ रहे थे सभी नेआचार्य श्री को जानकारी दी किन्तु आचार्य श्री भीड़ में आकर देखने की जगह अपने कक्ष में जाकर बैठ गए और सभी से एकांत करने को कहा मुनि श्री को कक्ष में ही लाने का निर्देश दिया

बड़ी मुश्किल से दो मुनिराज उनके विकृत शरीर को उठाकर आचार्य भगवन के कक्ष में ले गए तब आचार्य भगवन उठे और चंदन के शीतल तेल एवं रूई लाने को कहा। आचार्य श्री ने रूई पर थोड़ा सा चन्दन तेल लेकर मुनि धीरसागर जी की पलकों पर जो विकृत होकर लटक गयी थी लगाया और तेल की शीशी को वापिस रखने दे दिया

वहां खड़े मुनिराज ने शीशी अपने हाथ में ली ओर रखने मात्र बीस कदम ही गए होंगे और तेज कदमों से चलते हुए तुरंत वापिस भी आ गए किन्तु अंदर का नजारा देख वह एकदम से अवाक रह गए मुनि श्री धीरसागर जी एक दम से स्वस्थ होकर आचार्य भगवंत की वंदन कर रहे थे ऐसा आश्चर्य ओर चमत्कार अपनी आंखो से देख उन्हें अपने गुरु आचार्य विद्यासागर जी पर गुरूर हो गया और श्रद्धा अपने चरम पर पहुंच गयी।

ऐसे साधक जिन्होंने साधना को ही सर्वोपरि माना और साधना के प्रभाव से प्राप्त इन ऋद्धि सिद्धियों को अपने जीवन में कोई महत्व ही नही दिया तभी तक तो लोक में शिरोमणि संत के रूप में पूज्य हुए, संत आचार्य विद्यासागर जी महाराज के चरणों में अपने शीश को नवाता हुआ भांवना भाता हुं वे सदा जयवंत हो।

❍❍❍

मूकमाटी महाकाव्य : कुछ अनछुए पहलू

मुनिश्री अभयसागर जी महाराज

संत शिरोमणि जैनाचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने अपनी आत्मसाधना के द्वारा जहाँ आत्मकल्याण हेतु विशेष प्रयास किये हैं वहीं स्वान्तः -सुखाय से ऊपर उठकर परजन-हिताय के उदात्त भावों को भी सार्थकता प्रदान करने के लिये साहित्य रचना की है।

प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, बंगला, कन्नड एवं अंग्रेजी भाषाओं में निबद्ध आपकी कृतियाँ भारतीय साहित्य की अभिवृद्धि में नूतन अवदान हैं। आपने जहाँ संस्कृत में ६ शतक, १ चम्पू काव्य, पद्यानुवाद एवं काव्य सर्जना की है, वहीं अनेक जैनाचार्यों द्वारा अभिलिखित प्राकृत, अपभ्रंश तथा संस्कृत भाषा की श्रेष्ठ कृतियों का सरस एवं प्रांजल पद्यानुवाद राष्ट्रभाषा में किया है। ४ मौलिक हिन्दी कविता संग्रह, ११ हिन्दी शतक, अनेक स्फुट काव्य तथा हाइकू रचनाओं के अतिरिक्त आपके प्रवचन साहित्य को भी/पढ़कर साहित्य जगत् में आपकी विशिष्ट पहचान स्थापित हुई है।

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की मुनि दीक्षा गुरुवर आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज के द्वारा सन् १९६८ में हुई थी। इसी वर्ष से आपकी साहित्य धारा जो प्रस्फुटित हुई, वह नूतन चिंतन-मनन को शब्दायित करती हुई अविरल गतिमान हुई है। इसका प्रारंभिक आलेखन आपकी साहित्यिक तूलिका द्वारा प्रसारित हुई थी। इसका प्रारंभिक आलेखन आपकी साहित्यिक तूलिका द्वारा मध्यप्रदेश की संस्कार धानी के नाम से प्रख्यात जबलपुर नगर में स्थित पिसनहारी मढ़िया जी क्षेत्र पर प्रारंभ हुआ था। २५ अप्रैल १९८४ के पावन क्षणों से लिखा जानने वाला यह महाकाव्य सिद्धक्षेत्र नैनागिरि जी, छतरपुर (मध्यप्रदेश) में पंचकल्याणक एवं त्रि-गजरथ महोत्सव के प्रसंग पर ११ फरवरी १९८७ को पूर्ण हुआ था। यूँ तो इस रचना को भावनात्मक सूत्रपात्र श्री बाहुबली व चौबीसी जिनालय मधुवन तीर्थराज सम्मेदशिखर जी (गिरिडीह, बिहार) में १३ फरवरी, १९८३ को हो चुका था, जो आंशिक रूप से आपकी भाव सम्पदा को रूपायिक कर जनमानस के सम्मुख प्रकट हुआ था। इस भावभूमि को आपके पावन-प्रवचन संज्ञक संग्रह में तथा आचार्य विद्यासागर-समग्र (खण्ड ४ में) धर्म :

आत्म-उत्थान का विज्ञान के नाम से (पृष्ठ ४१४-४२०) अवलोकित किया जा सकता है।

इस आलेख में १९८८ में प्रकाशित प्रथम संस्मरण से लेकर सन् २०१५ में प्रकाशित तेरहवें संस्करण तक एवं ३ बार अंग्रेजी, ३ बार मराठी, २ बार कन्नड़ तथा बंगला एवं गुजराती भाषा में भी अनुवादित इस मूकमाटी महाकाव्य के भीतर गूढ़ रूप में छिपे हुए रहस्यों को स्पष्ट करने का सम्यक् प्रयास है, जो जब कभी श्रीगुरु के श्रीमुख सुना/ समझा गया था।

१. भारती भौगोलिक सीमाओं की सुदृढ़ एवं अभेद्य रेखाओं में सेंध लगाना तथा देश के भीतर भी आतंकवाद, उग्रवाद, नक्सलवाद, माओवाद आदि जैसी विभीषिकाएँ जब-तब अपना मुँह बाएँ खड़ी देखी जाती है। विभिन्न प्रदेशों में शासन-प्रशासन की नीतियों से असंतुष्ट वर्ग अपने विचारों को जनमानस पर जबरन थोपकर, देश की अखंडता एवं एकता को बिखराने का दुस्साहस भी यदाकदा करते रहते हैं और आतंकवाद के रूप में कभी कश्मीर, कभी पंजाब, कभी उत्तर-पूर्व प्रदेशों में तो कभी झारखण्ड , बिहार, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र तथा आध्रंप्रदेश आदि में भी वह विकराल आकार लेता हुआ-सा प्रतीत हो जाता है।

मूकमाटी के आलेखन काल के दौरान ही सम-सामायिक घटनाक्रम पर आचार्यवर्य की सूक्ष्म दृष्टि रही, जो काव्य के मिस इसमें झलकती है, किन्तु श्लेष के गूढ़ अर्थ को नही समझ पाने से सामान्यजन तो क्या, अधिकांश मनीषीजन भी उस भावबोध से अपरिचित ही रहे हैं । पंजाब में खालिस्तान के निर्माण को लक्ष्य में रखकर एक बड़ा वर्ग देश में उग्रवाद, आतंकवाद को पनपने दे रहा था। तब देश की तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति से राजनीतिक निर्णय लिया था और सन् १९८४ में अमृतसर,पंजाब के स्वर्ण मंदिर परिसर में आपरेशन ब्लू स्टार (१ से ८ जून, १९८४) के माध्यम से आतंकवादी गतिविधियों कों नियत्रित करने के लिये सेना को एक्शन लेने हेतु स्वतंत्रता दी थी। देश के जाबाज सैनिकों ने अपने प्राणों की परवाह किये बिना ही उस योजना को चरितार्थ करने ऐतिहासिक व धार्मिक महत्व के भवनों को यथासंभव क्षति न पहुँचाते हुए उग्रवादी गतिविधि को संचालित करने वालों को नियंत्रित कर लिया था और बहुत अधिक मात्रा में गोला- बारूद आदि जप्त करके उन राष्ट्रविरोधी क्रियाकलापों

को कण्ट्रोल में कर लिया था। पर कुछ धर्मान्ध लोगों ने षडयंत्र रचकर प्रधानमंत्री श्रीमति इंदिरा गाँधी को गोलिया से भूनकर उनकी हत्या कर दी थी। तब देश के नव निर्वाचित प्रधानमंत्री के रूप में श्री राजीव गाँधी का चयन हुआ। उन्होंने अपने कुशल नेतृत्व में पंजाब के तात्कालीन आतंकवाद को समाप्त करने हेतु विशिष्ट कार्ययोजना बनवाई और उसे सार्थक व सफल बनाने हेतु एक कुशल राजनेता को पंजाब का राज्यपाल नियुक्त किया था। उस दौरान ही मूकमाटी महाकाव्य का आचार्य श्री जी आलेखन कर रहे थे, अतएव सम-सामयिक घटनाक्रम उनके दृष्टिपटल पर था, जो प्रकारांतर मूकमाटी में भी पढ़ा/पाया जा सकता है।

आतंकवाद के उत्पन्न होने के कारण, उसके विस्तार और उसकी समाप्ति हेतु सम्यक आयास-प्रयास की चर्चा मूकमाटी में (पृष्ठ ४१७ से ४७८ तक)पर्याप्त रूप में देखी जा सकती है। आंतकवादियों के द्वारा मंत्र शक्ति के माध्यम से प्रलयकारी वातावरण का निर्माण करना, उसका प्रकृति और जीवों पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव तथा इस विपरीत वातावरण में भी अहिंसक एवं सात्त्विक विचारधारा को जीवन में आत्मसात् करने वाले कुम्भ और सेठ परिवार का चित्रण बड़ी कुशलता से आचार्यवर्य ने अपनी लेखनी से मूकमाटी में किया है। हिंसक विचारधारा को अपनी अहिंसक विचारधारा से परिवर्तित कर देने से काव्य में नया मोड़ तब आता है, जब आहूत प्रलयकालीन बादलों के छट जाने से निमित्त प्रभातकालीन सुरम्य वातावरण जैसा प्रकृति वर्णन आचार्य श्री ने यूँ किया -

इस भीषण प्रलयकालीन स्थिति मेंभी
परिवार का परिरक्षण
अविकल चलता रहा,
गुणग्राही गज- गण से।
बादल दल छँट गये हैं
काजल-पल कट गये हैं
वरना, लाली क्यों फूटी है
सुदूर.....प्राची में! (मूकमाटी पृष्ठ ४४०)

मूकमाटी महाकाव्य की ये पंक्तियाँ सामान्य अर्थबोध दे रही हैं कि अभी

आतंकवाद के कारण काले-काले सघन मेघों से सम्पूर्ण आकाश आच्छादित था। इसी कारण दिन में भी रात जैसी कालिमा प्रतीत हो रही थी, किन्तु वह भीषण प्रलयकालीन वातावरण दूर हो चुका है और इस कारण वे संकट के क्षण अब समाप्त हो चुके हैं , इसीलिए प्राची/ पूर्व दिशा में प्रभातकालीन बेला के समान आनंदकारी वातावरण निर्मित हुआ है।

काव्य के मिस उपरिलिखत पंक्तियों से तत्कालीन राजनैतिक परिदृश्य को जानने/ समझने पर श्लेष के माध्यम से उनमें छुपी हुई अर्थशक्ति को जाना जा सकता है। उस दौरान हुए राजनैतिक निर्णयों के परिप्रेक्ष्य में शिरोमणि अकाली दल की ओर से श्री प्रकाश सिंह बादल के स्थान प्रान्त के तत्कालीन मुख्यमंत्री पद पर नवीन मुख्यमंत्री के रूप में श्री सुरजीत सिंह बरनाला (२१.०९.१९८५ से ११.०६.१९८७) का चयन हुआ था। श्री बरनाला के द्वारा आतंकवाद को नियंत्रित करके भारतीय संविधान के अंतर्गत देश की एकता और अखंडता को मुख्यता प्रदान की गई थी। इस कारण उनसे एक आशा की किरण फूटी हुई देश ने प्रतीत की थी, जो काव्य में श्लेष के माध्यम से उपरलिखित चिह्नित शब्दावलियों के माध्यम से पढ़ा/ समझा जा सकता है।

२. भारत की स्वतंत्रता के समय से ही देश के मस्तक स्वरूप कश्मीर की समस्या बनी हुई है। इसे पड़ोसी देश, जो कभी देश का ही एक अंश/ अंग था, अब पृथक देश पाकिस्तान के रूप में आतंकवाद को प्रश्रय देता रहता है। पाकिस्तान के चाहे राजनेता हों या देश पर हुकूमत चलाने वाले सैनिक शासक, दोनों की अपनी संकुचित मनोवृत्तियों के कारण भारत के प्रति प्रायः मित्रता के स्थान पर शत्रुता का भाव रखते हैं और इसी शत्रु भावना की प्रतिपूर्ति हेतु देश की सीमा पर जहाँ गोलाबारी करके शांति को भंग करते/करवाते हैं, वही कश्मीर में अमन-चैन को नष्ट करने रूप घृणित मनोवृत्ति रखकर आतंकवादी गतिविधि को बढ़ावा देते रहते हैं। पाकिस्तान में आतंकवादियों को प्रशिक्षित कर गोला-बारूद, शस्त्र आदि मुहैया करवाकर, उन्हें बार्डर क्रास करवाकर, भारत की सीमा में प्रवेश करवाकर, फिर देश में जगह-जगह बम विस्फोट, कश्मीर में अशांति और उग्रवाद का वातावरण निर्मित करवाते हैं।

इतना ही नहीं, अपनी दूषित राजनैतिक मनोभावना से पाकिस्तान ने भारत के प्रति जबरन युद्ध का वातावरण पैदा किया और अगस्त-सितम्बर सन् १९६५ व

विराट स्वरूप विद्यासागर

दिसम्बर सन् १९७१ में युद्ध भी लड़ा। भले ही इसमें उसकी हार हुई और भारत की विजय, परन्तु तात्कालीन परिस्थितियों में दोनो ही राष्ट्रों में तनाव, अशांति व उन्माद का प्रसार हुआ और जन-धन की विपुल हानि भी हुई।

मूकमाटी महाकाव्य के माध्यम से आचार्य श्री विद्यासागर जी ने माटी के लोंदे के रौंदन प्रक्रिया का खूबसूरत चित्रण किया है, जिसमें निम्न पंक्तियाँ काव्य सौंदर्य के बीच प्रासंगिक एवं उद्धरणीय भी बन पड़ी हैं-

प्रकृति माँ की आँखों में
रोती हुई करूणा
बिंदु-बिंदु करके
दृग-बिंदु के रूप में
करूणा कह रही है
परस्पर कलह हुआ तुम लोगों में
बहुत हुआ, वह गलत हुआ।
मिटाने-मिटने को क्यों तुले हो
इतने सयाने हो !
जुटे हो प्रलय कराने
विष से धुले हो तुम !
इस घटना से बुरी तरह
माँ घायल हो चुकी है
जीवन को मत रण बनाओ
प्रकृति माँ का व्रत सुखाओ !
सदय बनो !
अदय पर दया करो
अभय बनो !
सभय पर किया करो
अभय की अमृत -मय वृष्टि
सदा-सदा सदाशय दृष्टि
रे जिया, समष्टि जिया करो !
जीवन को मत रण बनाओ

प्रकृति माँ का ऋण चुकाओ !

(मूकमाटी, पृ. १४७-१४९)

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों में प्रकृति रूपी माँ की आन्तरिक पीड़ा आँखों से करूणा रूप में निकलकर अपने कण-कण पुत्रों/संतानों को समझाइश दे रही है। मूकमाटी महाकाव्य में आचार्य श्री ने श्लेष के रूप में एक नया एवं चमत्कारिक प्रयोग संगुफित किया है। इस महाकाव्य की पंक्तियों को लिखे जाते समय भारत की सीमाओं पर निर्मित तनाव, कश्मीर के आतंकवाद को प्रश्रय देने वाले पाकिस्तान को लक्ष्य में रखकर आपने उसे प्रबोधन भी दिया है। पाकिस्तान के तत्कालीन राष्ट्रपति, जो सेना प्रमुख भी थे, को दृष्टि में रखकर मानो प्रकृति माँ रूपी भारत माता/अंखड धरती के माध्यम से अपने अतः करण की उदात्त भावना को उक्त पंक्तियों के माध्यम से आपने रखा है।

धरती माँ की असीम वेदना को स्वर देते हुए संत कवि ने अपनी हार्दिक भावना को शब्दायित करने का उपक्रम किया है। भारत वर्ष १५ अगस्त १९४७ से पहले अखंड रूप से अवस्थित था। तात्कालीन राजनैतिक कारणों/परिस्थितियों की वजह से फिर भारत वर्ष से विखंडित होकर पाकिस्तान बना और फिर मानों अखंड भारत माँ की दोनो भुजाएँ/ बाजुएँ कट कर उससे पृथक हो गई एवं (पूर्वी) पाकिस्तान व पश्चिमी पाकिस्तान (वर्तमान बांग्लादेश) का निर्माण हुआ। समय-समय पर वे दोनों बाजू अपने मूल शरीर भारत को ही परेशान करने से नहीं चूकते।

पाकिस्तान के तत्कालीन सेनाध्यक्ष एवं राष्ट्रपति जनरल मोहम्मद जिया उल हक (१९७८-१९८८) को दिशाबोध लेते हुए संतवाणी रूप में इन पंक्तियों को श्लेषात्मक रूप में पढ़ने पर बहुत कुछ स्पष्ट संकेत मिलता है। भारत और पाकिस्तान संज्ञक कण-कण रूपी अपने दोनों पुत्रों को समझाइश देते हुए मानों प्रकृति / भारत रूपी अखण्ड माँ कह रही है कि तुम लोगों में परस्पर अनेक बार लड़ाई/ युद्ध हुआ, वह गलत हुआ है। काव्य पंक्तियों के उपरिलिखित चिह्नित शब्द को ध्यान से पढ़ने पर विदित होता है कि रे जिया ! यह श्लेषार्थ अपने नवीन एवं अनूठे प्रयोग के कारण संत की अंतर्वेदना का अनुपम प्रयोग बन गया है।

❍❍❍

विराट स्वरूप विद्यासागर